http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[८, ९, १० भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :

बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-8

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन ८, ९, १० भाग

[प्रवक्ता – पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी, "सहजानन्द" महाराज]

[अष्टम भाग]

विश्वके पदार्थोंकी जातियोंमें जीव जाति – इस विश्वमें समस्त पदार्थ अनन्तानन्त हैं और उन समस्त पदार्थोंकी जातियां देखी जायें तो सब ६ जातिमें गर्भित हो जाती हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। पदार्थ अनन्तानन्त इस कारण हैं कि किसी भी एक पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायके द्रव्य गुण पर्याय प्रदेश किसी अन्य द्रव्यमें नहीं पाये जाते हैं और अनुभवन भी किसी द्रव्यका किसी अन्य द्रव्यमें नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें अपनी ही क्रिया करता है इस कारण सत्ता सबकी जुदी जुदी है। अतः पदार्थ अनन्तानन्त हैं। यदि जीव जीवमें ही देखा जाय तो मुझ जीवका जो कुछ भी भाव बनेगा और अनुभवन होगा वह सब मुझमें ही होगा। चाहे दूसरा कोई मेरे प्रति कितना भी स्नेह रखता हो, लेकिन परिणमन और अनुभवन कोई दूसरा कर न सकेगा। मेरा परिणमन और अनुभवन मुझमें ही होता है इस कारण समस्त पदार्थ अनन्तानन्त हैं। अब उन सब पदार्थोंकी जातियां बनायी जायें अर्थात् एक एक ऐसा लक्षण लिया जाय जिस लक्षणसे उस पदार्थके समस्त पदार्थ ग्रहणमें आयें और दूसरी प्रकारका कोई पदार्थ आ न सके उस लक्षणको जाति कहते हैं। जातिकी अपेक्षा समस्त पदार्थ ६ प्रकारके हैं। जैसे जीव। जीवका लक्षण है ज्ञान। जो ज्ञानस्वरूप हो, ज्ञानमय हो उसे जीव कहते हैं। अब ज्ञानमय कहनेसे जितने भी ज्ञानमय पदार्थ हैं, जीव हैं वे सब इस जातिमें आ गए। चाहे कर्मरहित मुक्त सिद्ध भगवान हों चाहे सशरीर परमात्मा हों अथवा साधु हों, मनुष्य हों, कीट हों, मकोड़ा हों, स्थावर एकेन्द्रिय हों, सबमें ज्ञान स्वरूप पाया जाता है, तो ज्ञानमयताकी दृष्टिसे वे सब जीव हैं। और, यह एक जीव जाति हुई।

पुद्गल जातिके पदार्थ – दूसरी जाति है पुद्गल। जो पूरे और गले सो पुद्गल। मिल करके बढ़ जाय, बिछुड़ करके घट जाय ऐसी बात जिनमें पायी जाय उनका नाम है पुद्गल। जितने ये रूप रस, गंध वाले पदार्थ हैं, जो आंखों दिखते हैं, जो छूनेमें ग्रहण करनेमें आते हैं ये समस्त पदार्थ पुद्गल कहलाते हैं। एक एक पदार्थकी दृष्टिसे निरखा जाय तो ये द्रव्य नहीं हैं, किन्तु किसी भी स्कंधमें जो इन्द्रियके द्वारा विदित होता है उसमें अनन्तानन्त परमाणु हैं और वे एक–एक परमाणु एक एक द्रव्य है उन परमाणुवोंका ऐसा विलक्षण संघात होजाता है, कि वहां

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर एक एक अणु जैसी बात एक स्थूल परिणमनमें नहीं रहती इस कारण इन्हें भी उपचारसे पुद्गल कहते हैं। देखिये जो पदार्थ यहां नजर आ रहे हैं इन पदार्थोंका नाम जैन शासनमें पुद्गल कहा है। इसे कोई भौतिक कहते कोई अन्य शब्दसे कहते किन्तु पुद्गल शब्द ऐसा विशुद्ध अर्थ वाला शब्द है कि ऐसी विशेषता अन्य किन्हीं नामोंसे नहीं होती। जो पूरे गले उसका नाम है पुद्गल। जो मिलकर बड़ा एक बन जाय और बिछुड़कर अनेक हो जाय, गल जाय उसका नाम है पुद्गल। एक जाति पुद्गलकी होती। ये दो जातिके पदार्थ तो अनन्तानन्त हैं। उनमें भी जीव जातिके पदार्थोंसे पुद्गल जातिके पदार्थ अनन्तानन्त हैं। इन दो जातिके द्रव्योंके अलावा एक धर्मद्रव्य है जिसका कार्य जीव और पुद्गलके चलनेमें सहायक होना है एक अधर्म द्रव्य है जिसका उपयोग चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरने लगें तो उनके ठहरने में सहायक होना है। एक आकाश द्रव्य है। जहाँ जीव पुद्गल आदिक समस्त पदार्थ अवगाहन पाते हैं। एक काल जातिके पदार्थ हैं वे असंख्यात हैं, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है, उसका उपयोग है समस्त पदार्थोंके परिणमनमें कारण बनना।

समग्र पदार्थोंमें सार तत्त्व ६ जातिके पदार्थोंमें सारभूत पदार्थ जीव कहा गया है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, आनन्दमय है। आत्माका ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सबकी व्यवस्था सबकी सत्ताका परिचय हुआ करता है, अतः जीव जातिके पदार्थ सर्व पदार्थोंमें सारभूत है और उन समस्त जीव पदार्थोंमें सारभूत है उनका स्वभाव। ज्ञान जो स्वभाव है उसे ज्ञानस्वभाव कहो ज्ञानस्वरूप कहो जो अनादि अनन्त जीवका सहजभाव है वह सारभूत है। तो इस जीवका नाम समय भी है और इस समयमें जो कुछ सहज भाव है वह समयसार है, तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उस ज्ञानकी चर्चा अभी चल रही थी। ज्ञान को ही प्रमाण कहते हैं।

प्रमाणका विशुद्ध लक्षण स्वपरव्यवसायित्व – जो स्व और परका प्रकाश करे उसे प्रमाण कहते हैं। यह एक प्रमाणका सामान्य स्वरूप है। जो स्वरूप होता है वह उस जातिके समस्त प्रकारके तत्त्वोंमें रहता है, तभी वह लक्षण बनता है, जैसे जीवका लक्षण है ज्ञान, चाहे मुक्त हो, संसारी हो, सबमें ज्ञान पाया जाता है। जो अपने समस्त भावोंमें रहे वह लक्षण कहलाता है। तो प्रमाणका लक्षण है जो स्व और पर का निश्चय करे। तो यह लक्षण प्रमाणके सब भेदोंमें पहुँचना चाहिए, अर्थात् जितनी प्रकारके प्रमाण हैं वे सब प्रमाण स्वपरव्यवसायी होना चाहिए। प्रमाण कहो, ज्ञान कहो वे ज्ञान ५ प्रकारके होते मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवल ज्ञान। तो सभी ज्ञानोंमें स्वपरव्यवसायिता होना चाहिए सो है ही। मतिज्ञान यद्यपि उत्पत्तिमें परके आधीन है अर्थात् इन्द्रिय और मनका निमित्त पाकर मतिज्ञान उत्पन्न होता है, हो उत्पन्न किन्तु ज्ञानका जो स्वरूप है कि स्व और परका ग्रहण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करे, यह स्वरूप मतिज्ञानमें भी पाया जाता है । प्रत्येक मतिज्ञान किसी भी पदार्थको जानते हुऐ अपने आपका भी निर्णय रखते हैं अर्थात् उस ज्ञानका भी भान रहा करता है अतः मतिज्ञान भी स्वपर व्यवसायी है ऐसे ही श्रुतज्ञान भी स्वपरव्यवसायी है । आगमके द्वारा या किसीके शब्द सुनकर या मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थको और विशेष जानना सो श्रुतज्ञान है । ये सब श्रुतज्ञान भी स्वपरव्यवसायी हैं अपने भी और परका भी निश्चय रखते हैं । तो सभी ज्ञान स्वपरव्यवसायी होते हैं, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान तो प्रत्यक्ष ज्ञान है ही । ये जानता है भूत भविष्य वर्तमानकी और समीप दूरकी बातें । और, जानते हुए साथमें अपना भान भी बनाये रहते हैं । तो ये ज्ञान भी स्व-परव्यवसायी हुए केवलज्ञान तो सकल प्रत्यक्ष है, व स्वपरव्यवसायी है । यों प्रत्येक ज्ञान स्वपर व्यवसायी हुआ करते हैं । पहिले परिच्छेदमें प्रमाणके सामान्त स्वरूपका वर्णन किया था, अब द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाणके भेदोंका वर्णन चलेगा । प्रमाणके भेद प्रमाणके निकट संक्षेपमें कमसे कम बनाये जायेंगे जितनेमें प्रमाणके सब भेद गर्भित हो जायें । तो प्रमाणके भेदोंको बतानेके लिए सूत्र कहा जा रहा है —

तद् द्वेधा ॥२–१॥

भेदकरणकी पद्धति—प्रमाण दो प्रकारका होता है । देखिये ! प्रमाण दो प्रकारका तो कहा, लेकिन वे प्रकार इस प्रकार कहना चाहिए कि जिसमें कोई प्रमाण छूट न जाय, अटपट नाम लेनेसे सही विश्लेषण न बन सकेगा । जैसे कोई कहे कि जीव दो प्रकारके होते हैं । कहा तो ठीक है कि जीव दो तरहके होते हैं, उर उनसे पूछा जाय कि वे दो तरहके जीव कौन–कौन हैं । तो कह देवें—एक स्थावर जीव और एक मुक्त जीव । तो अब यह ढंग ठीक तो नहीं रहा । स्थावर मुक्त कहनेसे यदि सब जीव आ जायें तब तो ये भेद बताने सही होते लेकिन इसमें सारे त्रस जीव छूट गए । ये बोलने वाले मनुष्य भी छूट गए । तो ये भेद विधिपूर्वक नहीं कहलाये । जीव दो प्रकार यदि यों कहे जायें कि एक और एक संसारी तो इसमें कोई जीव नहीं छूटा । जो कर्मरहित हैं वे मुक्त हैं और जो कर्म सहित हैं वे संसारी हैं । अब उन से छूटा कौन है ? तो किसी भी वस्तुके भेद बताये जायें तो उस ढंगसे बताना चाहिए जिसमें सब भेद गर्भित हो जायें । तो इस प्रसंगमें प्रमाणके भेद कहे जा रहे हैं ।

प्रमाणके भेदका उपक्रम—प्रमाण दो तरहका है । वे दो नाम क्या हैं ? उसके सम्बन्धमें कुछ लोग कुछ कहते कोई कुछ कहते । एक सिद्धान्त है जो प्रमाणके दो भेद यों कहते —प्रत्यक्ष और अनुमान । ऐसा भेद करनेसे आगमज्ञान आदि अनेक ज्ञान छूट गए और उनका प्रत्यक्ष भी इन्द्रिय और मनसे सीधा जो जाना जाय वह हो । जिसे जैन शासनमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है इतना विशद भी नहीं, किन्तु निर्विशेष विशेषका ज्ञान है तो उनका माना गया प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रकारोंमें न अवधिज्ञान आया न मनःपर्ययज्ञान आया न केवलज्ञान आया और न स्मरण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यभिमान तर्क आगम भी आया। कितने प्रमाण छूट गए ? तो ये दो संख्यायें ठीक नहीं हैं कि प्रमाण दो हैं प्रत्यक्ष और अनुमान। तब फिर सही प्रकार क्या हैं उनको बतानेके लिये सूत्र कहते हैं—

प्रत्यक्षेतरभेदात् ।।२-२।।

प्रमाणके दो भेद – प्रमाणके दो भेद हैं– एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो प्रमाण बतानेसे सभी प्रकारके ज्ञान आ गए। और वे किस प्रकार आये उनका विवरण सुनें तो उसकी विधि यह बनायें कि प्रत्यक्ष दो प्रकारके होते हैं, एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष। और परोक्ष की स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान और आगम ये भेद हुए। तो इस प्रकारके भेदमें सर्वजान आ जाते हैं। प्रत्यक्ष वास्तवमें उसका नाम है जो इन्द्रिय और मनकी सहायता लिए बिना आत्मशक्तिसे जाने उस ज्ञानका नाम है प्रत्यक्ष। लेकिन करीब करीब जिस प्रकार इन पारमार्थिक प्रत्यक्षोंमें पदार्थका ज्ञान होता है उस प्रकारका न सही फिर भी प्रायः स्पष्टसा ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें होता है। यहां भी प्रत्यक्षसे जानकर संदेह नहीं करते। आंखोंसे देखो, लोग कहते हैं कि उसे प्रत्यक्ष देखो और फिर उसके विपरीत कुछ माननेको तैयार नहीं हो सकते। वाह मैंने अपनी आंखों देखा तुम्हारी बात कैसे मान लें ? तो यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी इतनी दृढ़ विशदताको लिए हुए है कि इसका भी नाम प्रत्यक्ष कह देते हैं।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष - वस्तुतः प्रत्यक्ष तो अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान होता है। पूर्ण प्रत्यक्ष तो केवल ज्ञान है जिस ज्ञानमें समस्त सत् एक साथ ज्ञात रहा करते हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये जिस समय प्रकट होते हैं उस समय ये निरपेक्ष हैं, केवल आत्मशक्तिसे उत्पन्न होते हैं परन्तु इसकी उत्पत्ति होनेसे पहिले यह ख्याल करना पड़ता है कि मैं अमुक चीजको जानूँ। अथवा जैसे किसीने प्रश्न किया कि मेरा पूर्वभव कौनसा था ? तो अवधिज्ञानी पुरुष उपयोगको जोड़ेगा तो उसमें भी उसने मति श्रुतका प्रयोग किया, पश्चात् जब अवधिज्ञानसे जाननेको हुआ तो पहिले अवधि दर्शन हुआ, पीछे अवधिज्ञान हुआ तो इस अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्तिके पहिले क्षणमें उपयोग जोड़ना पड़ता है, मति और श्रुतका सहारा लेना होता है।

वर्तमान सुअवसर — हम आपका इस समय जो ज्ञान प्रकट हुआ है वह संसारके अनन्तानन्त जीवोंकी अपेक्षा बहुत अधिक प्रकट है। ज्ञान तो हम आपको इतना मिला हुआ है कि कल्याणकी दिशामें ज्ञानको लगा दें तो हम अपने इतने ही ज्ञानसे कल्याण कर सकते हैं, किन्तु साथमें मोह मिथ्यात्वका विष इतना लगा हुआ है कि हम इस ज्ञानका उपयोग विषय कषायोंमें कर लेते हैं, आत्महितमें नहीं कर पाते, और वासना भी ऐसी अनादिसे लग गयी है कि इन विषय कषाय स्नेह मोहजालके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वमें तो यह मन राजी रहता है और जल्दी रम जाता है और ज्ञानचर्चामें आत्म-हितके प्रसङ्गमें यह ज्ञान बड़े प्रयत्नपूर्वक भी मुश्किलसे लग पाता है। लगता है तो थोड़े ही क्षण बाद वहाँसे उचट जाता है। तो ऐसी स्थितिमें हम सब जो एक विशेष ज्ञान लेकर आये हैं उस ज्ञानका दुरुपयोग करते जाते हैं और फिर संसारमें रुलना ज्योंका त्यों बना रहता है, फायदा कुछ नहीं उठा सकते मनुष्य बननेका और विशुद्ध ज्ञान पाने का, यह एक बड़े खेदकी बात होनी चाहिए कि इस असार संसारमें किसी भी प्रकार उन्नति कर करके हम आज मनुष्य हुए हैं और अवसर सत्सङ्ग भी उत्तम प्राप्त हुआ है, विचार वितर्क प्रज्ञा ये सब उत्तम मिले हैं तिसपर भी हम अपने आपमें अपनी सुध नहीं ले पा रहे हैं और इन पाये हुए दुर्लभ साधनोंको व्यर्थ गवां रहे हैं।

व्यर्थकी विपदा—भैया ! हृदयसे सोचिये तो सही कि आज जिन्हें आप अपना मान रहे हैं उनसे आपका कुछ सम्बन्ध भी है क्या ? अरे ! उनका द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव, परिणमन, अनुभव सब कुछ उनका उनमें ही है और मेरा चतुष्टय परि-णमन अनुभव सब कुछ मेरा मेरेमें ही समाए है। सम्बन्ध मान लेनेकी गुन्जाइश है कहाँ ? कल्पनाएँ करना, मान लेना, मोह रखना, मिथ्यात्व बनाना इनका तो कोई उत्तर नहीं है। लेकिन यह प्रकट दीख रहा है कि प्रत्येक जीव न्यारे-न्यारे अपने आप के स्वरूपमें ही परिणमते हैं और अनुभवते हैं, फिर मेरा जीव कौन स्वामी रहा ? और, जितनी देरका यह समागम है यह समय भी जल्दी निकल गया और रहा सहा जल्दी ही निकल जायगा। समय गुजर रहा है, उम्र भी ढल रही है लेकिन बाह्य पदार्थोंमें विकल्प तृष्णा ये बढ़ाते चले जा रहे हैं इनसे कुछ भी सिद्धि न होगी, यह सबसे बड़ी विडम्बना है अपने आपपर जो अत्यन्त भिन्न परपदार्थोंमें मोह ममताका विकल्प बना।

विपदासे बचनेका एक श्रावकोंका उपक्रम—विषय कषायकी विपदावोंसे बचनेके लिये हम लोगोंका कर्तव्य है देवपूजा, गुरूपास्ति, और स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये चाहे अपने आपको थोड़ा कष्टकारी मान लें पर यह बतलावो कि शुद्ध ज्ञान बनाकर प्रभुके सत्यस्वरूपकी उपासना उनके ध्यान करनेमें मनको या किसी भी प्रकारका क्या कष्ट होता है, न कोई द्रव्य खर्च होता न भूखा प्यासा रहना होता, कौनसी परेशानी है। लेकिन जिसे जिसकी लगाम न लगी हो ऐसा स्वच्छन्द घोड़ा जहाँ चाहे मुख उठाकर दौड़ता रहता है ऐसे ही जब तक इस वासना रूपी घोड़ेपर ज्ञानकी लगाम नहीं लगी हुई है तब तक यह स्वच्छन्द हुआ जिस चाहे और मुँह उठाकर दौड़ रहा है। हम इन तीन बातोंपर पूर्णरूपसे अमल करें तो हमारे उद्धार का सिलसिला रहेगा प्रभुपूजा प्रभुकी उपासना, प्रभुके गुणोंका स्मरण और गुरुवोंकी संगति। और तीसरा कर्तव्य है स्वाध्याय। ये ग्रन्थ मानो हमारे जीते जागते साधु महाराज ही हैं साधु मिलनसे वचन ही तो प्राप्त होते हैं और वे वचन हमें इन ग्रन्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

राजोंमें मिल रहे हैं स्वाध्यायमें भी हम सत्संगति और गुरुभक्ति बराबर किए जा रहे हैं और उससे जो आत्मज्ञान मिला, सम्यग्ज्ञानकी प्रेरणा मिली यह और ऊँची बात प्राप्त हुई है। हम आप बाह्य जीवोंसे– वैभवोंसे उपेक्षा करके अपने आपकी उपासना के लिये सत्कार्य करें और अपनेको जानें, अपनेमें मग्न होनेका यत्न करें।

प्रत्यक्षमात्र प्रमाणवाद—प्रमाण कहो या ज्ञान कहो दोनोंका प्रायः एक ही अर्थ है। प्रमाण दो होते हैं। क्या कोई ऐसा भी सिद्धान्त है कि जो सिर्फ एक ही प्रमाण मानता हो ? हाँ है, वह है चारुवाक सिद्धान्त ! यह सिद्धान्त जो जो कुछ नजर आता है केवल उस हीको मानता है, उसका सिद्धान्त यह है कि जब तक जीवो सुखसे जीवो, चाहे कर्ज लेकर घी खाना पड़े खूब खावो ! उसका इस लोकमें आत्मामें परलोकमें विश्वास नहीं है केवल एक सांसारिक सुखोंको ही भोगो और मौजसे रहो, इतना ही मात्र उनका मन्तव्य है। चारुवाक लोग एक प्रत्यक्ष प्रमाणको मानते हैं। जो नजरोंमें है वही है तत्त्व, इससे आगे–पीछे कुछ नहीं है। न नरक है, न स्वर्ग है, न मोक्ष है, न परलोक है, न कोई गतियाँ हैं और न मरकर यह जीव दूसरे शरीरमें पहुँचता है ऐसा एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना है। उनके इस मन्तव्यमें अनुमान आदिक अन्य प्रमाणोंका अन्तर्भाव नहीं बनता, क्योंकि प्रत्यक्षका कारण और है और अनुमान आदिकका कारण और है। इस कारण एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है यह मानना उनका संगत नहीं है।

चार्वाक सिद्धान्तमें अनुमानकी अप्रमाणता—अपने मन्तव्यके विवरणमें चारुवाक सिद्धान्त कह रहा है कि अनुमान तो अप्रमाण है, वह ज्ञान नहीं है। एक अंदाजा है, संशययुक्त हो गया तो हो गया, न हो गया तो न सही, अतएव अनुमानका अन्तर्भाव प्रत्यक्षमें नहीं होता ऐसा खेद करनेकी क्या जरूरत ? प्रमाण केवल एक ही है प्रत्यक्ष। यह सब शङ्काकार कह रहा है क्योंकि प्रमाण मुख्य हुआ करता गौण नहीं, अनुमान गौण है प्रमुख नहीं। जो पदार्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है, पर अनुमानसे पदार्थका निश्चय नहीं होता, क्योंकि जैसे धुवां देखकर अग्निका अनुमान किया कि यहां अग्नि होना चाहिए तो क्या यह बता सकते कि पत्थरकी अग्नि है या काठकी। बता तो नहीं सकते। और, प्रत्यक्षसे सब बात स्पष्ट रहती है इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि एक सामान्य अग्निको सिद्ध करते हो कि धुवां देख कर सामान्य अग्नि जान ली कि है कोई अग्नि तो इससे अर्थका निश्चय तो नहीं होता कि यह पत्थरकी अग्नि है या जैसे वह अग्नि है वैसे ही निर्णय तो नहीं होता। यह चारुवाक लोग कह रहे हैं इस कारण अनुमान पदार्थका निश्चय नहीं करता। प्रत्यक्ष ही पदार्थका निश्चय करता है।

व्याप्तिके अग्रहणसे अनुमानकी अप्रमाणताका कथन दूसरी बात यह है कि अनुमान बनता है तब जब उसकी व्याप्तिका ग्रहण हो जाय। साधनका साध्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के साथ अविनाभाव हुआ, अग्निके बिना धुवां नहीं हो सकता ऐसा निर्णय हो तब धूम हेतुसे अग्निका अनुमान बनेगा। तो व्याप्तिका बोध हो यह चीज इस जगह है तब अनुमान चलेगा। पर व्याप्तिका अवगम प्रत्यक्षसे नहीं होता। जहां जहाँ धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है, इसका ज्ञान क्या प्रत्यक्षसे होगा ? प्रत्यक्षसे तब बनेगा जब सब जगहके धुवां और और आग हमको आँखों दिखे। तो व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे तो होता नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष तो सामने मौजूद हुआ पदार्थको ग्रहण करता है, पर विश्व के सारे पदार्थ जब ग्रहणमें नहीं आ रहे तो व्याप्ति कैसे प्रत्यक्ष बना लेगा। तो जब तक व्याप्तिमें निश्चिति न हो जाय तब तक अनुमान नहीं लगता और व्याप्तिका ग्रहण प्रत्यक्षसे होता नहीं, अनुमानसे भी नहीं होता, क्योंकि अनुमान सिद्ध करनेकी बात चल रही। जब व्याप्तिका ग्रहण हो तो अनुमान बने। जब अनुमान बने तो व्याप्तिका ग्रहण हो, और कोई दूसरा भी प्रमाण व्याप्तिको ग्रहण करने वाला नहीं हैं इस कारण अनुमान अप्रमाण है ऐसा चारुवाक कह रहे हैं और अपने मतकी पुष्टिके लिये समर्थन कर रहे हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाण है अन्य कोई प्रमाण नहीं है।

चार्वाक सिद्धान्तका आधार चारुवाक सिद्धान्तसे न तो कोई युक्ति प्रमाण है क्योंकि युक्तियोंमें दृढ़ता नहीं है, एक अंदाजा है और फिर कोई युक्तियोंके द्वारा सच्ची बातको भी झूठ सिद्ध करदे और झूठ बातको भी सच्ची सिद्ध करदे जैसे वकालातका काम है तो युक्ति भी और शास्त्र भी प्रमाणभूत नहीं हैं क्योंकि किसीने कुछ लिखा किसीने कुछ लिखा। हम बोल रहे लिख रहे ये भी तो शास्त्र हैं। कोई भी ऋषी संत ऐसे नहीं हैं कि जिनके वचन प्रमाणभूत हों कोई प्रमाणके विषयमें कुछ कहते कोई कुछ कहते। तब फिर क्या प्रमाण है। एक अपना व्यवहार बनानेके लिये केवल यह प्रमाण है कि जिस रास्तेसे बड़े पुरुष चलते हों, जिस कामको बड़े पुरुष करते हों बस वह प्रमाण है, और वस्तुतः तो एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। इस प्रकार प्रमाणके कई भेद न मानकर केवल एकको ही ये प्रमाण मानते हैं।

अनुमानकी प्रमाणताका प्रतिपादन - चारुवाककी बनाई गई समस्यापर अब आचार्यदेव कहते हैं कि ये सब तुम्हारी कहने मात्रकी बातें हैं। अनुमान आदिक भी प्रत्यक्षकी तरह अपनी अपनी प्रतिनियत व्यवस्थामें विवादरहित हैं अतएव वे सब प्रमाण हैं। प्रत्यक्षसे प्रमाणता इस कारण है कि उनमें विवाद नहीं रहता। ऐसे ही अनुमानमें भी विवाद नहीं रहता है, अतएव प्रमाण है। धुवां देखकर अग्निका अनुमान किया तो अग्निका ही तो अनुमान किया, पर यह पत्थरकी आग है या काठकी इसका तो अनुमान नहीं किया। तो हेतु जानना भर साध्यके लिये दिया जाता है उतनेकी सिद्धि मानते। अनुमानमें कोई विवाद नहीं रहता अतएव अनुमान वास्तविक प्रमाण है केवल एक प्रत्यक्ष प्रमाण हो, ऐसा नहीं है।

Version 1

अनुमानका भी मुख्य प्रामाण्य—और जो चारुवाकोंने यह कहा था कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाण मुख्य हुआ करता है गौण नहीं, तो अनुमान भी तो एक मुख्य प्रमाण है, गौण कैसे होगा ? अनुमानको तुम गौण क्यों मानते हो ? क्या वह अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक बनता है इस कारण अनुमानको गौण माना ? गौण अनुमानको विषय करता है यह बात ठीक नहीं है क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करता है इसी प्रकार अनुमान भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करता है। पदार्थ जितने भी होते हैं विश्वमें सब सामान्य विशेषात्मक होते हैं। जैसे मनुष्य यह मनुष्य सामान्य हुआ और अमुक मनुष्य, अमुक नामका मनुष्य यह मनुष्य विशेष हुआ। कोई मनुष्य क्या ऐसा मिलेगा कि जिसमें मनुष्यपना सामान्य हो नहीं और वह किसी नामका व्यक्ति विशेष हो और ऐसा भी मनुष्य कोई मिलेगा क्या कि विशेष तो कुछ न हो, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, रूप, रङ्ग, पिण्ड, शरीर ये तो न हों और मनुष्य सामान्य हो ? ऐसा भी कोई न मिलेगा। जितने भी पदार्थ हैं वे सब सामान्य विशेषस्वरूप हैं, तो जैसे जितने भी पदार्थ हम निरख रहे हैं वे सब सामान्य विशेषरूप हैं ऐसे ही अनुमान प्रमाणसे जिस पदार्थका ज्ञान किया वह पदार्थ भी सामान्य विशेषात्मक है इस कारण अनुमान भी प्रत्यक्षकी तरह मुख्य पदार्थको विषय करता है गौणको नहीं, अवस्तुको नहीं। अनुमानका विषय अन्य लोगोंकी भाँति केवल एक सामान्य ही जाना जाय, ऐसा जैनशासनमें नहीं है। अनुमानसे भी सामान्य विशेषस्वरूप पदार्थ जाना जाता है। जैसे धुवां देखकर अग्नि समझा तो समझनेवालोंके चित्तमें अग्नि सामान्य और अग्नि विशेष दोनों रूपकी अग्नि समझी गई। इस कारण अनुमानका विषय गौण नहीं है।

अनुमानके गौणत्वकी सिद्धिमें प्रत्यक्षपूर्वकत्वकी अक्षमता— यदि यह कहो कि अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक होता है इस कारण गौण है, तो धुवां निरखकर अग्नि का ज्ञान हुआ तो पहिले कुछ प्रत्यक्ष हुआ तब जाकर अग्निका ज्ञान हुआ। तो प्रत्यक्ष पहिले होता अनुमान बादमें होता इस कारण यदि अनुमानको गौण मानोगे, मुख्य न मानोगे तो कोई कोई प्रत्यक्ष अनुमानपूर्वक भी होता है तो प्रत्यक्ष भी मुख्य नहीं रहा जैसे पहिले किसीने अनुमान किया फिर वह सामने आ गया। प्रत्यक्ष हो तो प्रत्यक्ष-पूर्वक कोई ज्ञान बना इस कारण वह गौण कहलाये यह बात ठीक नहीं है। प्रत्येक प्रमाण अपने अपने विषयक हैं।

अनुमानकी तर्कपूर्वकता—अनुमान भी प्रत्यक्ष तर्कपूर्वक नहीं होता किन्तु तर्कपूर्वक होता है। जहाँ जहां धुवां होता है वहां वहां आग होती है। जैसे रसोईघर, जहां अग्नि नहीं होती वहां धुवां भी नहीं होता। जैसे तालाब। तो यह प्रमाण अनुमानसे होता, प्रत्यक्ष नहीं। इसी कारण यह कहना चारुवाकोंका गलत है कि व्यक्तिका ग्रहण प्रत्यक्षसे नहीं होता। न हो तो क्या ? तर्कसे तो होता। अमुक पदार्थ का अमुकसे सम्बन्ध है, अविनाभाव हुआ ऐसा जो तर्क चलता है वह तर्क प्रमाण है और उससे अनुमानकी प्रवृत्ति होती है। यह भी नहीं कह सकते कि पदार्थ अनन्त हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सब पदार्थोंको जब तक हम न जान लें तो उनसे व्याप्ति कैसे बना लें। ऐसी दोष स्थितिका व्यभिचार भी नहीं आता, क्योंकि एक सामान्य द्वारसे एक सम्बन्ध जान लिया, तब नियम बना लिया कि जहां जहां धुवां होता है वहां वहां आग होती है, जहां आग नहीं है वहां धुआं नहीं है। इनमें जो भी आया, चाहे तर्कमें आया हुआ विषय हो या अनुमानसे आया हुआ शास्त्रका विषय हो, जो कुछ ज्ञानमें आयगा वह सब सामान्यविशेषात्मक आयगा। प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषस्वरूप होते हैं, इसका अर्थ यह हुआ।

चेतनकी सामान्यविशेषरूपता आत्मा चेतन है, उसमें सामान्य गुण तो है चैतन्य जो सब आत्मावोंमें बराबर एक समान पाया जाता है और विशेष हुए उस ही एक आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। उसही के गुण, उसही का स्वभाव। स्वरूप दृष्टिसे तो सामान्य हुआ और व्यक्तिकी दृष्टिसे विशेष हुआ जैसे गाय। गाय एक सामान्य शब्द है और गाय का रूप रङ्ग आकार यह विशेष हुआ। तो ऐसे ही जितने भी पदार्थ हैं सबमें सामान्य और विशेष मिलेगा। तो पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है इस बात को एक स्वतन्त्र विषय बनाकर आगे आचार्यदेव स्वयं कहेंगे। तो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ जैसे प्रत्यक्षका विषय है इसी प्रकार अनुमानका भी विषय है, अत एव यह कहना ठीक नहीं है कि सिर्फ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान, तर्क, आगम, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान आदिक ये सभी प्रमाण हैं।

संशय व विपर्ययकी अप्रमाणताका कारण जहाँ विवाद हो, विसम्वाद हो वे सब अप्रमाण हैं। विवाद होते हैं तीन तरहसे, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय होनेसे। यह जीव ईश्वरका अंश है अथवा स्वरूप है यों संदेह करना संशयज्ञान है। अथवा यह जीव इन भौतिक पृथ्वी आदिकके सम्बन्धसे तैयार हो गया है अथवा अपनी स्वतन्त्र सत्ता लिए हुए अनादिसे है? ऐसा संदेह करना संशयज्ञान है और इनमें से किसी एक पक्षसे ही दृढ़तासे मान लेना जो स्वरूपसे विपरीत हो वह विपर्ययज्ञान है। जैसे यह जीव शरीरात्मक ही है, विपर्ययज्ञान हो गया अथवा यह जीव एक ईश्वरका अंश है यह विपर्ययज्ञान हो गया जो स्वरूपसे विपरीतज्ञान हो तो वह विपर्ययज्ञान है।

स्याद्वादसे विसंवादनिवारणकी संभवता—किसी विसंवादको यदि स्याद्वाद से बैठा सकसे हो तो इसे बैठाना प्रमाणभूत हो जायगा। ईश्वर चैतन्य स्वभावी है, हम आप सब भी चैतन्यस्वभावी हैं इस कारण हम और ईश्वर एक ही पंक्तिमें बैठे हुए है। अब ईश्वरमें तो चैतन्यपूर्ण विकास हो, वे सर्वज्ञदेव हैं और हम आप छद्मस्थ जीवोंका ज्ञानपूर्ण विकसित नहीं है इस कारण हम आप एक अंशरूप हुए और ईश्वर पूर्णविकास रूप हो गया, तो विपर्ययज्ञान वह है कि वस्तु हो और भांति और मान लें एक निर्णयके साथ और भांति वह भी विसम्वादी ज्ञान है।

अनध्यवसायकी अप्रमाणता—तीसरा है अनध्यवसाय। किसी भी पदार्थ

http://sahjanandvarnishastra.org/

के सम्बन्धमें कुछ प्रतिभास होने पर तुरंत ही उत्सुकता न रही अथवा उसका ग्रहण न हो सका और उसे यों ही छोड़ दिया गया, उसका भी कोई निर्णय नहीं बन पाता, वह अनध्यवसाय है और वह भी अप्रमाण है। जैसे चलते जा रहे हैं रास्तेमें कहीं कोई तृण पैरमें लग गया तो कुछ तो पता हुआ कि कुछ लगा, परन्तु उसके बाद कुछ निर्णय नहीं रहा कि क्या लगा ? ऐसी स्थिति अनध्यवसायकी होती है। यह ज्ञान भी प्रमाण नहीं है। तो जो विवादपूर्वक है, अनिर्णय वाला है वह तो है अप्रमाण और जो ज्ञान विवादरहित है, सामान्य विशेषात्मक पदार्थको विषय करता है वह ज्ञान है प्रमाण। तो ऐसा प्रत्यक्ष भी है प्रमाण और अनुमान भी है प्रमाण, इस कारण केवल एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, यह कहना ठीक नहीं है। सो अनुमान भी प्रमाण मानना चाहिये।

अनुमान और तर्क प्रमाण माने बिना प्रत्यक्षके भी प्रमाणत्वकी असिद्धि – अनुमान होता है तर्कपूर्वक। प्रमाणके बिना तो यह भी तुम सिद्ध न कर सकोगे कि प्रत्यक्ष ही प्रमाण है क्योंकि मुख्य होनेसे। यदि तुम यह कहोगे कि प्रत्यक्ष प्रमाण है मुख्य होनेसे तो वह अनुमान बन गया। अनुमान बनाये बिना हम अपना प्रत्यक्ष भी सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि जो जो अनुमान होता है वह वह प्रमाण होता है, जो प्रमाण नहीं होता वह मुख्य भी नहीं होता, ऐसा सम्बन्ध तो बतावोगे ना ! ऐसे सम्बन्धको बतानेका जो प्रयास है वही तो तर्कज्ञान है, तर्कज्ञान माने बिना हम अपना प्रत्यक्ष भी प्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते। यदि प्रतिबंध अर्थात् सम्बन्धकी सिद्धिके बिना ही कोई बात सिद्ध हो जाय तो इससे अटपट सिद्धि होने लगेगी। तात्पर्य यह है कि चारुवाक लोग केवल प्रत्यक्षको प्रमाण मानते हैं सो प्रमाणकी ऐसी एक संख्या युक्त नहीं है। अनुमान भी बराबर प्रमाण है, इसमें कोई विवाद नहीं रहता। लोक व्यवहारमें अनुमानका अर्थ लोग अंदाजा मानते हैं। पर अनुमान का अर्थ वास्तवमें अंदाजा नहीं होता है। अनुमान प्रमाण नहीं है। तो केवल एक ही प्रमाण नहीं है। प्रमाण दो होते हैं। वे दो प्रमाण हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष। अब इस प्रत्यक्ष और परोक्षके बारेमें इस प्रकारसे वर्णन चलेगा जिसमें सभी ज्ञान आ जायें, कोई प्रमाण न छूटे। और, कोई प्रमाण न छूटे इसके लिये सर्वप्रथम प्रत्यक्ष के भेद किए जायेंगे– एक व्यावहारिक और दूसरा पारमार्थिक। हम आप लोगोंको परमार्थ प्रत्यक्ष नहीं हो रहा। वह इन इन्द्रियोंसे व्यवहारकी एक बात है। तो भेद अभेदसे इसमें युक्तियों सहित विस्तारसे बताया जायगा।

मात्र प्रत्यक्षको ही प्रमाण माननेपर प्रत्यक्षके प्रामाण्यकी असिद्धि– चारुवाक लोग एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते हैं। उनके प्रति कहा जा रहा है कि यदि केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण हो, अनुमान भी प्रमाण न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण है इस की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्यक्षकी प्रमाणतामें हेतु क्या है ? प्रत्यक्ष क्यों

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाण माना जाता है ? उसका हेतु देते हो कि वह मुख्य है इस कारण प्रत्यक्ष प्रमाण है, तब अनुमान ही तो बन गया। प्रत्यक्ष प्रमाण है क्योंकि मुख्य होनेसे। तो अनुमानसे प्रत्यक्षकी प्रमाणताकी सिद्धि हो गयी। और प्रमाणतामें अगौणत्वकी व्याप्ति भी सिद्ध हो गयी अतः तर्क भी प्रमाण बन गया, क्योंकि प्रमाणता और मुख्यपना इन दोनोंका जब तक सम्बन्ध सिद्ध न कर लिया जाय तबतक अनुमान न बन सकेगा। सम्बन्ध होता है सर्वरूपसे। जैसे जब कहा जाय कि जहाँ धुवां होता है वहाँ अग्नि होती है। तो सर्व प्रकारके धुवां और सर्व प्रकारकी अग्नि इतना सम्बन्ध माना जाता है। इस प्रकार यदि सर्व प्रकारके प्रत्यक्ष और सर्वप्रकारकी मुख्यताएँ इनका सम्बन्ध बने तो प्रत्यक्ष प्रमाण बन सकेगा, किन्तु सबको कौन जानता है अथवा जान ले कोई एक सामान्य रूपसे तो यह अनुमानका ढङ्ग बनता है।

अविसंवादिताके कारण सर्व अनुमानोंकी प्रमाणता— अनुमानमें अप्रमाणता नहीं है। अनुमानकी अप्रमाणताके प्रसङ्गमें अनुमान मात्रको अप्रामाण्य तुम कहते हो या जो इन्द्रियसे नहीं दिखते, अतीन्द्रिय पदार्थ हैं उनके प्रमाणको अप्रमाण कहते हो। यदि सभी अनुमानोंको अप्रमाण कहोगे तो लोक व्यवहार भी न रहेगा, क्योंकि अविनाभावी साधनसे साध्यका ज्ञान करते हुए लोग पाये जाते हैं। यदि रास्ते में नदी गदली भरी पूरी चल रही है तो अनुमान हो जाता है कि ऊपर वर्षा हुई है अन्यथा यह गंदी नदी न निकलती। और, और भी पद पदमें लोगोंका अनुमान प्रमाण मान लोगे तो लोक व्यवहार सब नष्ट हो जायगा यदि अतीन्द्रिय अर्थके ही अनुमानको अप्रमाण कहते हो, जो इन्द्रियोंसे नहीं दिखता उसका अनुमान अप्रमाण है यदि ऐसा मंतव्य है तो फिर तुम बतलावो कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष तो प्रमाण है मुख्य है और अतीन्द्रिय अनुमान अप्रमाण है गौण है यह व्यवस्था तुम कैसे बनाओगे ? जब अतीन्द्रिय अर्थ जाननेमें ही नहीं आ रहा तो वह अप्रमाण है यह व्यवस्था नहीं बन सकती।

अविसंवादितासे अनुमानकी प्रमाणता—देखिये ! अतीन्द्रिय या इन्द्रियसे या प्रत्यक्ष अनुमानसे अप्रमाण या प्रमाणकी व्यवस्था नहीं होती, किन्तु अविसंवादिता व विसंवादितासे यह व्यवस्था है क्योंकि अविसम्वादी ज्ञान है वह प्रमाण है और जिसमें विवाद है वह ज्ञान अप्रमाण है। अच्छा, जरा यह भी बतलावो कि एक दूसरेसे जो वचनालाप करते हो, व्यवहार करते हो तो दूसरेका चित्त तो अतीन्द्रिय है, उसका तो प्रत्यक्ष भी नहीं मानते तो फिर एक दूसरेसे बोलोगे भी कैसे ? व्यवहार भी कैसे करोगे ? अ: प्रत्यक्ष भी प्रमाण है और अनुमान भी प्रमाण है ऐसा मानना चाहिए, और फिर जैसे स्वर्ग है, देवताजन हैं और भी कोई अतीन्द्रिय पदार्थ हैं उनका तुम प्रतिबंध कैसे करोगे ? जो चीज आँखों नहीं दिखती उसका प्रतिबंधभी नहीं किया जा सकता तब फिर कैसे उन्हें अप्रमाण कह सकोगे ? इस कारण जो चारुवाक यह कह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है कि जो प्रत्यक्ष है वह प्रमाण है, अनुमान प्रमाण नहीं है अनुमानसे पदार्थका निश्चयनहींहोता यह बात चारुवाककी अयुक्त है।

प्रमाणके भेदोंका विधान—प्रमाणके भेदोंका वर्णन चल रहा है कि प्रमाण कितनी तरहके होते हैं। तो सर्वप्रथम प्रथम सूत्रमें यह बताया है कि प्रमाण दो प्रकार का है इसपर चारुवाकने आपत्तिकी कि प्रमाण तो एक होता है और वह है प्रत्यक्ष। उस समाधानमें यहां अनुमानकी भी प्रमाणताका कुछ वर्णन किया गया है। अब इन दो प्रमाणोंकी बात सुनकर क्षणिकवादी खुश होकर कहते हैं कि ठीक है यह बात सही है-प्रमाण दो ही होते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। तो इस प्रकारके दो भेद करने वालोंके प्रति आचार्यदेव उत्तर देते रहे हैं कि प्रमाण इस प्रकार दो तरहके यहीं हैं किन्तु प्रत्यक्ष और परोक्ष इस प्रकारके दो भेद हैं। भेद जिसके किए जाते हैं इस प्रकार किए जाते हैं कि उन भेदोंमें मूल चीज सब आ जाना चाहिए। जैसे जीवोके भेद दो हैं और उनको कोई यों बताने लगे कि एक स्थावर जीव और एक मुक्त जीव तो वे भेद सही नहीं हुए। भेद इस प्रकारके किये जाते हैं कि जिसके भेद किए जाएँ वे सब उन भेदोंमें समा जायें। इसमें त्रस जीव छूट गए। तो जीवके दो भेद सही नहीं हुए, संसारी और मुक्त कहो तो सही हो गए। जब संसारीके दो भेद बताये जायें और उन्हें कोई यों कहने लगे कि एक तो स्थावर और एक पञ्चेन्द्रिय, तो ये सही भेद नहीं हुए। संसारी जीवके भेद ऐसे करना चाहिए कि जिसमें सब संसारी आ जायें, कोई छूटे नहीं। यदि त्रस और स्थावर ये दो भेद किए जाते हैं संसारीके तो सही प्रकार हैं। इसी तरह प्रमाणके अथवा ज्ञानके प्रकार दो वे बताना चाहिए कि जिसमें सब ज्ञान गर्भित हो जांय और वह यही विधि है प्रत्यक्ष और परोक्ष।

क्षणिकवादमें प्रमाणभेदव्यवस्था—यहाँ क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि जब दुनियामें प्रमेय दो प्रकारके हैं एक सामान्य और एक विशेष तो इन दोनोंको छोड़कर तीसरी बात क्या हैं? तो जब प्रमेय ही दो हैं तो प्रमाण भी दो ही हो सकते हैं इससे अधिक नहीं। जो सामान्यको विषय करे वह तो है अनुमान और जो विशेषको विषय करे वह है प्रत्यक्ष। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें सामान्यको तो अवास्तविक कहते हैं और विशेषको वास्तविक कहते हैं। सामान्य कल्पना की हुई चीज है और विशेष यह साक्षात् अस्तिरूप है। विषय दो हैं, जाननेमें आये हुए तत्त्व दो हैं। तो जब प्रमेय दो हुए तो प्रमाण भी दो हो गए ऐसा क्षणिकवादी कह रहे हैं।

सर्व प्रमेयोंकी सामान्य विशेषात्मकता—प्रमेयद्वित्वकी समस्यापर आचार्यदेव कहते हैं कि नहीं, प्रमेय एक ही हुआ करता है दो नहीं, सामान्य विशेषात्मक विशेष कुछ वस्तु है, और कोई सा भी ज्ञान हो वह केवल सामान्यको विषय नहीं करता है। हां सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें सामान्यकी मुख्यतासे जानते हैं जब कभी तब सामान्यका ज्ञान हुआ और सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही जब विशेषकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मुख्यतासे जानते हैं तब विशेषका परिज्ञान कहलाया। सामान्य और विशेष ये दो स्वतंत्र भिन्न-भिन्न दो प्रमेय नहीं हैं कि सामान्य भी एक पदार्थ है और विशेष भी कोई एक पदार्थ है, और दूसरी बात यह है कि सामान्यमात्रको ही अनुमान जानता है ऐसा कहनेपर तो फिर अनुमानसे विशेषका परिज्ञान न होना चाहिए विशेषकी प्रवृत्ति भी न होना चाहिए क्योंकि दूसरेको विषय करे ज्ञान और दूसरेमें प्रवृत्ति कराये यह सम्भव नहीं है। सामान्यको तो अनुमान जनावे और विशेषमें प्रवृत्ति बने तो यह निर्णय रखना कि अनुमान भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है। जैसे कि प्रत्यक्ष सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थकी ज्ञानविषयता—यहाँ प्रमाणके प्रकारोंका वर्णन करते हुए इस प्रसङ्गमें यह बात छिड़ गई कि कोई सा भी ज्ञान हो, समस्त ज्ञान सामन्यविशेषात्मक पदार्थको जानते हैं। न केवल सामान्यरूप कोई पदार्थ है और न केवल विशेषरूप पदार्थ है कोई। जैसे कोई कहे कि एक मनुष्यको बुला आवो तो वह चाहे जिस मनुष्यको बुला लाये, उसे कुछ कहनेका अधिकार नहीं कि तुम दूकानदारको क्यों ले आये ? या तुम बाबू जीको क्यों ले आये ? अथवा इस बुढ़े आदमीको क्यों ले आये ? तुम्हें तो मनुष्य लाना था, तो अब दूकानदार, बाबूजी, बूढ़ा आदमी या पण्डित, मूर्ख आदि किसीको लाये। इनके अलावा वह क्या लाये, सो बतावो ? तो विशेषरहित सामान्य नहीं हुआ करता है। कोई कहे कि भाई, तुम पण्डित जीको ले आवो। वह ला दे किसी पंडितको, और वह कहे कि तुम यह मनुष्य क्यों ले आये, तुम्हें तो केवल पण्डित जीको लाना था, क्योंकि हमने तो पण्डित जीको लानेके लिए कहा था। तो सामान्यविशेषात्मक ही सब चीजें मिलेंगी। न कोई केवल सामान्य है और न कोई केवल विशेष है। तो अनुमान भी सामान्यविशेषात्मक पदार्थको ही जानता है, केवल सामान्यको नहीं।

अनुमानविषयकी सामान्यविशेषात्मकता—यदि अनुमान केवल सामान्यको ही जाने तो फिर अनुमानसे किसी विशेषका न तो ज्ञान हो सकेगा न किसी विशेषमें प्रवृत्ति हो सकेगी। शायद यह कहो कि साधनसे अनुमान तो किया सामान्यका और सामान्यसे फिर हुआ विशेषके प्रति ज्ञान। इस कारण विशेषमें प्रवृत्ति बनती है। देखिये ! साधनसे साध्यके ज्ञानका नाम अनुमान है। धुवां देखकर अग्निका ज्ञान कर लेना इसना माम अनुमान है। तो अग्निका जो कोई अनुमान करता है वह केवल अग्नि सामान्यका अनुमान नहीं करता क्योंकि सामान्य मात्र कुछ चीज नहीं है। अनुमान करते हैं अग्नि विशेषका और उसे जरूरी है जाड़ेके दिनोंमें ठंढ मिटानेकी तो झट वही बात आ जाती है। तो अनुमानसे विशेषका ज्ञान हुआ और उस विशेषका उपयोग भी किया।

साधनसे सामान्य विशेषात्मक साध्यका ज्ञान—इस सिलसिलेमें ये क्षण-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षयवादी जन यह कह रहे हैं कि नहीं साधनसे सामान्यका ज्ञान हुआ। जैसे धुवांसे अग्निका ज्ञान हुआ और अग्नि सामान्यसे फिर अग्नि विशेषका परिचय हुआ तो इतना घुमाकर कहनेकी अपेक्षा सीधा यों ही क्यों न मान लो कि साधनसे ही अग्नि विशेषका ज्ञान हुआ। यद्यपि धुवां निरखकर कुछ यह ज्ञान न हो पाये कि यह ठूठकी आग है या कोयलेकी। इस कालमें हुआ यह ज्ञान किन्तु आगका ज्ञान हो गया। कुछ मुद्रा कुछ भेद तो समझमें आता ही है, वह विशेषरूप हुआ सामान्य केवल कुछ चीज नहीं है तो साधनसे भी सामान्य विशेषात्मकका ज्ञान हुआ। तो प्रमेय जगतमें एक ही प्रकारका है सामान्यविशेषात्मक पदार्थ। जब कभी किसी पदार्थमें गुणका ज्ञान किया जा रहा हो आत्मामें जितने गुण हैं उस समय भी केवल गुणका ज्ञान नहीं किया जा रहा है किन्तु चैतन्यात्मक सामान्य विशेषात्मक आत्माको एक गुण की मुख्यतासे देखा जा रहा है। सामान्य केवल कुछ नहीं होता। केवल जुदा पदार्थ है और फिर उसे जानें तब तो किसीके इस सम्बन्ध ज्ञानसे केवल चैतन्य सामान्यको जाना, पर ऐसा तो है नहीं।

प्रमेयद्वित्वकी असङ्गतता—तत्त्वार्थसूत्रमें जहां मतिज्ञानके प्रकार बताये गये हैं, मतिज्ञान ४ भेदरूप है—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। और, ये चार भेद बहुविध १२ प्रकारके पदार्थोंसे होता है, उसे कहनेके बाद भी फिर एक सूत्र और रचा – "अर्थस्य" जिससे यह स्पष्ट कर दिया गया कि ज्ञान ये जितने भी होते हैं और प्रकृतमें यह मतिज्ञान पदार्थका ही ज्ञान करता है, केवल गुणका, केवल पर्यायका ज्ञान नहीं हुआ करता क्योंकि केवल गुण एक सद्भूत वस्तु ही नहीं, केवल पर्याय एक सद्भूत वस्तु नहीं। एक सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही जब विशेषकी मुख्यतासे जानते हैं तो पर्यायका ज्ञान होता है। और जब उस सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही स्वभावकी मुख्यतासे जानते हैं तो सामान्यका ज्ञान होता है। तो यों प्रमेय दो नहीं हैं—एक ही प्रकारका प्रमेय हैं तो यह कहना व्यर्थ है कि जो सामान्यका विषय करे सो अनुमान और विशेषको जाने सो प्रत्यक्ष। ये दो ही प्रमाण हो सकते हैं और इससे अतिरिक्त नहीं होते न अन्य प्रकार होते ऐसा क्षणिकवादीका कहना असंगत है।

ज्ञानका भेदविस्तार— जैन शासनमें ज्ञानके भेदका विस्तार इस प्रकार किया गया है कि मूलमें ज्ञान एक है। जो जाने सो ज्ञान। जाननमात्र स्वरूपको लक्ष्य में लेकर सभी जितने भी भाव किए जायेंगे वे सब ज्ञानरूप हैं। फिर उस ज्ञानके दो भेद हैं, प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष और परोक्षकी वास्तविक व्याख्या तो यह है कि जो इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना केवल आत्मीय शक्तिसे जाने वह तो है प्रत्यक्ष ज्ञान, और जो इन्द्रिय मन आदिकका निमित्त पाकर जाने उसका नाम है परोक्ष ज्ञान। फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञानमें चूंकि स्पष्टता आती है, अवधिज्ञानसे जो जाना जायगा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वह स्पष्ट ज्ञात होगा, मन:पर्यय और केवल ज्ञानसे जो जाना जाता है वह स्पष्ट जाना जाता है; तो उस स्पष्टताकी नकल कुछ कुछ इन इन्द्रिय प्रत्यक्षोंमें पायी जाती है। जैसे कि हम आप लोग कहा करते हैं कि हमने आँखोंसे प्रत्यक्ष देखा। आंखोंसे किसी बातको देख लेनेपर फिर सन्देह नहीं रहता। स्पष्टता रहती है तो यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष की स्पष्टता कुछ स्पष्टता जैसी है अतएव प्रत्यक्षके दार्शनिक शास्त्रोंमें दो भेद किए गए सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। इन्द्रिय और मनसे सीधा जो जाना जाता है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है और अवधिज्ञान, मन:पर्याय, केवलज्ञान ये पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं।

परोक्षके भेदोंमें एक भेद अनुमान—अब दार्शनिक पद्धतिमें परोक्षका विस्तार सुनिये—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये ५ परोक्षके भेद हैं, यद्यपि सांव्यवहारिक भी परोक्ष ही है वह प्रत्यक्ष नहीं है क्योंकि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षमें इन्द्रियकी अपेक्षा होती है लेकिन कुछ विशदताकी बनावट होनेसे उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है। इस प्रकार ज्ञानके भेदके विवरण में कोई सा भी ज्ञान छूटता नहीं है लेकिन इसके विरुद्ध अनेक दार्शनिक और-और प्रकारसे प्रमाणके भेद करते हैं। उन भेदोंका विश्लेषण और उनकी मीमांसा चलरही है। न तो एक प्रत्यक्षमात्र ही प्रमाण है और न प्रत्यक्ष अनुमान, इस प्रकार दो भेद प्रमाणके हैं—

ज्ञानमें विशेषकी मुख्यता—प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हैं, ऐसा कहनेमें जो हेतु दिया गया है कि प्रमेय दो हैं अतएव प्रमाण भी दो हैं, वे युक्तिसङ्गत नहीं बैठते क्योंकि अनुमानसे भी सामान्य विशेषात्मक ही पदार्थ जाने जाते हैं और तभी विशेषमें प्रवृत्ति देखी जाती है और विशेषकी मुख्यतासे ही अनुमानको प्रमाण कहा है। यदि यह कहो कि जो भी अनुमानमें साधन बनेगा उस साधनका विशेषमें नियम नहीं बैठता। जैसे जहां जहां धुवां है वहां वहाँ कोयलेकी अग्नि है, यह सम्बन्ध तो नहीं बैठता। इस कारण अनुमानसे विशेषका ज्ञान नहीं होता। तो कहते हैं कि यह बात सामान्यमें भी है। किसी भी साधनका सामान्यसे अविनाभाव नहीं बनता। जिसे लोग सामान्य समझते हैं वह तो विशेष है।

मात्र सामान्यमें अर्थक्रियाका अभाव—सामान्य वह है जिससे कोई कार्य नहीं बनता। जैसे कोई कहे कि गायका दूध लावो। गाय सामान्यका दूध लावो तो रूप गायके बिना दूध कहाँसे लायगा। अरे लाल काली आदि गायका ही तो दूध लायगा; तो किसी आवान्तर सत्तावानसे ही लायगा। गाय सामान्यसे दूध नहीं निकयता, ऐसे ही जितने भी सामान्य हैं उनसे काम नहीं बनता। कोई काम कराना है, यह मनुष्य सामान्यसे करा लीजिए। अरे कैसे करायें? जिसके हाथ नहीं, पैर नहीं, मुद्रा नहीं, जो पकड़ा न जा सके ऐसा कोई मनुष्य हो तो उसे लावो उससे काम करावो। तो सामान्यमें अर्थक्रिया नहीं होती। अर्थात् साधनसे सामान्यका भी अनु-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मान होता है वह एक सामान्यरूप नहीं है । तो सामान्यसे भी साधनका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं बना ।

केवल सामान्यकी अविषयता—यदि कहो कि साधन और सामान्यका सम्बन्ध न बने तो भी अनुमान सामान्यका का गमक होता है, अथवा सामान्य विशेष का गमक होता है, तो इस तरह सीधा हेतुसे ही विशेषताका ज्ञान क्यों नहीं मान लिया जाता । पदार्थ सब सामान्य विशेषात्मक हैं, उनमेंसे किसीको प्रत्यक्षसे जान लिया जाता किसीको मनसे स्मरण करके जान लिया जाता, किसीको अनुमानसे जान लिया जाता, पर जितने भी ज्ञान होंगे किसी भी ज्ञानसे वह समस्त ज्ञान सामान्य विशेषात्मक पदार्थको ही जानने वाला होगा । न केवल सामान्यको ही कोई जानता है और न केवल विशेषको ही कोई जानता है ।

प्रमाणसे अनुभवकी आन्तरिकता—देखिये अनुभवका विषय और प्रमाण का विषय ये दो विषय जुदी जुदी दिशावोंके हैं । जैसे कभी कोई मिष्ठ व्यञ्जन खाये, मानो किसीने हलुवा ही खाया तो उसका विवरण विश्लेषण जब करेगा, प्रमाण करेगा यह ठीक बना विधिपूर्वक बना तो वह प्रमाणका विषय बनेगा लेकिन जैसे आँखें मीचकर यहाँ वहाँ की चिन्ता न रखकर केवल एक स्वादका ही आनन्दले तो वह एक अनुभव जैसी चीज बने । इसी प्रकार आत्मामें भी देखिये जब आत्मामें ज्ञान आदिकका विश्लेषण करे तब तो वह प्रमाण क्षेत्रकी बात है और जब केवल शुद्ध ज्ञायक स्वरूपका निर्विकल्प अनुभव करे तो वह प्रमाणक्षेत्रसे भी और ऊपर उठकर मात्र अनुभवकी बात रही । तो प्रमाणका जो भी विषय बनेगा वह विशेष बनेगा, जिसका विश्लेषण किया जा सकेगा वह बनेगा, शेष तो अनुभव की बात है, जो कि प्रमाणसे भी ऊपर की चीज है । यहाँ अनुभवकी बातका प्रमाण नहीं कर रहे, किन्तु प्रमाणके स्वरूपका और भेदका वर्णन कर रहे हैं ।

ज्ञानप्रसङ्गकी वार्ता—इस लोकमें सब कुछ ज्ञानकी ही महिमा है । मनुष्योंको विशेष ज्ञान है और वे अपने ज्ञानबलसे लोकको व्यवस्था बनाते हैं । बनाते नहीं किन्तु जानते हैं और उस व्यवस्थामें कारण बनते हैं । वही ज्ञान प्रमाण है । वह ज्ञान दो प्रकारका होता है—एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष । प्रत्यक्ष तो उसे कहते हैं जो आत्माके द्वारा सीधा स्पष्ट जाना जाय । परोक्ष उसे कहते हैं जो स्पष्ट न जाना जाय । किन्तु इन्द्रियके निमित्तसे समझा जाय और युक्तियोंसे भी जाना जाय । ज्ञानके इन दो भेदोंको न मानकर क्षणिकवादी बौद्धजन प्रत्यक्ष और अनुमान इस प्रकार दो भेदोंको मानते हैं आगम तर्क प्रत्यभिज्ञान इन सबकी और उनकी दृष्टि नहीं है ।

क्षणक्षयवादके प्रत्यक्ष व अनुमानकी मीमांसा—क्षणिकवादका सिद्धान्त है कि प्रत्यक्ष तो वास्तविक प्रमाण है और अनुमान गौण प्रमाण है । यद्यपि कुछ ऐसा लगतासा है कि प्रत्यक्ष तो एक सही स्पष्ट ज्ञान है और परोक्ष अनुमान एक गौण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान है। अनुमान ठीक हो भी, न भी हो ? लेकिन न तो यह क्षणिकवादी बौद्ध प्रत्यक्षको ऐसा मानता है जैसा कि लोग जानते हैं, उनका प्रत्यक्ष है ऐसा विलक्षण कि जिसमें कुछ ज्ञात ही नहीं होता। बौद्धोंका प्रत्यक्ष ज्ञान है निर्विकल्प विशेषका ग्रहण करने वाला। और अनुमानको बताते हैं कि यह अन्यापोहका ग्रहण करता है। यह सिद्धान्तदृष्टिसे कहा जा रहा है जैसा कि बौद्ध लोग मानते हैं। किसी भी वस्तु को जानकर यदि उसमें यह भाव उठ आये कि यह घड़ी है, यह अमुक चीज है तो वह अनुमान बन गया, प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं रहा। इसमें भी "अन्य नहीं है" यह ज्ञान बना, घड़ी आदि तो कल्पना है। बौद्धोंको जब कि सब लोग स्पष्ट जानते हैं कि यह चीज जो दिख रही है यह सब प्रत्यक्ष है। जो चीज नहीं दिखती है उसका तो अनुमान होता है पर जो सामने है उसका अनुमान क्या। लेकिन, क्षणिकवादी लोग प्रत्येक ज्ञानके साथ उसमें जो सामान्य प्रतिभास है उसे तो प्रत्यक्ष कहते हैं। और कुछ नई बात मालूम पड़े भेदवाली, आकार वाली, रूपरंग वाली तो उसे वे अनुमान कहते हैं। दार्शनिक दृष्टिसे उनका मंतव्य है कि अनुमान तो एक अन्यापोह-रूपसे सामान्य अर्थको जानता है और प्रत्यक्ष निर्विशेष विशेष अर्थको जानता है। उस पद्धतिमें यहाँ यह आपत्ति दी जा रही है कि यदि अनुमान तो सामान्यको जाने और प्रत्यक्ष विशेषको जाने तो उस सामान्यसे विशेषका ज्ञान कैसे बन जायगा ?

सामान्य विशेषात्मकताके बिना वस्तुत्वकी असिद्धि— बात यों है कि जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब सामान्य विशेषात्मक हैं। न कोई चीज केवल सामान्यरूप है और न केवल विशेषरूप। मनुष्य सामान्य हुआ और जाति, कुल, अथवा योग्यता पंडित मूर्ख, बाबू आदिक ये विशेष हुए। केवल पंडित बाबू आदि हो और मनुष्य न हो ऐसा तो नहीं है अथवा कोई मनुष्य तो है पर उसमें बुढ़ापा जवानी आदिकी बातें न हों ऐसा भी तो नहीं है। तो प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। तभी उसमें उत्पादव्यय ध्रौव्यकी बात घटती है। यदि कोई चीज सामान्य रूप ही है तो ध्रौव्य तो येनकेन प्रकारेण उसमें घट जायगा, पर उत्पादव्यय तो नहीं बना। और, केवल विशेषको ही माना जाय तो ध्रुव न बनेगा, क्योंकि जितने विशेष हैं वे सब उत्पन्न होते हैं नष्ट होते हैं, सदा नहीं रहते। कोई भी विशेषता शाश्वत नहीं होती। तो प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यसे युक्त है, क्योंकि वह सामान्य विशेषात्मक है। ज्ञान सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जानता है। हाँ ज्ञानके भेद इस तरहसे तो होते हैं कि ज्ञान इन्द्रिय द्वारा जानता है, कोई ज्ञान युक्तियोंसे जानता है, पर सामान्यको ही जाने वह अनुमान ज्ञान है और विशेषको ही जाने वह प्रत्यक्ष ज्ञान है; इस तरह भेद न बनेंगे।

ज्ञानत्वके निर्णयमें लोकोत्तरता— जिसने ज्ञानके स्वरूपका निर्णय कर लिया है वह पुरुष तो लोकोत्तर पुरुष है, संसारसे छूट सकने वाला पुरुष है और जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुरुष जान करके भी, ज्ञानका उपयोग करके भी ज्ञानके स्वरूपकी बात नहीं जानते, किन्तु बाहरमें ये ज्ञेय बाह्य पदार्थोंका ही स्वरूप जानते हैं अथवा इनमें ही व्यवहार करते हैं वे पुरुष अंधेरेमें है, उन्हें शान्तिका पथ नहीं सूझता है। शान्तिका मार्ग केवल एक आत्मावलोकन है। बाह्य पदार्थमें जहाँ दृष्टि दी, जहाँ किसी बाह्य चीजको अपने दिलमें बसाया बस वही पराधीनताकी बात आ गई। उन बाहरी चीजोंका संयोग हुआ तो उनका वियोग भी होगा, वे सभी चीजें बिछुड़ जावेंगी, उनपर किसीका कुछ भी अधिकार नहीं है। उन बाह्य पदार्थोंकी चाह करना इसमें तो आपत्ति और विडम्बना है। इस लोकमें भी देख लो किसी दूसरेके धन वैभव मकान आदिकको यदि हम अपनाना चाहें तो उसमें हमें आकुलता तो होगी ही। जिसपर हमारा अधिकार नहीं उसपर हमारी अभिलाषा गई तो यह तो एक पराधीन बननेकी बात है। तो परमार्थमें देखिये कि जो पदार्थ पर है, समस्त धन पर है। प्रत्येक पुद्गल पर है, प्रत्येक जीव पर है। तो जो पदार्थ पर है, मेरे आधीन नहीं है उसे मैं चाहूं तो उसमें तो आकुलता ही होगी। जो पुरुष केवल आत्माको ही चाहता है उसको शांतिमार्ग मिलता है।

प्रासंगिक आत्मनिर्णय—यह मैं आत्मा सामान्य विशेषात्मक हूँ, सामान्य स्वरूप में मैं सदाकाल रहने वाला हूँ, अनादि कालसे मेरा अस्तित्व है, अनन्त काल तक मेरा अस्तित्व है, ऐसा शाश्वत सनातन जो एक चैतन्य सामान्य है तद्रूप मैं हूँ, इतनेपर भी केवल सामान्यरूप कुछ हो नहीं सकता, सो यह मैं चेतन आत्मा प्रति समय किसी न किसी अवस्थामें रहा करता हूँ। यदि मेरी कुछ भी अवस्थायें न बनें तो मेरा अस्तित्व ही न रहेगा। ऐसा कौन सा पदार्थ है कि जिसकी अवस्था तो कुछ भी न हो और अस्तित्व उसका माना जाय ? कोई पदार्थ नहीं हैं। मैं यों सामान्य विशेषात्मक हूँ, मैं अपने में अपना परिणमन करता रहता हूँ, मेरी दुनिया जितना मेरा आत्मा है उतनी ही है, मेरा कर्तापन भोक्ता पन सुख दुःख, सब कुछ मेरे ही प्रदेशोंमें है है, मेरी कोई भी चीज मेरेसे बाहर नहीं है।

आत्माका अनात्मपदार्थोंसे असम्बन्ध—जो लोग दुःख मान रहे हैं वह भी एक भ्रमकी चीज है। न तो आत्मामें दुःख है, न बाहर दुःखकी बात है। इसी तरह बाहरमें कोई सुखकी बात भी नहीं है। ये सुख दुःख तो कल्पनायें करके बाहरमें माने जा रहे हैं। खूब विशद दृष्टि करके निरखिये ! जरा इन्द्रिय व्यापारको बंद करके कुछ भीतर निरखिये कि मेरा कितना विस्तार है, मैं कहाँ तक फैला हुआ हूँ, मेरा कहाँ तक किससे सम्बन्ध है। मैं एक सत् हूँ, अपने द्रव्यसे हूँ, अपने क्षेत्रसे हूँ, अपने कालसे हूँ और अपने ही गुणोंसे हूँ। किसी परसे मेरा कोई वास्ता नहीं है। सभी न्यारे न्यारे अपनी अपनी सत्तामें रहा करते हैं। खूब परख लो जब मोह ममतामें चित्त रहता है तो वस्तुस्वरूप समझमें नहीं आता, नहीं सुहाता क्योंकि उसमें ममता है। जिसमें ममता है वह हमें प्रिय लग रहा है, वह मेरा जच रहा है, उसमें मेरा हित है, उसपर

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मेरा अधिकार है यों दिख रहा है, पर किसपर अधिकार है ? मरण होनेपर तो यह जीव अकेला ही जाता है, यहाँसे एक छदाम भी कुछ पासमें नहीं ले जाता। तो फिर कहां किसीपर इस जीवका अधिकार रहा ? इस जीवनमें भी देख लीजिए ! सब कुछ बाहर बाहर ही तो पड़ा रहता है।

मनुष्य दशाकी मीमांसा – भैया ! हम आप सबका इतना तो महा सौभाग्य है कि नाना तिर्यञ्चोंकी व नारकादिककी गतियोंसे निकलकर आज मनुष्य हुए हैं, बढ़ा ज्ञान प्राप्त किया है और निष्कलङ्क पवित्र पतितोद्धारक जैन शासनका शरण मिला है इतना तो सौभाग्य है, पर थोड़ा दुर्भाग्य यों कह सकते कि पंचम कालमें हम आपका जन्म हुआ है जहां मोही जीवोंकी बहुलता है। यह मोही जीवोंकी बहुलता हमें अपने धर्ममार्गसे विचलित होनेमें बहुत बड़ा कारण बनती है। लेकिन हम कुछ सौभाग्य वाली बातपर विशेष दृष्टि देकर ज्ञानका सदुपयोग करें तो उसमें हमारा उद्धार है। क्या है वैभव ? क्या है सम्पदा ? ये सब भिन्न हैं, तुच्छ हैं, बाहरी बातें हैं इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। मेरा तो केवल भाव ही भाव है। उस ज्ञानमात्र अपने आपको सम्हालिये तो वहां शान्ति मिलेगी। ऐसा यह मैं आत्मा सामान्यविशेषात्मक हूँ। इसका ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे भी होता, अनुमानसे भी होता, आगमसे भी जाना जाता है। इसलिए ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही हैं सो बात नहीं, किन्तु समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोमें बँटा हुआ है।

पञ्चमकालका रूप – प्रश्न— इस पंचम कालमें उत्पन्न होनेको दुर्भाग्य कैसे कहा जाय ? अगर चौथे कालमें उत्पन्न हुए होते तो क्या विशेषता थी ?

उत्तर— हम आप सब लोग सब भावोंके आधीन हैं, भावोंसे सुधार है और भावोंसे ही बिगाड़ है लेकिन बाहरी वातावरणकी अपेक्षा कहा जा सकता है कि चतुर्थकालमें सुधारके बहुत साधन थे, और इतना तो था ही कि साक्षात् मोक्ष होता था, पर पंचम कालमें साक्षात् मोक्ष नहीं है। एक त्रुटी यह और दूसरी बात — यद्यपि चतुर्थ कालमें सभी मनुष्य मोक्ष न जाते थे, पापी भी होते थे और कोई कोई तो पंचम कालके मनुष्यों से भी अधिक पापी थे। पंचम कालके मनुष्य बज्रवृषभनाराच संहनन वाले नहीं हैं ये यदि अधिक पाप करें तो भी ७ वें नरकमें नहीं जा सकते, पर चतुर्थ कालमें बज्रवृषभनाराच संहनन वाले लोग थे, वे पाप करें तो ७ वें नरकमें भी जा सकते थे, लेकिन अरहंत भगवानके दर्शन होना, समवशरणमें जाना, विशेष ज्ञानियोंका समागम मिलना यह चौथे कालमें था इस दृष्टिसे यह बात कही जा रही है कि हम आप लोगों का कुछ दुर्भाग्य है जो पंचम कालमें उत्पन्न हुए हैं, बाकी परवाहकी कुछ बात नहीं। सम्यक्त्वकी साधना तो इस पंचम कालमें भी बन सकती है। न हो साक्षात् मोक्ष मार्ग, पर जिसे सम्यक्त्व मिल गया उसने मोक्षका रास्ता तो खोल लिया।

अनुभवके लिये निर्णयकी आवश्यकता— कारणसमयसाररूप चैतन्यका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो अनुभव है वह तो तब बने कि जैसा सही स्वरूप है वैसा ज्ञानमें तो आये। उस स्वरूपकी और उसके परिणामस्वरूप ज्ञानकी चर्चा चल रही है कि वह मेरा आत्मस्वरूप सामान्यविशेषात्मक है। उसे हम कभी स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे भी जानते हैं, युक्तियोंसे भी पहिचानते और आगमकी प्रधानतासे भी जानते। ऐसा नहीं है कि सामान्य और विशेष ये दो विषय कोई अलग अलग हों और कुछ विशेषकी जानकारी सामान्यसे बने, क्योंकि साधनका विशेषोंसे सम्बन्ध बने। यदि कहो कि सम्बन्ध न होनेपर भी जानकारी बनी रहती है तो साधनसे ही सीधा विशेषका ज्ञान क्यों न मान लिया जाय ! प्रतिबन्ध तो माना ही नहीं, फिर उसी हेतुसे ही सीधा विशेषका ज्ञान क्यों नहीं बनता ? सामान्यका भी सामान्यके ही द्वारा यदि विशेषमें अविनाभावका सम्बन्ध जाना जाय तो उसमें अनवस्था दोष होगा सामान्यसे सामान्यकी उत्पत्ति माननेपर, और विशेषमें प्रवृत्ति न होनेपर, फिर उससे अन्य सामान्य मानना पड़ेगा तो यही दोष आयगा, इसलिए सामान्य और उसके अनुमानका अनवस्थान हो जायगा। अनेक नय माने, अनेक अनुमान माने तो विशेषकी जानकारी ही न मिलेगी। वास्तविकता यह है कि पदार्थ तो सामान्यविशेषात्मक है हम कभी द्रव्यदृष्टिकी प्रधानता करते हैं तो सामान्यका बोद्ध होता है और पर्याय दृष्टिकी प्रधानता करते हैं तो विशेषका बोध होता है।

सामान्यविशेषात्मकताके अभावमें ज्ञानकी अव्यवस्था—व्याप्यसे व्यापक जाना जाता है और व्याप्यसे व्याप्य नियमतः नहीं जाना जाता है। जैसे बृक्ष व्यापक है और नीमका पेड़ यह व्याप्क है। व्यापक उसे कहते हैं जो बहुत जगह रहता है, व्याप्य उसे कहते हैं जो थोड़ी जगह रहता है। नीमका पेड़ कोई कोई बृक्ष होता है और बृक्ष तो सारे ही बृक्ष कहलाते हैं। तो हम यह तो सिद्ध देंगे कि यह बृक्ष है, क्योंकि नीमका पेड़ है, पर यह सिद्ध न कर सकेंगे कि यह नीमका पेड़ है, क्योंकि बृक्ष है, बृक्ष तो सारे ही हैं। बटका बृक्ष हो तो क्या उसे भी नीमका बृक्ष कह देंगे ? नहीं ! तो जो व्यापक है वह तो जाननेमें आया करता है जो व्याप्य है वह जनानेवाला होता है। कार्यका कारण व्यापक है, भावका स्वभाव व्यापक है। ये क्षणिकवादी लोग सामान्यसे विशेषका ज्ञान होना मानते हैं, तो सामान्य तो है बहुत जगह और विशेष होता है कोई कोई। तो विशेषसे कोई सामान्यका बोध करना चाहे तो वह तो ठीक है पर सामान्यसे विशेषका बोध नहीं होता। जैसे बृक्ष होनेसे यह नीमका पेड़ है, यह सिद्ध नहीं होता क्योंकि बृक्ष सामान्य है, नीमका पेड़ विशेष है, इसी तरह सामान्यसे विशेषका ज्ञान नही होता। यदि मानें कि विशेष भी व्यापक है तो यह बात सिद्ध हो गयी कि सभी चीजें सामान्यविशेषरूप हैं।

ज्ञानके सदुपयोगका अनुरोध—भैया ! पदार्थके स्वरूपकी यथार्थ जानकारी बिना जीवका संसारमें भ्रमण चलता रहता है, उनका उपयोग हितके विषयमें नहीं लग रहा, मोह भी नहीं हट रहा क्योंकि वस्तुकी यथार्थ जानकारी नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

घरमें जो भी जीव अचानक कहींसे आकर पैदा हो गए तो उन्हें यह मोही जीव अपना मान लेता है, उनसे प्रीति करने लगता है। अरे, वह तो शरीर, जीव और कर्मका पिंडोला है, उसमें यह प्रीति करने लगता है। खाली शरीरसे अथवा खाली जीवसे कोई प्रीति नहीं करता। जब ये तीनों मिल गए (शरीर, जीव और कर्म) तो ये बिछुड़ेंगे भी ! ये कोई परमार्थ चीज तो हैं नहीं, असमान जातीय द्रव्यपर्याय हैं। जीव है चेतन, शरीर है अचेतन इन दोनोंका यह पिंडोला है। तो कोई वास्तविक चीज हुई क्या जिससे प्रीति की जा रही है ? यह तो कोई वास्तविक चीज नहीं है। मायारूप है इन्द्रजाल है, क्षणिक है, नष्ट हो जाने वाली है, भिन्न है, इसकी प्रीतिसे हम क्या हित पायेंगे ? सोचिये तो सही। रुचि करें तो परमात्मतत्त्वकी करें, जो अपने आपमें बसा हुआ है, स्वाधीन है, स्वयं है जिसकी दृष्टि करें तो करते रहें। यह कभी अलग नहीं होता है और बाहरमें इन पदार्थोंकी दृष्टि करेंगे तो ये भिन्न हैं, ये अलग हो जायेंगे तब इनके पीछे दुःखी होना पड़ेगा। भक्ति करें तो उस परमात्म-तत्त्वकी करें इस निराले शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी करें। मैं केवल ज्ञान और आनन्दमात्र हूं। जो ज्ञानभाव है, आनन्दभाव है इतना ही मेरा स्वरूप है। इससे बाहर कहीं मैं कुछ नहीं हूँ। ऐसे अपने सामान्यविशेषात्मक निज आत्माकी दृष्टि करें। बाह्य पदार्थोंके मोहसे इस आत्माको कुछ भी हित न मिलेगा। भटकनायें ही बनेंगी, संसारमें रुलना ही होगा। अपनी सुधि लें, सम्यक्त्व प्राप्त करें और इस दुर्लभ मानव जीवनको सफल करें।

संवृत्ति सामान्यसे प्रतिपत्ति और प्रवृत्तिकी अव्यवस्था—यह प्रकरण अपने ज्ञानकी चर्चाका है। ज्ञानके प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो भेद मानने वाले क्षणक्षयवादी निर्विशेष विशेषको तो प्रत्यक्षका विषय मानते हैं और सामान्यको ही अनुमानका विषय मानते हैं। उनसे यह पूछे जानेपर कि जब अनुमान सामान्यको ही जानता है तो फिर सामान्यसे विशेषोंमें प्रवृत्ति कैसे बने और प्रवृत्ति तो विशेषोंमें देखी ही जाती है, इसके उत्तरमें उनका कहना है कि साधनसे अनुमित सामान्यसे विशेषकी प्रतिपत्ति होती है तब विशेषोंमें प्रवृत्ति देखी जाती है। इस पर कुछ विमर्श किये जानेके बाद अब कहा जा रहा है कि देखो गम्य (ज्ञेय) तो व्यापक ही होता है और गमक व्याप्य होता है। जैसे व्यापक अग्नि तो कारण है और व्याप्य धूम कार्य है तो धूमसे अग्नि बताई जाती है तथा वृक्ष व्यापक है नीमका वृक्ष व्याप्य है तो नीमका वृक्ष तो वृक्ष होता ही है, कोई वृक्ष हो तो वह नीमका ही वृक्ष हो ऐसा नियम तो नहीं। ऐसे ही सामान्य तो व्यापक है और विशेष व्याप्य है सो विशेषके द्वारा सामान्यका परिज्ञान तो किया जा सकता है, किन्तु सामान्यके द्वारा विशेषका परिज्ञान नहीं किया जा सकता है।

वस्तुमें सामान्य और विशेषकी व्याप्ति—यदि क्षणिकवादी यह कहें कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यापक तो विशेष है अर्थात् जो वस्तुमें हो सो व्यापक सो वस्तुमें स्वलक्षण है ही और सामान्य अव्यापक है क्योंकि सामान्य वस्तुमें है नहीं, तो ऐसा कहनेमें तो यह सिद्ध हो गया कि ज्ञेय (गम्य) तो विशेष ही है, सामान्य तो गम्य ही नहीं. क्योंकि सामान्य स्वलक्षण नहीं सो यों अनुमान प्रमाण भी नहीं बनता। यदि कहो कि सामान्य भी व्यापक है याने वस्तुमें है तो स्वलक्षणकी तरह सामान्यमें भी वस्तुपना आ गया। अन्यथा अर्थात् सामान्यको अवस्तु माननेपर सामान्य कदाचित् ज्ञात भी मान लिया जाय तो भी अवस्तु विशेषोंमें प्रवृत्ति करनेका प्रयोजन बन ही न सकनेसे अनुमान अप्रमाण ही ठहरेगा। इस कारण प्रमाण प्रत्यक्ष व अनुमान ऐसे ही दो भेद वाला है यह आग्रह उचित नहीं है।

ज्ञानकी विभक्तियोंका कारण—आत्मा ज्ञानस्वरूप है और यह ज्ञान वस्तु-स्वरूपकी व्यवस्था बताता है, अतएव ज्ञान प्रमाण है। यह ज्ञान यद्यपि अपनी ओरसे स्वभावसे एक ही प्रकारका है। यह जाने और जो कुछ सत हो उन सबको जाने किन्तु अनादिकालसे कर्मबन्ध होनेके कारण यह आत्मा ज्ञानमें अपूर्ण हो गया है और इस बन्धनकी स्थितिमें जितना ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता है, ज्ञानावरण कर्म जितना हटता है उतना आत्मामें ज्ञान प्रकट होता है। इस कारण ज्ञानके अनेक भेद हो गये। मूलमें दो भेद हैं ज्ञानके—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञानके दो भेद हैं—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो वह है जो इन्द्रियके द्वारा स्पष्ट जाना जा रहा है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जहां इन्द्रियकी सहायता तो नहीं है जरूरत भी नहीं है, केवल आत्मीय शक्तिसे पदार्थको स्पष्ट जाना जाता है, उस पारमार्थिक प्रत्यक्षमें तीन भेद हैं अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इसमें स्वाभाविक परिपूर्ण ज्ञान जो केवलज्ञान है मगर जितने अंशोंमें अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम है सो अवधिज्ञान प्रकट होता है और मन:पर्ययज्ञाना-वरणके क्षयोपशमसे मन:पर्ययज्ञान प्रकट होता है। परोक्षके भेदमें स्मरण, प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान और आगम ये भेद हैं।

क्षणक्षयवादमें प्रमाणव्यावस्थाकी पद्धतिका आग्रह– ज्ञानकी व्यापक भेद व्यवस्था न मानने वाला क्षणिकवादिक अपना सिद्धान्त यह रख रहा है कि प्रमाण दो तो हैं–प्रत्यक्ष और अनुमान, इन भेदोंके आग्रहमें कितना प्रमाणोंका लोप कर दिया अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और अनुमान तो यह भी व्यवस्थित नहीं है। क्षणक्षयवादमें प्रत्यक्षका विषय बताया गया है, अपने एक समयका कोई निर्विकल्प विशेष, जिसका व्यवहारही नहीं बनता। अनुमानका विषय बताया है कि "और कुछ नही है" इतना भर ज्ञान। जैसे लोग जानते हैं कि यह घड़ी है पर क्षणिकवादके सिद्धान्तसे यह ज्ञान नहीं हो रहा कि यह घड़ी है. किन्तु घड़ीके अलावा बाकी कुछ नहीं है ऐसा ज्ञान होता है। तो इसके दोनों ही ज्ञानोंसे कोई प्रमा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

णता और व्यवस्था नही बनती। ये क्षणिकवादी प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंके सिद्ध करनेमें हेतु देते हैं कि चूंकि प्रमेय केवल दो ही हैं– सामान्य और विशेष, अतएव प्रमाण भी दो ही हैं– प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्ष तो विशेषका विषय करता है और अनुमान सामान्यका विषय करता।

प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वकी ख्यातिपर उपानय विमर्श – प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वको सिद्ध करने वाले क्षणिकवादियोंसे पूछा जा रहा है कि सामान्य और विशेष ये दो प्रमेय प्रमाणके दो भेदोंको सिद्ध करते हैं तो ये दोनों प्रमेय ज्ञात होकर प्रमाणके ज्ञापक हैं या अज्ञान होकर ? यदि कहो कि वह नहीं जाननेमें आया तो भी दो प्रमाणोंको सिद्ध करते हैं—याने बिना जाने कोई जताने वाला बन जाय तो सभी जीवोंको सर्वरूपोंमें सबका ज्ञान हो जाना चाहिए। कोई विवाद ही न हो। यदि कहो ये दोनों प्रमेय जाने जायें तब ही दो के व्यापक हैं तो किससे जाना ? प्रत्यक्षसे या अनुमानसे अथवा दोनोंसे ? प्रत्यक्ष सामान्यको नही ग्रहण करता, अनुमान विशेषको नहीं ग्रहण करता। अगर ग्रहण करने लगे तो विषय शङ्कर दोष हो जाता है, इस कारण यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि प्रमेय दो स्वतंत्र हैं इसलिये प्रमाण भी दो ही हैं। देखिये प्रमाण मायने जिससे हम जानकारी किया करें। वह समस्त सामान्य विशेषात्मक होता है। कौनसा पदार्थ ऐसा है जो सामान्यरूप ही हो और उसमें विशेष न हो ? और, विशेषरूप ही हो उसमें सामान्य न हो ? प्रत्येक पदार्थ उभयात्मक है। लेकिन क्षणिकवादीने उनमें पृथक दो विषय मान लिया सामान्य और विशेष। इससे न प्रमेयकी सिद्धि रहती है और न प्रमाणकी। तो वह प्रमेय न प्रत्यक्ष से जाना जायगा और न अनुमानसे। कहो दोनोंसे जान गया हो, तो किसी एकको कि एकके द्वारा ही सब विषय बन जायगा, इस कारण दोनोंसे भी नहीं जाना गया।

प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वकी सिद्धिमें इतरेतराश्रय दोष – ध्यानमें लाने योग्य एक बात यह है कि जो दो प्रकारका है ऐसा कहा सो वह द्वैविध्य दो में रहने वाला धर्म है, जब दोनों ज्ञात हों तो वह सिद्ध कर सकता है, जैसे हिमालय और विन्ध्याचल, ये दो अलग–अलग पर्वत हैं यह कब जाना जायगा जब ये दोनों देख लिए जायेंगे, मान लिए जायेंगे। लेकिन दो प्रमाण सिद्ध हों तो प्रमेय सिद्ध होंगे और दो प्रमेय सिद्ध होंगे तो दो प्रमाण सिद्ध होंगे, इस कारण यहाँ इतरेतराश्रय दोष लगता है। यदि कहो कि दूसरे ज्ञानसे प्रमाणकी सिद्धि होगी तो वह दूसरा ज्ञान भी एक है या अनेक ? यदि एक कहोगे तो विषयसंकर हो गया, अनेक कहोगे तो अनेकने दो प्रमाणोंको जाना तो उसे भी अनेकोंनेसे जाना। कोई व्यवस्था न बनेगी।

पदार्थव्यवस्था—प्रयोजन यह है कि सीधा–सादा मान लो कि जगतमें ६ प्रकारके पदार्थ हैं—कोई तो जीव जातिके पदार्थ हैं और कोई अजीव जातिके। जीव जातिके पदार्थ तो हम आप, पशु–पक्षी, कीड़े–ममकौड़े, फल–फूल, परमात्मा अरहंत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध आदि हैं और ये जो हम आपको दिखनेमे चीजें आ रही हैं ये सब पुद्गल जाति के पदार्थ हैं। जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाय वे सब पुद्गल हैं। ये दो प्रकार के पदार्थ सभीको खूब समझमें आ रहे हैं। ये दिखने वाले शरीर भी पुद्गल हैं, इनमें बसने वाला जीव जीव है। इन दो पदार्थोंके अलावा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य ये एक-एक हैं और कालद्रव्य असंख्यात हैं। जीव अनन्तानन्त हैं, पुद्गल अनन्तानन्त हैं। ये सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं। सामान्य तो इस प्रकार कि ये सभी पदार्थ शाश्वत हैं। त्रिकाल रहने वाले हैं और विशेष यों हैं कि इन सबकी प्रति समय नवीन नवीन अवस्थायें बनती हैं। अवस्थाकी दृष्टिसे विशेष है और शाश्वत रहनेके कारण सामान्यरूप है। तो प्रत्यक्ष भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है और अनुमान भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थको जानता है।

बाह्य सम्पर्कमें क्लेशोंका उद्भव—यह अपने ही ज्ञानकी बात चल रही है। जब यह ज्ञान अपने आपकी दृष्टिमें नहीं रहता, अपने अनुभवमें जब अपना ज्ञान नहीं रहता तो कितनी विकलता हो जाती है। बाह्य पदार्थोंकी ओर दृष्टि बनाना इस से बढ़कर जीवको क्या विपदा हो सकती है। सर्व बाह्य पदार्थ अपने आपके स्वरूपमें प्रतिष्ठित हैं, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, मेरा मेरेसे बाहर किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु परकी ओर जो दृष्टि लगी हुई है इस दृष्टिसे आत्मामें कितने संक्लेश होते हैं, चित्त स्थिर नहीं रहता, उपयोग डवाडोल रहता है। चित्तमें पराश्रयता रहती है। बाह्य पदार्थोंके पीछे बहुत कुछ दौड़ लगानी पड़ती, बड़ा श्रम करना पड़ता, आज लोग धनिक बननेके लिये कितनी होड़ मचाये हुए हैं, ऊपरसे देखनेमें तो वे बड़े शान्त है, सुखी हैं पर उनके अन्तरङ्ग परिणामोमें आकुलता ही आकुलता बनी रहती है। अरे इन बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धसे कुछ भी हित न होगा, बल्कि जितने भी क्लेश इस जीवको होते हैं वे बाह्य पदार्थोंके सम्बन्धसे होते है, आत्माके साथ कर्म लगे हैं तो सर्व गतियोंमें इसे भटकना पड़ रहा है। आत्माके साथ शरीर चिपटा है तो रात-दिन रोग शोक विकार क्षुधा, तृषा आदिक अनेक कष्ट लगे हुए हैं।

आत्माकी ओरसे आत्माकी स्थिति—आत्मा यदि अकेला ही होता, किसी परका सम्बन्ध न होता तो यह पूर्ण आनन्दमय और सर्वज्ञ होता। यही तो प्रभुकी अवस्था है। जो अपने आपमें पूर्ण समर्थ है वह प्रभु है, वह प्रभु अकेला है, केवल आत्मा ही आत्मा है, उसके साथ कोई बन्धन नहीं है वीतराग हैं ऐसी प्रभुकी दशा होती है। परके सम्बन्धसे ही तो ये अनेक विसम्वाद बढ़ गये हैं। मोहमें यह जीव सम्बन्ध ही चाहता है। नाना उपाय करके सम्बन्ध बनानेकी फिकरमें है इस जीवने राग बढ़ाया द्वेष बढ़ाया, ये सब सम्बन्धके कारण ही तो हुए। बाह्य पदार्थोंका सम्पर्क इस जीवका अहितरूप ही है। केवल अपने आपके कैवल्यका अवलोकन रहता तो सारी समस्याओंका समाधान भी रहता। केवल अपने आपको जाननेके कारण यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रसन्न भी रहता। जब ज्ञानकी वह एक केवल ज्ञानरूप अवस्था रहती तो वह सदा आनन्दमयी रहता। ज्ञानकी तो परिपूर्ण दशा होती है परका सम्बन्ध लगा है इस जीव के साथ इस कारण ज्ञानकी नाना दशायें बन रही हैं।

http://www.jainkosh.org

सुगम और प्रमाणसिद्ध स्वरूपकी स्वीकृतिमें औचित्य—यहाँ ज्ञानकी दशावोंके सम्बन्धमें यह प्रकरण चल रहा है कि वे दशायें दो प्रकारकी हैं एक प्रत्यक्ष ज्ञानकी दशा और एक परोक्ष ज्ञानकी दशा। ऐसा न मानकर क्षणिकवादी कहता है कि ज्ञानकी दो दशायें नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष और अनुमान। अनुमान इनका काल्पनिक है प्रत्यक्ष उनका मुख्यरूपसे प्रमाण है। उसमें प्रश्न किया था कि प्रत्यक्षका लक्षण तो स्वलक्षण है अर्थात् पदार्थमें जो चीज पायी जाती है वह प्रत्यक्षवेद्य है और अनुमानका लक्षण सामान्य है सो जब इन दोनोंका ज्ञान ही नहीं होता, फिर ये दो प्रमाण हैं, ऐसा कैसे सिद्ध कर सकोगे? इसपर क्षणिकवादी कह रहा है कि स्वलक्षण आकार तो आत्मभूत ही है सो प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है और सामान्य आकार अनुमानसे जाना जाता और दोनों ही स्वसम्वेदनसे सिद्ध हैं, सो प्रमाण दो हैं यह भी प्रत्यक्षसे सिद्ध है और प्रमेय दो हैं यह भी प्रत्यक्षसे सिद्ध है। लेकिन जो लोग इस बातको नहीं मानते हैं या मानकर भी ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते, उनको दो प्रमेय बताकर दो प्रमाणोंकी बात कही जा रही है। आचार्यदेव कहते हैं कि यह भी सारहीन बात है। ज्ञानसे भिन्न न कोई केवल सामान्य है न कोई विशेष है, किन्तु यह ज्ञान भी सामान्य विशेषात्मक है—बाहरमें रहनेवाले ये समस्त पदार्थ भी सामान्यविशेषात्मक हैं। जो जैसी बात है उसे वैसी मान लेनेमें क्या हर्ज है। जो चीज जिस तरहसे प्रतिभात होती है वह उस तरहसे मान लिया जाना चाहिए। तो हमारे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण ये सब सामान्यविशेषात्मक पदार्थको ही विषय करते हैं। इस प्रकार ज्ञात होता है ऐसा ही समझना चाहिए।

स्वरूपसूत्रका महत्व—यह चर्चा समस्त सिद्धान्तका मूल है। जैनशासनमें वस्तुका क्या स्वरूप दिखाया है उसे एक सूत्रमें दर्शाया है—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्"। तत्त्वार्थसूत्र पढ़ने वाले लोग भक्तिवश पाठ तो कर जाते हैं, पर कोई विरले ही चतुर विद्वान उसका अर्थ अवधारण करते हैं सूत्रमें क्या अर्थ बसा हुआ है इसका बोध हो और उस परिज्ञान सहित सूत्रका पाठ करे तो आचार्यदेवने बतलाया है कि उस सूत्रका पाठ करनेसे एक उपवासका फल होता है इस लोभसे कोई सूत्रका पाठ करे तो उससे एक उपवासका फल न मिलेगा किन्तु श्रद्धा भक्तिसे उसके अर्थको जानकर पाठ करे तो एक उपवासका क्या अनेक उपवासका फल हो सकता है। इस सूत्रमें बताया है कि जगतके पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यसे संयुक्त हैं। प्रत्येक पदार्थ निरन्तर बनते रहते हैं अर्थात् नवीन नवीन अवस्थायें उसमें होती रहती हैं और प्रत्येक पदार्थ प्रति समय बिलीन होता जाता है, इतने पर भी प्रत्येक पदार्थ सदा बना रहता है, उसका समूल नाश नहीं होता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपज्ञानके अनेक प्रभाव— वस्तुस्वरूपका कथन केवल एक ज्ञानकी ही बात नहीं है किन्तु मोहको हटानेकी भी बात है और चरित्र बढ़ानेकी भी बात है। जिस पुरुषने यह जान लिया कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे उत्पादव्ययध्रौव्य वाले हैं, निरन्तर प्रत्येक पदार्थ कुछ न कुछ परिणमते ही रहते हैं। परिणमना ही पड़ेगा क्योंकि वह सत है। ऐसा परिज्ञान होनेसे यह श्रद्धान बैठता है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमता ही रहता है, उसका स्वरूप है ऐसा। उसे दूसरा क्या करे ? दूसरा कोई पदार्थ किसीको परिणमा नहीं सकता। निमित्त भी उपादान अनुकूल निमित्तको पाकर स्वयं अनुकूल परिणम जाता है अर्थात् विभावरूपपरिणम जाता है। यह परिणमने की कला प्रत्येक पदार्थमें पड़ी हुई है। यह द्रव्यत्व शक्ति प्रत्येक पदार्थमें अपने आपके स्वभावसे है। परिणमता रहेगा हर एक पदार्थ निरन्तर। मैं भी सत् हूं। मैं भी निरन्तर परिणमता रहता हूँ। मेरेमें अन्य और कोई बात न आयगी। मैं निरन्तर परिणमता रहता हूँ अपने ही गुणरूप अपने ही प्रदेशोंमें निरन्तर कुछ न कुछ बनता रहता हूँ, इतनी ही मेरी दुनिया है इसमें दूसरेका कोई अधिकार नहीं। मैं अज्ञानमें परकी दृष्टि बनाकर खोटा परिणमता रहता हूँ। जब मैं यथार्थ अपने स्वरूपको जान लेता हूँ तो मैं अपनेमें अपने रूप परिणम सकता हूँ। मैं सिवाय अपने आपके भाव बनानेके और कुछ नहीं करता। बाह्य पदार्थोंमें नाना ख्याल बनानेसे इस जीवके मलिनता ही बढ़ती है, हित कुछ नहीं होता। यह बात समझमें आती है तो मोह दूर होता है, सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, मोक्षके मार्गका भान होता है। तो देख लो वस्तु स्वरूपके ज्ञानमें कितनी कला है।

लोगोंका शान्तिविरुद्ध परिश्रम— लोग सुखी होनेके लिये दिन रात नाना श्रम करते रहते हैं और यहां तक कि सोती हुई हालतमें भी संस्कारमें वह बाह्य श्रम ही बना होता है लेकिन शान्ति नहीं मिलती। कैसे शान्ति हो ? शान्ति मिलनेका जो कारण है उपाय है उससे तो रहते हैं दूर दूर और अशान्ति बढ़नेका जो कारण है उससे चिपटे रहा करते हैं तो शान्ति कैसे प्राप्त हो ? पर पदार्थमें राग रखनेसे नियम से अशान्ति ही होगी। चाहे धनी हो चाहे गरीब, चाहे पंडित हो चाहे मूर्ख हो, जिस ढंगकी बात है वह उस ढंगमें होती ही है, उसे कोई नहीं टाल सकता, तो बाह्य पदार्थोंके स्नेहमें अशान्ति ही है ऐसा निर्णय रखिये। उसका कारण यह है कि ज्ञान है अपना और विषय बनाया परको तो पहिले तो यहाँ ही असमंजता कर दी, फिर वह पर है भिन्न। वह अपने उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है। मैं चाहूँगा कुछ वह परिणमेगा कुछ तो अशान्ति होगी।

क्लेश और क्लेशके उपायोंसे राग— भैया ! जिस मनुष्यसे पूछो— प्रायः करके सभी लोग ऐसा उत्तर देते हैं कि क्या करें, परिवारको बहुत पाला पोसा बड़ा किया, बच्चोंके लिये जीवनभर श्रम किया, मगर अन्तमें ये ही बालक मुझसे विरुद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चलते हैं, मेरा अपमान करते हैं, हम बड़े दु:खी हैं। कोई न कोई दु:खकी बात प्रत्येक मनुष्य रख रहा है। तो दु:ख तो होगा ही। पुत्र अगर अनुकूल है आज्ञाकारी है तो उसके सुखी रखनेकी फिकर रात दिन रहेगी जिससे दु:खी रहेगा वह पिता, और अगर पुत्र प्रतिकूल है, आज्ञाकारी नहीं है तो उसके पीछे तो दु:ख है ही। तो परवस्तु के रागसे नियमसे क्लेश ही क्लेश है, चाहे वह क्लेश किसी ढंगका हो। तो रागसे क्लेश है और क्लेश मिटानेके लिये जीव रागका ही उपाय करता है। अब देख लो, समझलो, ऐसी बात चल रही है कि नहीं। ऐसा विपरीत जीवोंका पुरुषार्थ चलता है। कैसे शान्ति हो। शान्तिका उपाय तो राग दूर करना है। प्रयोग करके देखो। किसी ज्ञान पद्धतिसे आप राग दूर कर लें तो आपको शान्ति मिलेगी। किसीसे द्वेषके कारण, घृणाके कारण, ठीक न सुहानेके कारण यदि राग दूर करें तो उससे शान्ति न मिलेगी, क्योंकि वहाँ रागके बजाय द्वेष तो बसा लिया। जो पुरुष सम्यग्ज्ञानका आश्रय करके रागभावको दूर कर लेता है उस पुरुषको नियमसे शांति प्राप्त होती है।

शान्तिके लिये पदार्थकी सामान्यविशेषात्मकताके परिज्ञानका महत्त्व अब अपने अपनेमें चिन्तन करिये कि हम शान्तिके मार्गसे कितने दूर हैं, और सही निर्णय बनाकर प्रयत्न करिये कि अशान्तिके कारणोंसे हम दूर रहें। हम अपने ज्ञान का सही उपयोग बनायें। यह सम्यक्त्वका उपयोग ही आत्माको शान्ति उत्पन्न कर सकता है, यह बात कैसे प्रकट हो? जब यह जान लिया जाय कि मैं और परपदार्थ सभी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र अपना अस्तित्व रखते हैं। सभी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त हैं। यह बात भी तभी सिद्ध हो पाती है जब हम यह मानकर चलें कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य दृष्टिसे तो पदार्थ शाश्वत है और विशेष दृष्टिसे पदार्थ प्रति-क्षण परिणमता रहता है अतएव विनाशीक है। यह सामान्य विशेषका निर्णय एक हितकी दिशामें बहुत बड़ा महत्त्व रखता है। जो जीव धर्मकी श्रद्धामें चल रहे हैं, जिनको पदार्थमें यथार्थ ज्ञान बन रहा है वे सभी एकदम पदार्थको पूर्ण जानते हैं, सामान्यविशेषात्मकरूपसे जानते हैं। प्रतिपादन न कर सकें मगर जिस जिसके भी सम्यग्ज्ञान है, उस उसके सबके निर्णयमें प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक बसा है।

ज्ञान पुरुषार्थकी करणीयता मैं हूँ, स्वयं हूँ, परिपूर्ण हूँ, परसे असम्बद्ध हूँ अनन्त गुणोंका पिण्ड हूं, प्रतिसमय परिणमन करता रहता हूँ, बस इतनी ही तो मेरी करतूत है। यही मेरा कारखाना है, यही मेरा महल है, यही मेरा निर्णय है, यही मेरा भविष्य है, यही मेरा वर्तमान है यही मेरा भूत था। इससे आगे मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसी अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि होना और उस स्वरूपके निकट बसकर ही अपने को तृप्त करना यही सबसे बड़ा भारी काम करनेको पड़ा हुआ है। और, संसारके काम तो असार हैं. उन कामोंसे कुछ भी हमारा हित नहीं है। लोग जान गये तो क्या हुआ? ये लोग भी क्या हैं? यह इच्छा करने वाला मैं भी क्या हूँ? मायाजालसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मायाजालकी पहिचान हो रही है। परमार्थ पहिचान वाला तो कोई बिरला ज्ञानी संत ही होता है, चाहे वह गृहस्थमें हो या साधुमें हो। तो अपने स्वरूपका परिचय पाइये और अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करके अपनेमें तृप्त रहा कीजिये ! यही शान्ति प्राप्त करनेका मार्ग है।

प्रमेयद्वित्वसे प्रमाणद्वित्वकी सिद्धि न होनेका निर्णय—ज्ञान प्रमाण होता है। उस प्रमाणके दो भेद हैं, प्रत्यक्ष और परोक्ष। जो साक्षात् जाना जाय वह तो है प्रत्यक्ष और जो साक्षात् न जाना जाय परोक्ष जाना जाय सो वह है परोक्ष। इसका सही अर्थ तो यह है कि जो विशद जानें, स्पष्ट जाने उसका तो नाम है प्रत्यक्ष और जो स्पष्ट न जानें उसका नाम है परोक्ष। किन्तु, प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद न मानकर क्षणक्षयवादके सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो भेद माने हैं। जितने भी जो कुछ विकल्प वाले ज्ञान हैं वे तो सब हैं अनुमान। और, जो निर्विकल्प क्षणिक तत्त्वका ज्ञान है वह है प्रत्यक्ष। इस प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंके माननेमें उन्होंने यह युक्ति दी थी कि चूँकि प्रमेय ही दो प्रकारके हैं—सामान्य और विशेष इस कारण प्रमाण भी दो हैं - प्रत्यक्ष और अनुमान। इस सम्बन्धमें समाधान दिया गया है और यह सिद्ध किया गया है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषरूप हुआ करते हैं और ज्ञान सभी सामान्यविशेषात्मक पदार्थको ही जाना करता है। कोई पदार्थ सामान्य हो कोई विशेष ही हो ऐसा नहीं है और ज्ञान कोई सामान्य अंशको ही जाने, कोई विशेष अंशको हीं जाने ऐसा भी नहीं है किन्तु यह कह सकते हैं कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जो विशेष अंशको ही जाने ऐसा भी नहीं है किन्तु यह कह सकते हैं कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थको जो विशेष पद्धतिसे जाने सो ज्ञान है और जो सामान्य पद्धतिसे प्रतिभास हो सो दर्शन है।

भैया ! यह चर्चा अपने आत्माके वृत्तिकी चल रही है। आत्मा क्या है और क्या किया करता है। आत्मा चैतन्यवस्तु है और चैतन्य है सामान्यविशेषात्मक। जो सामान्य चेतना है, उसका नाम दर्शन है, जो विशेष चेतना है उसका नाम ज्ञान है। तो प्रमेय दो नहीं रहे, एक ही रहा। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ।

आगमादिक प्रमाणोंका अनुमानमें अन्तर्भाव होनेसे प्रमाणद्वित्वकी सिद्धिका तर्क—अब क्षणिकवादी कह रहे हैं कि चलो प्रमेयके दो भेद नहीं भी सिद्ध हुए तो भी प्रमाण दो से ज्यादा तो सिद्ध नहीं होते, कारण कि जितने भी अन्य प्रमाण हैं वे सब अनुमानमें गर्भित हो जाते हैं। आगम तर्क आदिक जो जो भी प्रमाण माने जाये वे सब अनुमान ही तो हैं। इसलिये दो ही प्रमाण सिद्ध होते—प्रत्यक्ष और अनुमान। अनुमानमें आगम आता है उसका वे कुछ स्पष्ट करके भी कह रहे हैं कि आगम मानते हैं शब्द, शास्त्र किया, उपदेश किया। शब्दका नाम ही तो शास्त्र है आगम है। तो शब्द आदिक परोक्ष अर्थको जानते हैं। जैसे आगममें लिखा है कि यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

विदेह क्षेत्र है· यह मेरू पर्वत है तो शब्दोंने परोक्ष अर्थको ही तो बतःया । सामने तो वे हैं नहीं वे मेरू और विदेह । तो शब्द परोक्ष अर्थको बताया करता है तो यह बतलावो कि इन शब्दोंसे परोक्ष अर्थका सम्बन्ध नहीं है और शब्द उन अर्थोंका ज्ञान करा देते हैं तो फिर अटपट ज्ञान चलेगा। किसी भी शब्दसे किसी भी पदार्थका ज्ञान होने लगेगा क्योंकि पदार्थका सम्बन्ध न मानकर भी शब्दको पदार्थका व्यापक माना है। जैसे हो तो गाय और जाने घोड़ा। क्योंकि पदार्थका शब्दसे सम्बन्ध तो मानते हैं। यदि कहो कि पदार्थका शब्दसे सम्बन्ध है तो यही अनुमान हो गया, यही साधन से उत्पन्न अनुमान हुआ करता है। ऐसा क्षणक्षयवादी दो प्रमाणोंकी सिद्धिमें अपना मंतव्य रख रहे हैं।

·क्षणक्षयवादियोंके प्रत्यक्षका अनुमानमें अन्तर्भाव होनेकी आपत्ति — अन्य प्रमाणोंकी अनुमानमें गर्भितताकी शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि इस तरह की दलीलसे तो प्रत्यक्ष भी अनुमान प्रमाण बन जायगा। प्रत्यक्षने किसी पदार्थको जाना तो बतलावो कि उसने सम्बद्धको जाना या असम्बद्धको ? यदि असम्बद्धको जाना तो सभी पुरुष सभी पदार्थोंको जान लेंगे, क्योकि आँखोंसे दिखने वाले पदार्थसे कुछ सम्बन्ध नहीं है फिर भी जान गये। यदि सम्बद्ध पदार्थको जानते हैं तो यह अनुमान बन गया। प्रत्यक्ष क्या रहा ? तो लो अब अनुमान ही एक प्रमाण बचा, वह भी न बचेगा। अतः सभी ज्ञान अनुमानमें गर्भित होते हैं यह कहना युक्त नहीं है। शायद यह कहो कि यद्यपि प्रत्यक्ष विषयसे सम्बन्ध रखता है और अनुमान भी अपने विषयसे सम्बन्ध रखता है फिर भी सामग्री साधन दोनों ज्ञानोंके जुदे–जुदे हैं। इसलिये वे अलग–अलग प्रमाण हैं। जैसे प्रत्यक्षके साधन हैं इन्द्रिय, मन, आलोक आदि और अनुमानके साधन हैं हेतु आदिक। इस पद्धतिमें आगमका साधन है शब्द, और उन शब्दोंसे हम परोक्षभूत अर्थको जानते हैं, अतः यह आगम भी प्रमाण है आगम प्रत्यक्ष में भी गर्भित नहीं होता क्योंकि आगममें है अन्य प्रकारसे बोध। प्रत्यक्षको माना है बौद्धोंने निर्विकल्प और स्पष्ट ज्ञान करने वाला। आगमको अनुमान भी नहीं कह सकते अनुमान तो होता है साधनसे उत्पन्न और आगम साधनसे उत्पन्न नहीं होता। आगममें लिखा है ७ नरक। अब इसकी श्रद्धा करनेमें आगमकी दृष्टिमें कोई हेतु देनेकी जरूरत नहीं है। प्रभुका उपदेश है, उन्होंने ज्ञानसे सब जाना। उनकी दिव्य ध्वनिकी परंपरा से चला आया हुआ यह कथन है। जैसे सामने दिखती हुई चीजको सिद्ध करनेके लिए युक्तिकी जरूरत नहीं है। जैसे कोई कहे कि यह चौकी है। यह चौकी क्यों है भाई ! तो क्या इसमें क्यों चला करेगा ? तो जैसे जो प्रत्यक्षसे जाना उसमें कोई युक्ति नहीं चलती, इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान प्रत्यक्षसे जो पदार्थ जाना उसका उन्होंने वर्णन किया, उसमें युक्तिकी जरूरत नहीं। तो शब्द या आगम ये साधनसे नहीं होते, इस कारण आगम प्रमाण है और मुख्य प्रमाण है उसका अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं होता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानके संक्षिप्त भेद—चर्चा यह चल रही है कि ज्ञान कितनी तरहसे होता है ? ज्ञान प्रत्यक्ष भी होता है। जैसे लोग कहते हैं कि मैंने आँखों देखा कानों सुना, मैंने स्वादकरके देखा, मैंने छू करके देखा। इन इन्द्रियों द्वारा साक्षात् जाननेमें सन्देह नहीं रहता, तो समझना चाहिए कि प्रत्यक्ष विशद प्रमाण है, अनुमान भी प्रमाण है, आगम भी प्रमाण है, स्मरण भी प्रमाण है। किसी चीजका ख्याल आया, जान गए, अब यह ज्ञान क्या झूठा है ? सच्चा ज्ञान है। किसी बातको युक्तिसे सिद्ध कर रहे हैं, इसे कहते हैं तर्क। भाई ! जहां जहां धुवां होता है वहां अग्नि जरूर होती है क्योंकि धुवां अग्निसे ही उत्पन्न होता है, तो क्या यह झूठा ज्ञान है ? तो भाई ! ज्ञान बहुत होते हैं लेकिन ज्ञानकी जो पद्धतियां हैं वे दो ही तरह की हैं एक स्पष्ट ज्ञान होता है और एक अस्पष्ट ज्ञान होता है। जैसे एक तो अनुमानसे अग्निके विषयमें ज्ञान लिया यह ज्ञान और एक धधकती हुई आगको देखकर आगका ज्ञान कर लिया तो इन दोनों ज्ञानोंमें बड़ा अन्तर है। एक तो स्पष्ट ज्ञान है और एक अनुमानसे जो अग्निका ज्ञान किया वह स्पष्ट नहीं है। तो स्पष्ट और अस्पष्टके नातेसे ज्ञानके ये ही दो भेद ठीक हैं. प्रत्यक्ष और परोक्ष।

आगमका अनुमानमें अन्तर्भूत होनेकी अशक्यता—आगमका अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता क्योंकि आगममें दोका प्रसङ्ग है – शब्द और अर्थ। दो ही बातें तो इसमें मुख्य हैं। शब्द लिखे हैं उनसे पहिचाना हमने कोई पदार्थ, तो यह बतलाओ कि शब्द धर्म है या धर्मी है ? यदि शब्द धर्म है तो ठीक यों नहीं बनता कि धर्मी कुछ है ही नहीं। अगर कहो कि अर्थ धर्मी है तो पदार्थका और अर्थका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि लिख दिया मेरू तो इन शब्दोंसे और मेरूसे क्या सम्बन्ध ? अर्थको ही सीधा जान लिया तो शब्दकी क्या आवश्यकता रही ? इस कारण शब्द अनुमानमें गर्भित हो जाय, यह बात युक्त नहीं है। कोई कहे कि शब्द अर्थवाला है क्योंकि शब्द होनेसे। तो जिसको सिद्ध करना है उसीका ही हेतु देवें तो वह बात कमजोर है। प्रतिज्ञार्थैकदेश दोष होगा। शब्द या शब्दपना पदार्थका ज्ञान नहीं होता, इससे यह मानो कि आगम भी एक अलग प्रमाण है।

आगमनेत्र–देखिये साधुजनोंको तो या मोक्षमें चलने वालोंको आगम एक महान नेत्र है। साधुवोंका नेत्र एक आगम ही है। कुछ भी उन्हें अपने बारेमें निर्णय करना होता है तो आगम देखते हैं। कैसे चलना, कैसे बैठना, क्या व्यवहार करना, कैसा परिणाम रखना उन सबके निर्णयके लिये आगमका आलम्बन लेते हैं। आगमके द्वारा तो अभ्यासी जीव तीनों लोकका परिज्ञान कर लेता है। होता है इसमें अस्पष्ट परिज्ञान केवलज्ञानी केवलज्ञानके द्वारा समस्त लोकका स्पष्ट ज्ञान करता है किन्तु आगमज्ञानी आगमके द्वारा समस्त पदार्थोंको अस्पष्ट जाना करता है। आगमज्ञान वालेने इन शब्दोंसे सबको जान लिया। जितने भी पदार्थ सत् हैं वे सब उत्पादव्यय-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ध्रौव्य वाले हैं, सब अनेक धर्म वाले हैं, अनन्तज्ञानात्मक हैं, लो इन शब्दोंसे सभी पदार्थोंको जान लिया। जैसे केवलज्ञानीको सभी पदार्थ जानकर भी किसी भी पदार्थ से कुछ प्रयोजन नहीं है, किसी पदार्थसे केवलीको न राग है और न द्वेष हैं न किसी पदार्थसे भगवानकी कोई अटक लगी है तो इस आगमज्ञानीको सम्यग्दृष्टि पुरुषको भी बाहर किसी पदार्थसे अटक नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि मेरा सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरा परिणमन मेरी परिणति मेरा गुण मेरी सारी दुनिया मेरे ही प्रदेशोंमें है। अतएव बाह्य पदार्थोंसे ज्ञानीको कुछ अटक नहीं है। इस कारण पीठ पीछेके पदार्थ यदि सारे ज्ञानमें नहीं आये लेकिन उस सबको तो इस रूपमें जान ही लिया कि जो पदार्थ हैं वे सब उत्पादव्ययध्रौव्य वाले हैं। तो आगमज्ञान भी बहुत महत्वपूर्ण ज्ञान है उस का अन्तर्भाव अनुमानमें नहीं हो सकता।

शब्द और अर्थका अन्वय न होनेसे आगमका अनुमानमें अन्तर्भाव होनेकी अशक्यता – शब्द और पदार्थके सम्बन्धकी बात जो कही जा रही है कि इस शब्दसे यह पदार्थ जाना जाता है तो यह बतलावो कि षब्दकी सत्तासे, शब्दके व्यापार से पदार्थका कोई सम्बन्ध है क्या ? जो पदार्थ विद्यमान हो उसका तो अन्वय बनता है पर जो पदार्थ विद्यमान नहीं उसका अन्वय क्या बनेगा। जैसे जहाँ जहाँ धुवां होता है वहां वहाँ अग्नि होती है, तो धुवां भी कोई चीज है और अग्नि भी कोई चीज है। तब बन गया सम्बन्ध पर शब्द और अर्थका जहाँ अन्वय ही नहीं है तो उससे बंध कैसे हो सकता है। जहाँ जिसके साथ अविनाभाव है तो कह सकते कि चूँकि यहाँ धुवां है इसलिये आग है, पर पदार्थका और शब्दका तो अविनाभाव भी नहीं कि जहां जहां पदार्थ हो वहां वहां शब्द हो या जहां जहां शब्द हो वहां वहां वह पदार्थ हो, ऐसा कोई निर्णय है क्या ? यदि पदार्थका और शब्दका अविनाभाव बन जाय तो जिस समय कोई शब्द बोला –जैसे पिण्ड खजूर तो पिण्ड खजूर हाजिर रहना चाहिए। शब्द और पदार्थका परस्परमें कुछ अविनाभाव नहीं। यदि अविनाभाव हो जाय तो जैसे किसीने जीभसे कहा छुरी तो जीभ कट जाना चाहिए क्योंकि शब्द जहाँ है वहाँ पदार्थ है। तो शब्दका पदार्थके साथ सम्बन्ध अन्वय भी नहीं है। जैसे भूत कालके राम-रावणकी चर्चा करते हैं तो क्या वे मौजूद हैं ? तो शब्दका पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यदि कहो कि पदार्थका शब्दके साथ सम्बन्ध बनेगा क्योंकि शब्द सब जगह व्यापक है, तो इससे तो अति प्रसङ्ग हो जायगा। जो चाहे शब्द जिस चाहे पदार्थका भान करादे, तो पदार्थका शब्दके साथ अविनाभाव नहीं है अतएव आगम अनुमानमें गर्भित नहीं होता।

आगम और अनुमानके विषयका पार्थक्य—यहां एक बात और भी देखिये, जो बात अनुमानसे नहीं जानी जा सकती, वह बात आगमसे पहिचान ली जाती है। जो बात आगमसे नहीं जानी जाती है वह बात अनुमानसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानी जाती है यद्यपि आगम बहुत व्यापक तत्त्व है। आगम ने ही तो अनुमानका स्वरूप बताया है फिर भी आगमका विषय और है अनुमानका विषय और है। इस कारण अनुमान अलग प्रमाण है और आगम अलग प्रमाण है। आगम हितमार्गमें तो प्रभुके उपदेशको कहते हैं और साधारणरूपसे सभी शब्दोंका नाम आगम हैं। जैसे शब्द बोल दिये -चटाई, चौकी, वर्तन, और इन शब्दोंको सुनकर इनका ज्ञान भी हो गया, पर यह यह ज्ञान प्रत्यक्ष है या अनुमान? तो न प्रत्यक्ष है न अनुमान। यह तो एक आगम है। हितकी दृष्टिमें हम इस व्यवहारकी बातको आगम नहीं कहते। आगम उसे कहते जो सर्वज्ञदेवका कहा हुआ हो, वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करे, आत्मा को हित मार्गमें ले जाने वाला हो। वे सब उपदेश आगम कहलाते हैं।

आगमका उपकार---भैया! यदि आगम न होता तो हम आप शान्तिका मार्ग कैसे पा लेते? शरीर न्यारा है, आत्मा न्यारा है। यह बात हमने मूलमें कहाँसे सीखी? अनुभव हुआ बादमें। जब हमने उसे पहिचाननेका यत्न किया और उसका प्रयोग किया, अपने आपकी ओर झुके, बाह्य पदार्थोंसे हटे, विकल्पोंको हटाया, अपने आपमें विश्राम पाया तो अनुभव जगा कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ, यह बात हमने आगमसे ही तो सीखी। तो शास्त्राभ्यासका अपने लिए बहुत बड़ा महत्त्व है। ये संसारके मोही जन गप्प सप्पमे ही अपना समय गवां देते हैं, थोड़ा सा भी समय स्वाध्याय करनेकी ओर रुचिपूर्वक नहीं लगाते। इस जीवके उद्धार और शान्ति प्राप्त करनेके लिए शास्त्र स्वाध्यायका बड़ा महत्त्व है।

जीवनमें ज्ञानका महत्त्व—ज्ञानके महत्त्वको जरा थोड़ा इस दृष्टान्से ही जान लें कि कोई बड़ा सेठ किसी बड़े भारी टोटेमें आ गया। लाखोंका नुकसान पड़ गया अथवा कर्जदार हो गया। ऐसी स्थितिमें उसका दिल कितना घबड़ाता है और वह कल्पनायें कर करके—हाय! मेरी पोजीशन खतम हो गई। अब मेरा जीवन चलेगा ही नहीं। इस चिन्तामें वह घुला जा रहा है। अगले दिन वह अधिक बीमार हो गया। ऐसे उस सेठ का कौन सा इलाज किया जाय कि उसका स्वास्थ्य सुधरे? किसी भी डाक्टर के इन्जेक्शन व दवायें उसके स्वास्थ्यवर्द्धनमें काम न देंगी। वह अपने ही ज्ञानबलसे काम ले, ऐसा चिन्तन करे कि क्या है इस जगतमें? ये वैभव आदिक तो सब बाहरी चीजें हैं, ये जहाँ हैं तहाँ ही हैं। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं, ये पदार्थ जब मेरे निकट थे तब भी मैं अपने स्वरूपका अकेला ही था। कहीं पदार्थमें मिला जुला हुआ न था। अब ये पदार्थ मेरे पास नहीं हैं आज, तब भी मैं वहीका वही हूँ जो पहिले था। अब मेरे पास कुछ नहीं रहा, मैं गरीब हो गया तो क्या हुआ? यह मनुष्य भव तो धर्मसाधनके लिए है, इसकी सफलता आत्मज्ञानमें है और आत्मामें मग्न होनेमें है। सो ये सब साधन मेरे बराबर मौजूद हैं। ये सभी लोग मायारूप हैं, इनमें अपना क्या नाम जाहिर करना है? मैं तो एक बहुत उत्कृष्ट स्थितिमें हूँ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

धर्मपालन करके सदाके लिए संसारके संकटोंसे अपनेको छूटकारा दिलानेका अवसर मुझे प्राप्त है, कुछ ज्ञान जगे तो वह ज्ञान एक ऐसा बल उत्पन्न करता है कि वह दिलमें समाता है और अप्रसन्नता दूर करता है तो वह ज्ञान क्या चीज है ? आगम !

http://www.jainkosh.org

शान्तिके मौलिक उपायका आगमसे प्रारम्भ—व्यवहारमें भी, हमारे जीवनमें भी आगम कितना शान्ति देता है कितना संतोष देता है इसका अनुमान कर लीजिये। लोग तो रात दिन कमाईके चक्कर में लगे रहा करते हैं और अशान्त रहा करते हैं। ये पुरुष कभी एक आध घन्टा आत्माकी बात बताने वाले शास्त्रोंका स्वाध्याय करें. ज्ञानी पुरुषोंका समागम करें, आत्माकी चर्चा सुनें तो मोहका भार उससे मत होगा, कुछ अपने ज्ञानस्वभावकी ओर दृष्टि होगी तो ममता कम होनेसे रागद्वेष कम होनेसे शान्तिकी प्राप्ति होती है चित्तमें प्रसन्नता रहेगी। शास्त्राभ्यास उतना आवश्यक है जितना शरीरके लिए भोजन। दो ही तो चीजें हैं शरीर और आत्मा। शरीरको भी स्वस्थ रखना है और आत्माको भी रखना है, बल्कि शरीरका स्वस्थ रखना उतना आवश्यक नहीं जितना कि आत्माका स्वस्थ रखना आवश्यक है। लोग तो इस शरीरके स्वस्थ रहनेका बहुत ध्यान रखते हैं पर आत्माके स्वस्थ होनेका ध्यान नहीं रखते।

ज्ञानकी महत्ताका परिचय—यह ज्ञान कितना बड़ा है, कितना गम्भीर हैं इसको हम तब जान सकते हैं जब हम ज्ञानमें अपना कदम बढ़ायें। जिसने ज्ञानमें कदम ही नहीं रखा वह ज्ञानके महत्त्व को नहीं जान सकता। जैसे अत्यन्त कम समझ वाले लोग थोड़ासा ज्ञान पाकर यह समझने लगते हैं कि हमने तो खूब ज्ञान कमाया है। कुछ और ज्ञान सीखा तो समझने लगता कि हाँ यह ज्ञान है। इसपर मेरा अधिकार है। जब उसने बहुत ज्ञान सीख लिया, तो ज्ञानकी बात ज्यों ज्यों बढ़ती जायगी त्यों त्यों मालूम पड़ेगा कि ओह ! मैंने तो अभी कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त किया है। अभी तो ज्ञान बहुत बड़ा है। तो ज्ञानकी महत्ता तब समझमें आती है जब हमारा ज्ञान कुछ बढ़ने लगता है। अल्प ज्ञानीको ज्ञानका महत्त्व नहीं समझमें आता। ज्ञान बढ़े तो ज्ञान होता कि ओह ! ज्ञान तो बहुत बड़ी चीज है। हमने तो कुछ भी ज्ञान नहीं पाया। ज्ञान इतना महान होता है कि तीनों लोकके जितने पदार्थ हैं, तीनों कालके जितने जो कुछ परिणमन हैं वे सबके सब ज्ञानमें आते हैं, और फिर भी ज्ञान इसके लिये तैयार है कि ऐसे लोकालोक यदि अनगिनते और हों तो उन्हें भी ज्ञान जान जाय। इतना है ज्ञानका विषय। अब उसके सामने अपने ज्ञानकी बात देखिये कि हमने कितना ज्ञान पाया है। लगेगाकि न कुछ ज्ञान पाया है। तब ज्ञानका महत्त्व जानता है। इसी प्रकार शास्त्रका जो अभ्यासक रता है और जो कुछ अभ्यास करनेपर उसे शान्तिका अनुभव होता है उसे शास्त्राभ्यासका महत्त्व विदित होता है।

आत्महितमें आगमका महान आधार—आगम एक तृतीय नेत्र है। हम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपकी दो आँखें तो चमड़ेकी लगी हैं, पर इन आँखोंसे हम किसी भी भली चीजको नहीं निरख पाते। जो निरखते हैं वह चीज हमें फसानेका ही कारण बनती है। कुछ सम्बन्ध होगा, स्नेह होगा, मोह होगा। पर आगमका नेत्र हमें ऐसे तत्त्वका दर्शन कराता है कि जिस तत्त्वके दर्शनके कारण हम संसारके सङ्कटोंको सदाके लिये दूर कर सकते हैं। ज्यों ही जाना कि यह मैं आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ। उसमें किसी प्रकारकी कोई कमी ही नहीं है, परिपूर्ण हूँ। मेरा किसी भी अन्य पदार्थसे कुछ वास्ता ही नहीं है। प्रत्येक पदार्थ है। मैं भी अपने आपमें हूँ, अपने आपके कारण हूँ। अपने गुण पर्याय रूप हूँ। हूँ, बस इसका अन्यसे क्या सम्बन्ध है। ज्यों ही यह आत्मस्वरूपकी बात विदित होती है त्यों ही अनेक सङ्कट हमारे समाप्त हो जाते हैं। ये जो आपत्तियां साथ लगी हैं शरीर भी इस आत्माके साथ चिपका चिपका फिर रहा है ये सब इस आत्मासे दूर हो जाते हैं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि इस शरीरसे आत्माको अनुमान करना है तो अभीसे ही शरीरसे आत्मा जिस प्रकार न्यारा है उस प्रकार इस अपने आपको न्यारा देखें तो शरीरसे यह आत्मा छूट जायगा। ये सब प्रयत्न करना हमने ज्ञानसे ही तो सीखा है। इस आगमका अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं होता। आगम भी एक मुख्य प्रमाण है।

उपमानकी प्रमाणान्तरता—प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो ही ज्ञान मानने वाले क्षणिकवादियोंके प्रति कहा जा रहा है कि उपमानका अर्थ है कोई चीज दिखी सामने और उस चीजको निरखकर किसी दूसरी वस्तुका स्मरण हो आया जो उसके समान है फिर दोनों पदार्थोंमें समानताका जो बोध होता है उसे उपमान कहते हैं। जैसे कोई पुरुष वनमें गया या कहीं रास्तेमेंसे गुजर रहा था कि उसने रोझ देखा, रोझके देखते ही यह उपमान बन गया कि यह रोझ गायके समान है। रोझके अङ्ग पैर पूछ, गर्दन, तथा मुख आदि गायके अङ्गकी ही तरह हैं, उसे देखकर उसको गाय का स्मरण हो आया। बहुतसे अङ्गोंके मिलनेकी सदृशता उपाधिके कारण, तो इसे उपमान कहते हैं। यह मनुष्य उस मनुष्यके सदृश है। कभी गुणोंमें भी सदृशता लगा ली जाती है। यह पुरुष उसकी तरह ज्ञानी है। यद्यपि उस पुरुषका उस दूसरे पुरुषसे आकार, प्रकार, रङ्ग कुछ भी नहीं मिलता तो भी गुणोंकी सदृशताका बोध होता है। ये सब उपमान कहलाते हैं। उपमानको जैन शासनमें यद्यपि कोई जुदा प्रमाण नहीं माना, उसका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव होता है किन्तु प्रसङ्ग तो यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाणहैं इस अभिप्रायका खण्डन करके उपमान प्रमाणको सिद्ध कर रहे हैं। प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसी जो व्यवस्था क्षणिकवादियोंने की है वह अयुक्त रही।

प्रमाणान्तरोंका निर्देश—तत्त्वार्थसूत्रमें पढ़ा करते हैं लोग "मतिः स्मृतिः संज्ञाचिन्ताभिनिवोध इत्यनर्थान्तरम्" उसका अर्थ है मति मायने सांव्यवहारिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रत्यक्ष, स्मृति मायने स्मरण, संज्ञाका अर्थ है प्रत्यभिज्ञान, चिन्ताके मायने है तर्क अभिनिबोध के मायने हैं अनुमान अर्थात् सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष स्मरण, तर्क, प्रत्यभिज्ञान और अनुमान ये सब मतिज्ञान हैं, तो उसमें उपमान तो नहीं है। प्रत्यभिज्ञान आया। उपमानका जो विषय है वह दो पदार्थोंमें किसी धर्मकी एकताका स्थापन करता है, यह ही प्रत्यभिज्ञानमें है। सामने किसी वस्तुको देखकर किसी दूसरेका स्मरण करके सादृश्य बताना सादृश्यप्रत्यभिज्ञान है। तो किसी वस्तुकी विलक्षणता बताना वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान है। जैसे किसीने यह ज्ञान किया कि यह रोझ गायकी तरह है, तो क्या कोई ऐसा ज्ञान नहीं कर सकता कि यह रोझ भैंससे विपरीत है ? यदि उपमान प्रमाण है तो फिर वैलक्षण्य आदि ज्ञानको भी अलग प्रमाण मानना चाहिए, किन्तु प्रत्यभिज्ञान माननेपर सब घटित हो जाता है। किसी मनुष्यको निरख कर आप यह सोचते कि यह वही मनुष्य है जिसे हमने दो वर्ष पूर्व कलकत्तामें देखा था, तो यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान हुआ। एक मनुष्यमें वर्तमान प्रत्यक्षसे उस ही मनुष्यके रूपका स्मरण करके उसमें एकता बने सो एकत्व प्रत्यभिज्ञान है। यह सादृश्यप्रत्यभिज्ञान है, जिसे उपमान कहा जा रहा है। यद्यपि उपमानका अन्तर्भाव प्रत्यभिज्ञानमें है, किन्तु यहां इसमें अन्तर्भूतता बतानेका प्रयोजन नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष और अनुमान से अलग कोई प्रमाण हुआ करता है, यह बताया जा रहा है।

उपमान प्रमाणका रूप—उपमान प्रमाण कैसे होता है ? किस तरह होता है ? इसे सुनिये ! जैसे देखने वाले ने अभी तक गाय तो देखी थी पर रोझ न देखा था, और न यह वाक्य भी सुना था कि रोझ गायकी तरह होता है ! ऐसा कोई मनुष्य बनसे गुजरते हुए रोझको देखले तो उस रोझके देखनेसे उसमें गायकी सदृशता का ज्ञान बना, ओह ! इसकी तरह गाय है या गायकी तरह यह रोझ है तो उसके विषयमें सदृशता सहित परोक्ष गाय आयी अथवा गायमें रहने वाली समताका बोध हुआ तो यह वास्तविक ज्ञान बना इसका अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं होता। यह उपमान अनुमानसे अलग प्रमाण है।

उपमान प्रमाणका विषय—यह ज्ञानकी चर्चा चल रही है। हम आपका जो ज्ञान हुआ करता है वह ज्ञान किन किन ढङ्गोंमें हुआ करता है उसका यह विश्लेषण है। होते हैं ना, ऐसे बहुतसे ज्ञान। यह प्रतिमा तो उस नगरके मंदिरकी प्रतिमाकी तरह है, तो ऐसा जो सादृश्य वाला ज्ञान हुआ वह ज्ञान कुछ नई बातको बतला रहा है। यद्यपि सामने जो देखा उसका ज्ञान हुआ, जिसका ख्याल आया उसका ज्ञान हुआ पर इतने तक ही बात नहीं रही। उन दोनोंका सदृशतासे जो ज्ञान हो रहा वह तो नया ज्ञान है। कोई कहे कि गाय तो हमने पहिले ही देख ली थी, कौन सी नई बात जानी ? अरे गायका ज्ञान नहीं किया जा रहा किन्तु गायके शरीरके अङ्गोंमें व रोझके शरीरके अङ्गोंमें समानता पायी जा रही है। उस समानताका बोध हो रहा

Version 1

है, तो वह प्रमाणभूत ज्ञान है। उस समानताका कुछ कुछ अलग ज्ञान है । प्रत्यक्षसे रोझ दीखा, पर रोझके ज्ञानकी बात नहीं कह रहे. वह तो प्रत्यक्ष ज्ञान है जो समानताका ज्ञान हो रहा है वह प्रत्यक्षसे अलग है कोई ज्ञान। अथवा गायका स्मरण किया वह तो सामने ही नहीं है; वह तो परोक्षभूत है सो उस गायके स्मरणका भी यहाँ ज्ञान नहीं बताया जा रहा किन्तु सदृशताका ज्ञान कराया जा रहा है। जिस सदृशताका ज्ञान गायके ज्ञानसे अलग है और रोझके ज्ञानसे रोझ जाना गया गायके ज्ञानमें गाय जाना गया परन्तु इन दोनोंमें जो समानता है, वह समानता न तो प्रत्यक्ष से जानी गयी, न स्मरणसे जानी गयी किन्तु इसका ज्ञान कराने वाला एक अलग प्रमाण है, उसे कहते हैं उपमान।

उपमान प्रमाणका प्रत्यक्ष और अनुमानमें अनन्तर्भाव--यह उपमान प्रमाण प्रत्यक्षमें तो गर्भित होता नहीं, क्योंकि उपमान परोक्षको विषय करता है और उपमानमें सविकल्पता आ रही है किन्तु प्रत्यक्ष एक तो परोक्षको विषय नहीं करता और दूसरे प्रत्यक्षमें विकल्प नहीं है। निर्विकल्प ज्ञान है तो उपमानका प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव नहीं। अनुमानके लिये चाहिए हेतु तो सदृशताका ज्ञान करानेके लिये हेतु क्या दिया जाय ? सदृशता गायमें रहने वाली है या रोझमें ? गायमें रहने वाली है तो रोझसे क्या सिद्धि हो ? रोझमें रहने वाली है तो गायका सम्बन्ध क्या है ? तो सदृशताका जो ज्ञान होता है वह ज्ञान एक अलग ज्ञान है। इसे उपमान कहते हैं और वह एक अन्य प्रमाण है। इसमें प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हों ऐसी बात नहीं है आगम भी प्रमाण है। जैसे यह कल सिद्ध किया था इसी प्रकार आज यह सिद्ध किया जा रहा है कि उपमान भी प्रमाण है।

विषयरतिके कारण ज्ञानचर्चाकी अप्रीति---अपने आपके ज्ञानकी कलावों की बात अपने आपको क्यों भाररूप जचती है ? इसका कारण यह है कि वासनामें यह बात बसी हुई है कि हमारा हित तो बाहरी पदार्थसे है, वैभव बढ़े, इज्जत बढ़े, पद बढ़े, उनमें मेरा लाभ है। यों बाह्य पदार्थोंमें हित मान रखा है इस कारणसे वही हमारी रुचि लगी रहती है तो जैसे किसी पुरुषको किसी बातकी चिन्ता हो जाय तो उसे कितनी ही बातें कोई कहे वह चित्तमें नहीं जमती इसी प्रकार मोह अवस्था में बाह्य पदार्थ विषयोंके साधन चित्तमें समाते हुए हैं तो अपने आपके ज्ञानकी चर्चा सुहाया नहीं करती। एक बात। दूसरी बात यह है कि कदाचित् बाह्य पदार्थोंसे उपेक्षा भी हो जाय, विरक्ति भी जग जाय तो अपने इस ज्ञानस्वरूपका अभ्यास न होनेसे अपने ज्ञानकी चर्चा भाररूप हो जाती है किन्तु अपने ज्ञानके अवलोकनमें जो आनन्द बसा हुआ है आनन्द तो वही है। बाहरमें जो मौज मानी जाती है वह कोई मौज नहीं है।

विषयसम्पर्कमें हानि ही हानि--जैसे लोग खानेका बड़ा मौज मानते तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हिसाब तो लगाओ कि अपने इतने जीवनमें उन्होंने कितना खा लिया होगा। कहो मालगाड़ीके दो डिब्बे बराबर अनाज खा डाला हो, पर आज वही खालीका खाली पेट है। जब देखो भूख लगा करती है। तो कोई एक भोजनकी ही बात नहीं, सभी विषयों की बात है। इन आंखोंसे लोग कितने ही सनीमा देख डालते हैं पर रोज रोज देखने की इच्छा बनी ही रहती है। तो कहां शान्ति आयी। यह तो रीताका ही रीता है। बहुत बहुत राग रागनियां सुनी, संगीत और राग सुने, खूब अपना मन भरा, पर मन भरा ही नहीं, अब भी मन रीता है। यह अब भी अभिलाषा रख रहा है। तो इन बाहरी पदार्थोंके भोगकी वाञ्छामें जीवका क्या पूरा पड़ता है ? कुछ भी लाभ नहीं मिलता, रीताका ही रीता रहता है। तो बाह्य अर्थोंमें व्यर्थकी दृष्टि बनी हुई है कि इन पदार्थोंसे हमारा बड़प्पन है। इनसे ही मेरा हित है ऐसी जो भ्रान्ति बनी है इस के कारण अपने आपके स्वरूपकी चर्चा सुहाती नहीं है।

विषयव्यामोहमें ज्ञानयोग्यताका अनुपयोग बड़ेसे बड़े कठिन सवाल, बड़ीसे बड़ी कठिन समस्यायें ऐसी उलझनें जो कि बहुत कठिन हैं लेकिन बाह्य पदार्थ सम्बन्धी हैं, बाह्य चर्चायें हैं उनमें तो ज्ञानकी कला दिखा दी जाती है और खुदका ही स्वरूप खुदके ही जानने वाला है तिसपर भी खुदके स्वरूपकी बात भार जैसी लगती है, पर शान्ति जब मिलेगी तो स्वयंके ज्ञानसे ही मिलेगी। बाहरी पदार्थोंका कितना ही बोझ हो उससे शान्ति नहीं हो सकती। इस दुनियामें रहा कौन ? बड़े बड़े पुरुष हो गए जिन्होंने अपना बड़ा आतंक भी जमाया, किन्हींने बड़ा उपकार भी किया पर कोई यहाँ नहीं रहे। जो जो कुछ कर गये वे सब अपने-अपने लिए ही कर गये। यहाँ अब भी जो पुरुष कोई अन्याय करने वाला है, प्रतिकूल चलने वाला है, चले, जो चाहे करे, यह भी एक मायाजाल है, स्वप्न जैसी बात है, इसमें भी किसीके लाभ हानिकी बात नहीं, उसकी ही स्वयंकी हानि है, जोअपने परिणाम बिगाड़ेगा उसकी ही हानि है, दूसरेकी किसीकी हानी नहीं जब इन बाह्य पदार्थोंमें यथार्थ बोध जगे, इनसे रुचि हटे तो आत्माकी निकटता प्राप्त होती है। और तब ये सभी बातें बड़ी जल्दी सुगम हो जाती हैं।

ज्ञानकला यह ज्ञान है इसकी क्या कला है, इसके जाननेके क्या क्या ढङ्ग हुआ करते हैं। मूलमें तो बहुत ही सहज बात है, ज्ञान है जान लिया, यह आत्मा केवल अकेला ही होता, इसके साथ कर्म बन्धन न होता तो यह ज्ञान लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानता। उसमें कोई भेद नहीं रहता पर बन्धन लगा है, ज्ञानावरण कर्म भी लदा है, उसका जैसा क्षयोपशम प्राप्त होता है उस ढङ्गसे हमारे इस जीवके ज्ञानका विकास है और इसी विडम्बनाके कारण ज्ञानके ये भेद बने हुए हैं। ज्ञान किस किस तरहसे जानता है और ज्ञानके विषय क्या हैं उनका यह वर्णन चल रहा है। ज्ञानके यदि दो भेद यों कर दिये जायें कि एक प्रत्यक्ष और एक परोक्ष तो किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी प्रकारका कोई ज्ञान हो, सब ज्ञान इन दो भेदोंमें आ जाते। तत्वार्थसूत्र ग्रन्थ एक ज्ञान विज्ञानका बड़ा भौतिक ग्रन्थ है। छोटे छोटे सूत्रोंमें समस्त सिद्धान्त भर देनेका प्रयास किया है आचार्य उमा स्वामीने। सब ओरकी बात इस तत्वार्थ सूत्रसे जान ली जाती है। प्रथम अध्यायमें ज्ञानका ही वर्णन किया है क्योंकि समस्त धर्मके उपक्रमों का मूल कारण तो ज्ञान है। ज्ञान है तो धर्मपालन बनेगा। ज्ञान नहीं है तो धर्मपालन क्या बने ? तो उस ज्ञानकी चर्चा सर्व प्रथम की गई है और न्याय शास्त्रमें तो सारा वर्णन ज्ञानके बलपर ही होगा। अभी तो एक तरहसे समझिये न्याय शास्त्रमें जो जो वस्तुस्वरूप बताया जाता है उस सबकी एक भूमिका बन रही है। हम किस ज्ञानके द्वारा किस प्रकार वस्तु स्वरूप बता सकेंगे, दूसरोंके बताये हुए विपरीत वस्तुस्वरूप का हम निराकरण कैसे कर सकेंगे उस ज्ञानकी यह बात करायी जा रही है कि, कितने प्रकारसे होता है ज्ञान और कौन कौन ज्ञान प्रमाण होते हैं।

उपमानके विषयका प्रत्यक्ष और अनुमानके विषयसे पार्थक्य— यहां उपमान भी प्रमाण कहा जा रहा है क्योंकि न वह प्रत्यक्ष है और न अनुमान। जो लोग स्मरण को भी प्रमाण मानते हैं, जैन सिद्धान्त भी मानता है तो उपमान स्मरण भी नहीं है, स्मरणमें भी उपमानका अन्तर्भाव नहीं है। सोच लीजिये जहाँ यह समझा यह रोझ गायके समान है तो इस ज्ञानने क्या मुख्यतासे रोझको जाना ? अथवा क्या मुख्यतासे गायका स्मरण किया। ये तो हुए ही दोनों ज्ञान, पर मुख्यता तो समानता की है। जो यह बात बतायी जा रही है कि यह चीज अमुक पदार्थकी तरह है तो तरहकी मुख्यता है। दोनोंकी मुख्यता नहीं है, उन दोनोंकी मुख्यता नहीं है, उन दोनों में उपलब्ध जो समानता है उसका विषय है उपमानका विषय। तो यह समानता अनुमानसे सिद्ध नहीं होती, क्योंकि अनुमानसे सिद्ध करेंगे तो गायमें रहने वाली सदृशताकी हेतुसे करेंगे या रोझमें रहने वाली सदृशताके हेतुसे करेंगे। जब गायके सादृश्यका हेतु देंगे तो उस समय उस सदृशताके रूपसे रोझ भी है यह ग्रहण नहीं होता जब रोझकी सदृशताका साधन लेंगे तो सादृश्यसधर्मसहित गाय है उसका उपमान बन ही नहीं सकता। अनुमानका कोई ढंग ही नहीं है। सादृश्य हेतुका ढङ्ग बनाया तो प्रतिज्ञाका एक देश ही हेतु बन जायगा। इस दोषसे उपमानका अन्तर्भाव अनुमानमें भी नहीं होता है और उपमान होता ही है। यह आदमी उस आदमीकी तरह है, इसकी सकल उसकी तरह है।

साहित्यमें उपमानप्रयोगकी प्रचुरता—उपमानसे तो सारा साहित्य भरा हुआ है। जहाँ प्रथमानुयोगमें कथावोंका वर्णन है जहाँ उपन्यासोंमें कहानियोंका वर्णन है तो उपमानका कितना प्रयोग किया जाता है। उन अलङ्कारोंमें कुछ अत्युक्ति करके उपमानका प्रयोग किया गया, मगर कथा कहानियोंमें उपमानका बड़ा प्रयोग है। जैसे कहते हैं कि इसका मुख चन्द्रमाकी तरह है। देखिये साहित्यमें इसको बड़ा प्रशंसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

की दृष्टिसे देखा जा रहा है परन्तु तथ्यकी बात देखें तो मिलती हैंसीकी बात है यह मुख चन्द्रमा की तरह है। जिस मुखमें लार थूक, कफ, कीचड़, नाक आदि सारी बातें बसी हुई हैं ऐसे मुखको चन्द्रम की तरह बताया। इन कवियोंने अलङ्कारोंमें तो एसी बात बतादी कि जिससे बहुतसे लोगोंका अकल्याण हो सकता। लोग तो वैसे ही मोही थे, मलिन थे, विषयोंमें आशक्त थे, रागी-द्वेषी थे, उन्हें उन अलङ्कारोंसे और भी बढ़ावा मिला तो वे नुकसानमें ही रहे। बड़े–बड़े ग्रन्थोंमें भी ऐसे अलङ्कार बने हुए हैं।

आर्ष पुराणोंमें उपमालंकारोंका प्रयोजन निर्ग्रन्थ आचार्योंकी रचनामें भी, महापुराणोंमें भी ऐसे अलङ्कारोंकी बहुलता पायी जाती है। तो उनका प्रयोजन क्या था कि जो राग बढ़ाने वाली चीजें हैं, जिनसे लोगोंकी बड़ी प्रीति रहा करती है ऐसी स्त्री और भी वैभव, उनकी खूब प्रशंसा की जाय और जो उनके अधिकारी हैं चक्रवर्ती जैसे बड़े स्वाती हैं उनका खूब वैभव बताया जाय और प्रशंसा करके वैभव बताकर फिर एकदम वे आचार्यदेव ज्ञान और वैराग्यकी बात दिखाते हैं तो ज्ञान और वैराग्यका महत्त्व बढ़ जाता है। जैसे चक्रवर्तीके वेभवका खूब वर्णन किया जाता है, ऐसी रानियां थीं, ऐसा साम्राज्य था और फिर जब यह वर्णन आयगा कि चक्रवर्तीने इस समस्त वैभवका परित्याग कर दिया तो उसके त्यागका बड़ा महत्व जाना जायगा अहो ! ऐसी रानियां, ऐसा वैभव, ऐसे राज्यका परित्याग कर दिया। तो जिन चीजों का परित्याग किया जाता है उन चीजोंका बहुत बहुत वर्णन कर देनेसे उसके त्यागकी महिमा बढ़ जाती है।

वैभवपरित्यागका बड़प्पन—अभी भी यहीं देख लो ! कोई धनिक, सेठ, विद्वान्, कीर्तिवान् पुरुष सब कुछ त्याग करके साधु बने और एक महागरीब पुरुष जो रसोइया हो, गाडीवान हो, दुखी हो, ऐसा पुरुष साधुजनोंके आरामको देखकर साधु बन जाय या कुछ ज्ञान वैराग्यकी बात आ जाय सो साधु हो जाय तो इन दोनोंमें उस धनिक पुरुषको अधिक महत्त्व दिया जाता है। चाहे वह गरीब पुरुष कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर चुका हो मगर लोग उस धनिक पंडित यशस्वी पुरुषका अधिक महत्त्व देते हैं अहो ! इन्होंने इतना सब कुछ होते भी सब कुछ त्याग दिया, साधु हो गये। धन्य है इनको ! तो वैभवका, परिवारका, स्त्रीपुत्रादिका खूब वर्णन किया जाय खूब प्रशंसा की जाय और फिर उसके त्यागकी बात कही जाय तो फिर बादमें त्यागकी बात कहने से कवियोंने उपकार भी किया। इसे कहते हैं उपमालङ्कार। उपमा बताना। उपमालङ्कार तो अत्युक्ति है, वास्तवमें तो उपमान प्रमाण है।

उपमान प्रमाणकी सिद्धिका उपसंहार—एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ समानता बताना यह एक अलग प्रमाण है। जैसे दृष्टान्तके अनुसार सोचिये जब कोई पुरुष रोझको देखकर गायका स्मरण करता है और अब दोनोंके अङ्गकी तुलना

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करके उसकी समानताका बोध करता है तो यह तो उस रोझके ज्ञानसे अलग बात है ना। गायके ज्ञानसे अलग बात है ना। यद्यपि सदृशताका आधार वे दोनों हैं। दोनों आधार हैं मगर दोनोंका ज्ञान उपमानमें नहीं किया जा रहा है किन्तु दोनोंमें रहने वाली सदृशताका उपमान किया जा रहा है। यह सदृशता न प्रत्यक्षसे जानी जाती और न अनुमानसे। मीमांसक मतके अनुसार उपमान अलग प्रमाण है और जैन शासनके अनुसार यह एक प्रत्यभिज्ञान है।

उपमान प्रमाणका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव--यों तो हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो इन भेदोंसे भी हम अलग अलग मान सकते हैं। प्रत्यभिज्ञानके जो भेद हैं एकत्वप्रत्यभिज्ञान, सादृश्यप्रत्यभिज्ञान, वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान और प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान। इन सबको जुदा जुदा भी कह सकते हैं क्योंकि विषयमें कुछ थोड़ा अन्तर है। पद्धतिमें अन्तर नहीं है। पहिला एकत्वप्रत्यभिज्ञान माना गया है। यह वही पुरुष है जिसे कल देखा था तो कलके देखे हुएमें और आजके देखे हुएमें एकता लगाया गया ना। यह वही है यह है एकत्वप्रत्यभिज्ञान। यह रोझ गायके समान है इसमें सादृश्यपर जोर दिया है। यह है सादृश्यप्रत्यभिज्ञान। यह रोझ भैंसासे बिल्कुल जुदा है यह है वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान। इनका मकान उनके मकानसे दूर है, इनका घर अमुकके घरसे निकट है, इस प्रकार दूरीका निकटका और और भी जो ज्ञान किया जाता है। यह है प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान। तुम्हारी घड़ी इनकी घड़ीसे अधिक मूल्यवान है यह प्रत्यभिज्ञान ही तो हुआ। यहां प्रसङ्गमें बताया जा रहा है कि उपमान भी अलग प्रमाण है। इसपे प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही हैं, यह हठ करना ठीक नहीं है। उपमानका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव है सो प्रत्यभिज्ञान प्रमाणान्तर हो गया। इस उपमान प्रमाणमें हम ऐसी घटना आत्महितार्थ बनायें कि ज्ञानियोंमें क्या बात पायी जाती है, उन गुणोंकी हम सदृशता अपनेमें लायें तो यह हमारे लिये बड़े हितकी बात है।

प्रत्यक्ष और परोक्षमें समस्त ज्ञानोंका अन्तर्भाव--आत्मा चेतन वस्तु है। चेतनमें प्रतिभास हुआ करता है और प्रतिभास दो प्रकारका है सामान्य प्रतिभास और विशेष प्रतिभास। सामान्य प्रतिभासका नाम दर्शन है विशेष प्रतिभासका नाम ज्ञान है। विशेष प्रतिभाससे लोक व्यवस्था बनायी जाती है इसलिये विशेष प्रतिभास प्रमाण कोटिमें है। विशेष प्रतिभास कहो, ज्ञान कहो, दोनोंका एक ही भाव है। ज्ञान प्रमाण है। तो वह ज्ञान कितने प्रकारका है, प्रमाण कितने प्रकारका है उस प्रसङ्गमें सूत्ररूपमें प्रमाणको दो प्रकारका बताया गया है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष और परोक्षके कहनेमें समस्त प्रमाण गर्भित हो जाते हैं। जितने भी ज्ञान हैं वे या तो इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्म शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं अथवा इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखकर उत्पन्न हुए हैं और इस आधारपर जो ज्ञान इन्द्रिय सापेक्ष है वह परोक्षमें आ गया, और जो ज्ञान केवल आत्म शक्तिमें होते वे प्रत्यक्षमें आ गए।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ थोड़ा दार्शनिक शास्त्र होनेकी वजहसे यह अन्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्ष उसे कहते जो स्पष्ट ज्ञान हो और परोक्ष कहते हैं उसे जो अस्पष्ट ज्ञान हो। तो चूँकि इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भी स्पष्ट सा लगता है। जैसे आँखों देखा कानों सुना स्पष्ट लगता है उसे भी प्रत्यक्ष कोटिमें रखा है किन्तु उसे कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। यों प्रमाणके दो भेद किए गए।

अर्थापत्तिकी प्रमाणान्तरता—क्षणिकवादियोंने प्रमाणके दो तो भेद माने पर नाम ये दो नहीं रखे। उनके सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण बताये गए हैं। उसके समाधानमें आगम को अलग प्रमाण बताया गया, उपमानको अलग प्रमाण बताया गया। अब अर्थापत्ति भी एक प्रमाण है यह वर्णन किया जा रहा है। अर्थापत्तिका अर्थ है कि किसी भी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे कोई प्रसिद्ध अर्थ जान लिया।, अब यह प्रसिद्ध अर्थ यह जाना हुआ पदार्थ जिसके बिना नहीं हो सकता उस पदार्थकी कल्पना करना, उसका ज्ञान करना सो अर्थापत्ति है, अर्थापत्ति छहों प्रकारसे होती है। यह मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार कहा जा रहा है। प्रसङ्ग तो यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान केवल ये दो ही प्रमाण नहीं है, और भी प्रमाण मानने वालोंको ही खड़ा करके पहिले उन्हें समाधान दिया जा रहा है। प्रमाण छः होते हैं मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव।

प्रत्यक्षपूर्विका अर्थापत्ति— प्रत्यक्षके मायने जिसे आँखोंसे देखा करते हैं, यों स्पष्ट जाना करते हैं। एक अर्थापत्ति प्रत्यक्ष पूर्वक होती है। जैसे हमने प्रत्यक्षसे जाना कि यह आग है, अब इस आगमें जलानेकी शक्ति है यह भी तो जाना। तो यह बतलावो कि आगको तो हमने प्रत्यक्षसे जाना और आगमें जो जला देनेकी शक्ति है यह कैसे जाना? यह अर्थापत्तिसे जाना। यदि आगमें जलानेकी शक्ति न होती तो यह जला कैसे देती है जलानेकी शक्ति हुए बिना आग जलानेमें समर्थ नहीं है, इससे जलने की शक्तिका ज्ञान किया गया। यह हुई प्रत्यक्षपूर्वक अर्थापत्ति जिसका अर्थ है कि जिसके बिना जो पदार्थ न बन सके उस पदार्थ को जानकर उस अदृष्ट पदार्थकी कल्पना करना अग्निको प्रत्यक्षसे देखकर अग्निमें दाहक शक्तिका ज्ञान करना यह अर्थापत्ति है और प्रत्यक्ष आगको देखकर अर्थापत्ति ज्ञान हुआ इसलिए इसका नाम है प्रत्यक्षपूर्वक अर्थापत्ति। प्रमाण केवल दो ही नहीं हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान, किन्तु अन्य भी प्रमाण हैं इस बातको सिद्ध करने के लिए नये नये प्रमाणोंका स्वरूप बताया जा रहा है। तो अग्नि में जो शक्ति जाना वह शक्ति प्रत्यक्षसे तो जान नहीं सकते जैसे आगको हम प्रत्यक्षसे देख लेते हैं इस प्रकार आगमें जो दाहक शक्ति है उसे तो प्रत्यक्षसे नहीं देखा जा रहा है। आँखें देखती हैं मूर्त पदार्थको शक्ति तो अतीन्द्रिय है, इन्द्रियसे शक्ति नहीं जानी जाती। कोई सी भी मशीन हो उसमें जो यह जानते हैं कि इसमें १० हार्सपावर की शक्ति है, यह मशीन इतना कार्य कर सकती है तो यह अर्थापत्तिसे जाना। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
शक्ति इन्द्रियके अगोचर है। शक्तिको इन्द्रियां नहीं जान सकतीं। इन्द्रियां पदार्थोंको तो जान लेंगी, पदार्थके व्यापारको भी नि ख लेंगी, यह इतना चला, इसने आक्रमण किया है, पर इसमें आक्रमण करनेकी श क्त है उस शक्तिको प्रत्यक्षसे नहीं जाना जा सकता। वह अर्थापत्ति द्वारा गम्य है। तो एक अर्थापत्ति होती है प्रत्यक्षपूर्वक।

अनुमानपूर्विका अर्थापत्ति दूसरी अर्था त्ति है अनुमानपूर्वक। जैसे सूर्य के गमनका अनुमान किया, यह सूर्य गमन करता है क्योंकि सुबह इस ओर था साभको इस ओर देखा जा रहा है। तो यह सूर्य गति वाला है, क्योंकि एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें पहुँच जाता है। जैसे कोई पुरुष एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें पहुँच जाये तो गमन किया तभी तो पहुंचा इसी प्रकार सूर्य जब एक देशसे दूसरे देशमें पहुँचता है तो उससे गमन का अनुमान होता है। सूर्यको गमन करता हुआ किसीने नहीं देखा। जैसे हम गमन करते हुए आदमी को देख लेते हैं कि यह गमन कर रहा है इसी प्रकार यह सूर्य गमन कर रहा है यह भी नहीं दिखता। उसके गमन का तो अनुमान किया जाता है। जैसे कोई बालक है तो वह रोज–रोज बढ़ता तो है ही, पर उसका रोज–रोज बढ़ना मालूम नहीं पड़ता। एक आध सालके बादमें वह ५–६ अंगुल बढ़ जाता है। इसमें ऐसा नहीं है कि वह एकदमसे ही किसी दिन बढ़ गया हो। वह तो निरन्तर कुछ न कुछ बढ़ता रहता है। तो जैसे साल छेः माहके बादमें उसका बढ़ना देखकर यह अनुमान कर लेते हैं कि यह रोज–रोज बढ़ता आया है, यों ही समझिये कि सूर्यके गमन को किसीने नहीं देखा, किन्तु एक देशसे देशान्तर पहुंचनेके हेतुसे गमनका अनुमान होता।

सूर्यगमनका प्रत्यक्षसे अपरिचय—कभी कोई बादल उस सूर्य अथवा चन्द्र के नीचे आ जाता है और वह बादल चलता रहता है तो लगता ऐसा है कि ये सूर्य अथवा चन्द्र चल रहे हैं, पर वह सूर्य और चन्द्रका गमन नहीं दिख रहा। बादल चूंकि चल रहे हैं तो सूर्य और चन्द्र चल रहे ऐसा मालूम होता है। जैसे रेलगाड़ीमें बैठे हों और सामनेसे कोई दूसरी गाड़ी चल रही हो, जैसे आमने सामनेका क्रास हुआ तो जो गाड़ी पीछे आयी वह चलदी पर उस खड़ी हुई गाड़ी पर बैठे हुए व्यक्तिको ऐसा लगता है कि हमारी गाड़ी चलदी, ऐसे ही वे बादल चलते हैं उल्टी सरहदमें और लगता ऐसा है कि ये चन्द्र अथवा सूर्य चल रहे हैं। चन्द्र और सूर्यके गमनको किसीने नहीं देखा, उनके गमनका अनुमान किया जाता है।

अर्थापत्तिकी अनुमानपूर्वकताका विवरण - पहिले तो उस सूर्यमें गमनका अनुमान किया। यह सूर्य गमन करता है क्योंकि एक देशसे दूसरे देशमें अन्यथा पहुँच नहीं सकता था तो इस अनुमानसे सूर्य चन्द्रके गमनका अनुमान किया। अब सूर्यके गमनके ज्ञानसे इस सूर्यमें गमन करनेकी शक्ति है उस शक्तिकी कल्पना की तो यह अनुमानपूर्वक अर्थापत्ति हुई। यदि सूर्यमें गमन शक्ति न होती तो सूर्य गमन न कर सकता। तो यह अनुमान पूर्वक अर्थापत्ति यों हुई कि पहिले अनुमानसे जो जाना गया है उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थसे हमने फिर अदृष्ट अर्थकी कल्पनाकी, अर्थापत्ति भी प्रमाण है यह सिद्ध करने का इस प्रसङ्गमें मुख्य प्रयोजन है और उस अर्थापत्तिके विस्तारको बता रहे है, देखिये कोई सी भी शक्ति हो चाहे अनुमानपूर्वक अर्थापत्ति द्वारा ज्ञात हो या प्रत्यक्षपूर्वक अर्थापत्ति द्वारा ज्ञात हो कोई भी शक्ति न तो प्रत्यक्षसे जानी जाती और न अनुमानसे जानी जाती है, क्योंकि अनुमान वहाँ होता है कि प्रत्यक्षसे कोई साधन जाना जा रहा है और वह साध्यसे अनुमान हुआ करता है फिर यहाँ साधन साध्यका कोई सम्बन्ध नहीं, यह तो अर्थापत्तिसे जाना जा रहा है।

श्रुतार्थापत्ति एक अर्थापत्ति है आगमार्थापत्ति। श्रुतार्थापत्ति। श्रुतसे शब्द से आगमसे कोई बात जानी और उसके द्वारा फिर अदृष्ट अर्थका परिज्ञान किया तो वह श्रुतपूर्वक अर्थापत्ति हुई। जैसे कोई कहे कि यह देवदत्त बहुत मोटा है और दिनमें नहीं खाता ये शब्द सुना, तो उन शब्दोंका अर्थ यह निकला यह रात्रिमें खाता है। तो जैसे यह मोटा देवदत्त दिनमें नहीं खाता है यह वाक्य सुनने से रात्रिमें खाता है इसका परिज्ञान हुआ तो इसमें अर्थापत्ति लगायी। यदि दिनमें नहीं खाता तो दिनमें न खाने वाला देवदत्त मोटा कैसे हो जाता। तो यह श्रुतार्थापत्ति। एक अर्थापत्ति होती है उपमानपूर्वक। जैसे रोझ देखकर गायको उपमान किया था कि यह रोझ गायके समान है तो इस ज्ञानमें सीधा तो यह जाना गया कि रोझ गायके समान है। अब इस ज्ञानको करके यह भी तो जाना जाता है कि इस उपमान ज्ञानसे ग्रहण की जाने वाली गौ है जिसकी सदृशता बतायी जा रही है। तो उपमान ज्ञानसे ग्राह्यताकी शक्ति वाली गाय है अयन्था उपमेय नहीं बन सकता। ऐसी जो शक्तिका ज्ञान किया यह उपमानपूर्वक अर्थापत्ति छह हो प्रमाण पूर्वक होती है। यह तो एक अर्थापत्तिका स्वरूप बताने के लिए कहा जा रहा है। प्रसङ्गका प्रयोजन यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो प्रमाण हैं सो बात नहीं है आगम भी प्रमाण है, उपमान भी प्रमाण है यह अर्थापत्ति भी प्रमाण है।

अर्थापत्तिपूर्विका अर्थापत्ति कोई अर्थापत्ति अर्थापत्तिपूर्वक होती है। जैसे शब्दमें पदार्थको बतलानेकी सामर्थ्य है, यह इसकी अर्थापत्तिसे जाना, क्योंकि हम शब्द सुनते हैं और शब्द सुनकर उस पदार्थका हम ज्ञान कर लेते हैं। कोई कहे कि घड़ी लावो तो यह शब्द सुनकर कहीं कोई पुस्तक लो नहीं उठा लाता। तो इससे मालूम होता है कि शब्दमें पदार्थको बतानेकी शक्ति है, पदार्थका वाचक है यह शब्द। तो शब्द वाचक सामर्थ्य वाला है, तो वाचक सामर्थ्यका हमने शब्दसे अर्थापत्ति की और फिर उस ही अर्थापत्तिसे हमने यह जाना कि शब्द नित्य हैं अगर ये शब्द सदा न रहते तो हम शब्दका उच्चारण न कर सकते थे। यह बात मीमांसककी ओरसे कहीं जा रही है। शब्दसे अर्थ जाना जाता है और उस अर्थसे वाचक सामर्थ्य जाना जाता है कि इस शब्दमें पदार्थको बतलानेकी सामर्थ्य है, और, उस वाचक सामर्थ्यसे शब्दमें नित्यता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानी जाती है। शब्द नित्य है। यदि शब्द नित्य न होता तो पदार्थको बतानेका सामर्थ्य भी न होता। यों अर्थापत्तिपूर्वक भी अर्थापत्ति होती है।

अभावपूर्विका अर्थापत्ति—एक अर्थापत्ति अभावपूर्वक होती है। जैसे कोई कहे कि देखो अमुक पुरुष (देवदत्त) घरमें है या नहीं, उसने आकर बताया कि देवदत्त घरमें नहीं है। देवदत्तका घरमें अभाव जाना यह तो हुआ अभाव ज्ञान और उस अभाव ज्ञानसे यह जाना कि बाहर है क्योंकि बाहर हुए बिना घरमें अभाव नहीं बन सकता। तो वह हुई अभावपूर्वक अर्थापत्ति इस प्रकार अर्थापत्ति नामक भी प्रमाण है प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो प्रमाण हों सो बात नहीं है ऐसी मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार प्रमाणान्तरकी सिद्धीकी जा रही है। जैन सिद्धान्तके अनुसार अर्थापत्तिका अन्तर्भाव अनुमानमें होता है क्योंकि अर्थापत्ति नाम है इसका कि जिसके बिना जो न हो उसको देखकर उस अदृष्ट अर्थका ज्ञान कर लेना यह बात अनुमानमें है। अग्निके बिना धुवां नहीं हो सकता इसलिए धुवांको देखकर अग्नि का ज्ञान कर लेना यही तो अनुमान है और यही बात अर्थापत्तिमें है। यद्यपि अर्थापत्तिका अनुमानमें अन्तर्भाव है सो अर्थापत्ति जुदा प्रमाण नहीं लेकिन और-और भी तो प्रमाण हैं। आगम प्रत्यभिज्ञान आदिक भी तो प्रमाण हैं तो प्रमाण केवल प्रत्यक्ष और अनुमान ही तो नहीं रहे, प्रमाण अनेक हो गए।

प्रमाण निष्पत्ति विधिसे दो भेदोंमें विकल प्रत्यक्ष ज्ञान—प्रमाण यद्यपि अनेक हैं तो भी वे सारे प्रमाण जैसे उत्पन्न हुए हैं उनका आधार केवल दो पद्धतियोंमें है। कोई ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्मीय शक्तिसे हो जाता है, जैसे अवधिज्ञान इन्द्रिय और मनसे नहीं जाना जाता है किन्तु एक आत्मीय शक्तिसे जाना जाता है। हाँ जब कोई अवधिज्ञानका उपयोग करता है तो पहिले वह विचार करता है कि मैं इसे जानूँ फिर अवधिज्ञानको जोड़ता है तो अवधिज्ञान जोड़ते समय इन्द्रियां और मन नहीं काम कर रहे हैं, केवल एक आत्म शक्तिसे जान लिया कि अमुक वस्तु है। मनःपर्ययज्ञान भी इसी प्रकार केवल आत्म शक्तिसे ही जाना जाता है, दूसरेके मनकी बात जान लेना, अनुमानसे नहीं उसकी मुद्रा देखकर नहीं, किन्तु आत्म शक्तिसे जान लेना यह मनःपर्ययज्ञान है। मनःपर्ययज्ञानी जीव दूसरे के दिलमें क्या है यह भी जानता है और इसके दिलमें क्या था पहिले, यह भी जानता है और अब यह क्या सोचेगा यह भी जानेगा। कोई ऐसा कपटी पुरुष हो कि सोच रहा हो कुछ और मुद्रा बना रहा है और कुछ। जैसे सोच तो रहा है किसीके अकल्याणकी बात, पर मुद्रा बन रही है प्रसन्नता की तो ऐसे कपटी पुरुषके दिलकी बात मनःपर्यय ज्ञानी जान जाता है। और लोग तो यह अंदाज करेंगे कि यह तो बड़ा भला आदमी जचता है तो मनःपर्यय ज्ञान भी आत्मशक्तिसे होता है।

केवलज्ञानकी असीम विशद एकत्वप्रत्यक्षता—केवल ज्ञान तो केवल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मशक्तिसे ही स्पष्ट है। कोई पुरुष इन्द्रिय और मनके सहारेसे, युक्तियोंके सहारेसे समस्त पदार्थोंको जान नहीं सकता। जो समस्त पदार्थोंके जाननेका ख्याल छोड़ दें। सारी इच्छाओंका अभाव करदें और केवल आत्मतत्त्व ही जिसके उपयोगमें रहे ऐसा पुरुष ही समस्त विश्वको जाननेकी कला उत्पन्न कर लेता है। जानना परिश्रम साध्य बात नहीं है कि हम जितना रट लेंगे, जितना हम पढ़ लेंगे उतना हमारा ज्ञान बढ़ेगा। यद्यपि दिखता है ऐसा कि जब अभ्यास करते हैं तो ज्ञान बढ़ता है लेकिन मूलमें ज्ञान योग्यता है, ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, वह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है और उसको एक अवसर मिला है तो वह ज्ञान विकास करता है और चूँकि वह बन्धनकी हालतमें है इसलिए भी कुछ पढ़ने लिखनेका जरासा निमित्त पाकर अपना ज्ञानविकास कर लेता है, तो परिश्रम भी वहाँ काम करता है जहाँ योग्यता हो।

ज्ञाननिष्पत्तिका आन्तरिक हेतु - ज्ञानशक्तिके विकासका जहाँ सामर्थ्य प्रकट हुआ है वहाँ ही यह अध्ययन उसमें सहायक होता है। एक स्कूलमें दशों बच्चे पढ़ रहे हैं, मास्टर उन सबको एक समान बता रहा है, पर उनमेंसे कोई एक बालक बहुत ज्यादा समझ जाता है। और बड़ी धारणा कर लेता है, और कोई बालक समझाया जानेपर भी कुछ बात समझमें नहीं आती तो उनके अन्तरङ्गमें तो कुछ अन्तर है, जिसमें ज्ञान विकासकी योग्यता है उसको साधारण भी निमित्त मिले तो वह अपने ज्ञानका विकास कर लेता है। आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, और फिर पूर्ण ज्ञान उत्पन्न करनेकी कला इससे विलक्षण है, एक एक चीजको जान जान कर हम सबको जान जायें, पूर्णज्ञानी बन जायें यह बात नहीं हो सकती किन्तु जाननेका विकल्प तोड़कर केवल अपने आत्मामें निर्विकल्प निराकुल होकर विश्राममें रहनेका आन्तरिक तपश्चरण बने तो विश्वका ज्ञान हो सकता है। तो केवलज्ञान भी आत्मीय शक्तिसे प्रकट होता है।

मतिश्रुतज्ञानकी परोक्षरूपता—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान ये परोक्षज्ञान हैं, ये येदोनों ही ज्ञान इन्द्रिय और मनका निमित्त पाकर उत्पन्न होते हैं हाँ परोक्षज्ञान में जो एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है वह कुछ विशद जानता है इसलिये उसे उपचारसे प्रत्यक्ष कहा गया है। तो ज्ञान अनेक हैं पर उन सब ज्ञानोंके जो उत्पन्न होनेकी पद्धति है उस पद्धतिकी दृष्टिसे दो प्रकारका प्रमाण है प्रत्यक्ष और परोक्ष।

परिचित ज्ञानविधिसे आत्महितशिक्षा—हम इस प्रसङ्गमें आत्महितके लिए यह शिक्षा प्राप्त करें कि जानने तककी भी इच्छा हमारे विकासमें बाधा डालती है। विषय भोगोंकी, विभावोंकी इच्छा तो अत्यन्त बाधक है। हम बाह्य पदार्थोंकी वाञ्छा रखें तो आत्मविकासमें बड़ी बाधा आती ही है, लेकिन जाननेकी भी कुछ इच्छा रखें तो उससे विकासमें बाधा होती है। जैसे कि अध्यात्म योगमें यह बात बतायी गई है कि जो पुरुष मोक्षकी भी इच्छा रख रहा है वह मोक्षको प्राप्त नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता अर्थात् अन्य इच्छा तो मोक्षमें प्रबल बाधक है ही। परिवार, मित्र, पोजीशन, विषयभोग उपभोग इन सबकी इच्छा तो मोक्षमें प्रबल बाधक है मोक्षसे उल्टी दिशामें ले जाता है, संसार बन्धनमें भटकता है। यह तो ठीक है ही किन्तु इच्छामात्र मोक्षमें रुकावट करती है। यह बतानेके लिये कहा है कि जो पुरुष मोक्षकी भी इच्छा करता है उसके तो चूँकि इच्छाका आवरण है ना, रागभाव है ना, तो उस रागभावके कारण वह मोक्षको प्राप्त नहीं करता। यद्यपि पद्धति यह ठीक है कि पहिले हम मोक्षकी इच्छा बनायें, मुझे मुक्त होना है और इस इच्छासे प्रेरित होकर हम अशुभ कार्योंसे बचते हैं, शुभ कार्योंमें लगते हैं, मोक्षके उपायमें भी हम चलनेका प्रयत्न रखते हैं, ठीक है, किन्तु कुछ समय बाद, कुछ मोक्ष मार्गमें अपना कदम चलानेके बाद यह इच्छा नहीं रहती और वहाँ केवल सहज ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मतत्त्वका अनुभव रहता है तब उसे मोक्ष होता है। तो इच्छा मात्र हमारे विकासमें बाधक है, और की इच्छा तो बाधक है ही, पर जाननेकी भी इच्छा रखे तो उससे कहीं ज्ञान बढ़ नहीं जाता। पूर्ण ज्ञान नहीं बन जाता।

योग्यतानुसार विकास— जैसे किसीके पास १ लाख रुपयेकी पूँजी है और हजार रुपयेके कामकी इच्छा करे तो वह कर सकता है क्योंकि उसके पास पूँजी बड़ी है, और जिसके पास पूँजी हजार रुपयेकी ही है वह लाख रुपयेका काम करना चाहे तो नहीं कर सकता है, इसी तरह हम मनुष्योंके पास ज्ञानकी पूँजी तो ज्यादा है। जब हम श्रम करके कुछ जानना चाहते हैं तो जान जाते हैं, पर ऐसा नहीं हो सकता कि ज्ञानावरणका क्षयोपशम हमारे न हो, हमारी वर्तमान पर्यायमें बड़े ज्ञानकी योग्यता तो न हो और हम श्रम करके साधना करके बड़ा ज्ञान प्राप्त करलें। यह नहीं हो सकता।

सर्वज्ञानप्राप्तिका मार्ग— समस्त ज्ञान प्राप्त करनेका उपाय तो इच्छामात्र को टालकर, इच्छारहित, विकाररहित सनातन ज्ञानानन्दस्वरूपमय आत्मतत्त्वका ध्यान रखना, वहाँ ही विश्राम करना यह उपाय पूर्णज्ञान प्राप्त करनेका है। जैसे थोड़े थोड़े गेहूँ डालकर बोरा भर लिया जाता है इस तरहसे थोड़ा थोड़ा जानकर पूर्णज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तो विश्रामसे अपमें आत्म-गृहमें ही बैठना है, सर्वपरका विकल्प त्यागना है। इस ही पद्धतिसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। तो यों प्रमाण बहुत हैं, उन सब प्रमाणोंका संग्रह करनेकी पद्धति प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद करने वाली पद्धति है। अन्य प्रकारसे दो प्रमाण माननेपर समस्त ज्ञानोंका अन्तर्भाव नहीं होता। इस प्रकार ज्ञानके भेदोंका वर्णन किया गया है।।

अभाव प्रमाणकी सिद्धिकी प्रस्तावना— प्रमाण कहते हैं उस ज्ञानको जो ज्ञान हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार करे। ऐसा ज्ञान निर्णयात्मक ज्ञान हुआ करता है। जहां वस्तुका यथार्थ निर्णय हुआ कि [illegible] र्णय करने वालेने हितकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राप्ति और अहितके परिहारका निर्णय पा लिया। उस ज्ञानके ये दो भेद प्रत्यक्ष और परोक्षके रूपसे कहे जा रहे हैं जिसमें सभी ज्ञान गर्भित हो जाते हैं। केवल प्रत्यक्ष और अनुमान इस प्रकार दो प्रमाणोंकी ही मान्यता ठीक नहीं। अतः प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानने वाले क्षणक्षयवादियोंके प्रति कहा जा रहा है कि केवल ये दो ही प्रमाण नहीं हैं प्रत्यक्ष और अनुमान, किन्तु आगम भी प्रमाण है, उपमान भी प्रमाण है और अर्थापत्ति भी प्रमाण है। अब इसके बाद यह कहा जा रहा है कि इसके अतिरिक्त अभाव प्रमाण भी प्रमाण है। अभाव प्रमाण यद्यपि जैन सिद्धान्तमें कोई अलग नहीं है, किन्तु किसी वस्तुके सद्भावरूप अभाव हुआ करता है। इस कारण जिस वस्तुके सद्भावरूप अभाव है उसको ग्रहण करने वाले प्रमाणसे ही उस का ज्ञान बताया गया है। यहाँ मीमांसकके मतानुसार अभाव प्रमाणकी सिद्धि की जा रही है और प्रसङ्गमें जो समस्या प्रत्यक्ष और अनुमानसे अधिक प्रमाणोंके सिद्ध करने की है उस प्रयोजनके लिये अभाव प्रमाणकी सिद्धि की जा रही है।

अभाव प्रमाणकी ज्ञानविधि – जैसे हम आंखोंसे कुछ चीज देखते हैं, यह चौकी है यह घड़ी है तो यह प्रमाण हुआ कि नहीं? प्रत्यक्ष प्रमाण है। और घड़ी न हुई वहाँ तो भी पुरुष तो यह जान लेता है ना कि घड़ीका यहाँ अभाव है। घड़ी नहीं है तो घड़ीका न होना इसको जिस ज्ञानने जाना वह ज्ञान भी प्रमाण होता है कि नहीं? वह भी प्रमाण है। तो जैसे वस्तुका सद्भाव है, जानते हैं तो वह प्रमाण है इसी प्रकार वस्तुका अभाव प्रमाण अभावको किस प्रकार जानता है? जिस चीज का अभाव बताना है, जहाँ अभाव बताना हैं उस आधार वस्तुका ग्रहण होता है और जिसका अभाव बताना है उसका स्मरण होता है, तब मनसे अभावका ज्ञान होता है। जैसे किसीने कहा कि उस कमरेसे बाल्टी उठा लावो, वहाँ बाल्टी थी हीं नहीं, तो उस पुरुषने बाल्टीका अभाव जाना तो क्या क्या बातें उस समय हुई कि एक तो वह सारा कमरा ज्ञानमें आ गया जहाँ बाल्टी परखते थे। तो एक तो आधार भूत जो वह कमरा है वह सारा ज्ञानमें आया और बाल्टीका स्मरण भी किया। हम किसका अभाव जानना चाहते उस प्रतियोगीका स्मरण भी किया तो उसके अभावमें इन्द्रियोंने तो काम दिया नहीं। यहाँ बाल्टी नहीं है ऐसा जो नास्तित्वका ज्ञान है इस में इन्द्रियाँ काम नहीं करती। आंखोंसे अभाव न दीखेगा। आँखोंसे तो चीज दिखेगी। इन्द्रियोंसे तो कोई वस्तु ज्ञात होगी, अभाव ज्ञात न होगा। तो अभाव जो ज्ञात होता है वह मनसे ज्ञात होता है वह मानसिक ज्ञान है, इसी प्रकार किसी जगहमें बाल्टी आदिकका अभाव जानना इसका नाम अभाव प्रमाण है।

प्रत्यक्षादिककी तरह अभावप्रमाणका भी विधान—जहांपर प्रत्यक्षादिक प्रमाणकी उत्पत्ति नहीं होती वहां प्रमाणका अभाव कहदो एक तरहसे, लेकिन वह अभाव स्वयं एक प्रमाण है। उस अभावका ज्ञान तो हुआ। यह चीज नहीं है, इसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान तो हुआ अभावसे। तो जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिससे हमने जाना कि यह चीज है, अनुमान प्रमाण है जिससे हमने जाना धुवां देखकर कि यहां अग्नि है, आगम प्रमाण है, जिससे हमने शब्दोंको सुनकर जाना कि अमुक वस्तु कही जा रही है। अर्थापत्ति प्रमाण है जिससे कि हमने शक्तिका परिज्ञान किया, उपमान भी प्रमाण है जिससे हमने किसी रोझको देखकर गायकी सदृशताका ज्ञान किया। किसी भी वस्तुको निरखकर अन्य वस्तुकी समानताका बोध होता है अनुमानसे। तो जैसे ये सब प्रमाण हैं इसी प्रकार "नहीं है यह वस्तु" ऐसा ज्ञान हो तो वह भी प्रमाण है।

अभाव अप्रत्यक्ष व अनुमानका अविषय—अभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं होता, क्योंकि प्रत्यक्ष तो अभावका विषय नहीं करता। प्रत्यक्षसे इन्द्रियसे हम पदार्थका सद्भाव जानेंगे, अभाव नहीं जान सकते। इन्द्रियां तो सद्भाव अंशको ही ग्रहण करेंगी अभाव अंशको ग्रहण न करेंगी। जैसे इस हालमें चटाई, चौकी, दरी, घड़ी, कमण्डल आदि जो जो चीजें हैं वे तो हमें इन्द्रियोंसे ज्ञात हो रही हैं और कुर्सी टेबुल आदि नहीं है तो उनका ज्ञान इन्द्रियोंसे तो नहीं हो रहा, मनसे हो रहा है। तो जैसे इन पदार्थोंका सद्भाव ज्ञान होता है तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण है इसी प्रकार कोई चीजका अभाव भी जिसे विदित हो रहा तो अभावको जानने वाला ज्ञान भी प्रमाण है। वह प्रमाण एक स्वतन्त्र प्रमाण है। अभाव प्रमाणका प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव नहीं है क्योंकि प्रत्यक्षका विषय अस्तित्व है और अभावका विषय नास्तित्व है। अभाव प्रमाणका विषय जो अभाव है वह अनुमानसे भी नहीं जाना जाता क्योंकि अनुमानकी प्रवृत्ति वहां होती है जहां हेतु हो। जैसे धुवां देखकर अग्निका ज्ञान करना तो इसी प्रकार यहां अनुमान क्या है, कोई हेतु ही नहीं। इससे अभाव प्रमाण एक स्वतन्त्र प्रमाण है, यह हठ करना कि केवल प्रत्यक्ष व अनुमान ये ही प्रमाण हैं, यह हठ युक्तिसंगत नहीं है।

सदंश व अदंशके पार्थक्यके विषयमें शंका समाधान—अब क्षणक्षयवादी थोड़ी यहां शङ्का कर रहा है कि अभाव प्रमाणने विषय किया अभावको, नहीं है इस बातको, तो अभाव तो कोई विषय ही नहीं है, अभाव क्या चीज है, एक मनकी कल्पना करली। मनकी कल्पना तो जैसी चाहे कर सकते हैं। अभाव नामक कोई चीज तो नहीं है, वह विषयभूत अभाव कोई सत्ता ही नहीं रख रहा, फिर अभाव प्रमाण कहना यह तो व्यर्थकी बात है। उत्तरमें मीमांसक कहते हैं कि अभाव प्रमाण व्यर्थ नहीं है। कारणादिकके विभागसे अभावका व्यवहार बराबर सब लोग कर रहे हैं। यदि अभाव प्रमाण न रहे तो लोक प्रतीति जो व्यवहार है वह सब खतम हो जायगा। जैसे दूध है अभी, यह दही नहीं है। अब यह दही बन गया, अब यह दूध नहीं रहा। तो जैसे है है, का हमें बोध होता, इसी प्रकार न न का बोध भी तो साथ साथमें चल रहा है। तो न का जो व्यवहार चल रहा है वह यदि न रह सके तो फिर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हाँ हाँ से ही तो काम नहीं बनता। तो कारण आदिकके विभागसे जो यह व्यवहार हो रहा है वह न होगा।

http://www.jainkosh.org

अर्थापत्तिसे अभाव प्रमाणकी सिद्धिमें प्रागभावका माध्यम– अर्थापत्ति से भी अभाव प्रमाणकी सिद्धि है। यदि अभाव प्रमाण न होता तो अभावके ये चार भेद कैसे बनते ? प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। जैसे दूधके समय उसमें दही छाछ आदिक बात पर्याय नहीं है यह बात सत्य है ना, तब दूधकी पर्यायमें दूध हो रहा है, उसमें दूधकी ही तो पर्याय है, दही आदिकका परिणमन तो नहीं है। तो दूधकी भावी जो दही आदिक पर्याय हैं उनका वर्तमानमें अभाव है कि नहीं ? है। इसको झूठ कैसे कहा जाय ? इसका नाम है प्रागभाव। यदि प्रागभाव न हो तो इसके मायने हैं कि उस दूधमें दही छाँछ ये सब चीजें एक साथ आ गयीं। फिर उसका स्वाद क्या रह गया ? तो प्रागभाव यदि न हो तो वस्तु संकरता हो जायगी. किन्तु प्रत्येक पदार्थ एक पर्यायरूप ही रहा करते हैं प्रति समयमें अनेक पर्याय रूप नहीं रहते। यह व्यवस्था अभावने ही तो बनायी है तो अभाव प्रमाण यदि न होता तो प्रागभावकी व्यवस्था न बनती। यहां अभावको प्रमाण सिद्ध करके प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हैं इसका निराकरण किया जा रहा है। यह सब ज्ञान की चर्चा है। यह ज्ञान किस किस रूपसे प्रगट होता है और कौनसा ज्ञान प्रमाणभूत है उसका यह प्रतिपादन है। जैसे हम प्रत्यक्षसे देखकर वस्तुका ज्ञान करते हैं यह अमुक है इसी प्रकार वस्तुको न निरखकर यह भी ज्ञान करते हैं कि उसका अभाव है, तो जैसे सद्भावका ज्ञान प्रमाण है इसी प्रकार अभावका भी ज्ञान प्रमाण है।

प्रध्वंसाभावके व्यवहारसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि—दूसरा अभाव है प्रध्वंसाभाव। दूधका जैसे दही बन जाय तो दही बननेपर दूध आदिक परिणमनका अभाव हो गया ना, अब उसमें दूधका स्वाद तो नहीं है और दूधका कोई प्रभाव भी नहीं। दूध पीनेका जो असर है अब वह न रह सकेगा। तो दही बननेपर दूध आदिक पर्यायोंका पूर्व पर्यायोंका अभाव है यही तो प्रध्वंसाभाव है। यदि प्रध्वंसाभाव न हो तो क्या अनर्थ होगा कि प्रत्येक पदार्थ अनन्तपर्यायात्मक एक साथ हो जायगा। जैसे दही दूधादिरूप है सो मात्र दही नहीं रहा तो दूध भी है, दही भी है, सब पर्यायरूप बन गया परन्तु ऐसा है कहां ? जो लोग रसी पालते हैं कि हम शुक्रवारको दही नहीं खावेंगे तो वे दूधको तो पी लेते हैं ना, क्योंकि दूध परिणमन अलग है, दही परिणमन अलग है और ये परिणमन जुदे-जुदे हैं यह बात तभी तो बनेगी जब वहां प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव आदिक माने जायें।

अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभावकी सिद्धिसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि— एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव है यह बात सही है कि नहीं ? गाय गाय ही है, घोड़ा नहीं है। तो गायमें घोड़ेका अभाव है ना, तो अभाव कहना वस्तु है। अभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी प्रमेय है. अभाव भी प्रमाण है, इससे ज्ञानको भी प्रमाण मानना चाहिए। केवल प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो ही प्रमाण नहीं हैं एक अत्यन्ताभाव होता है, जो चीज न कभी हुई, न होती है और न कभी होगी जैसे मनुष्यके सींग न कभी हुए, न हैं, न हो सकेंगे, तो मनुष्य शिरमें सींगका अभाव है यह बात क्या गलत है ? सही है। तो अभाव भी तो प्रमाण हो गया। केवल वस्तुका सद्भाव ही प्रमाण हो यह बात तो नहीं रही। अभाव भी प्रमाण है।

अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभावकी सिद्धिसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि— देखिये ! जब तक अभावके प्रमाणकी व्यवस्था न कर लेंगे तब तक हम सद्भावको भी न जान सकेंगे। घड़ी घड़ी है, ठीक है, पर यह हम तब ही तो समझ रहे हैं कि जब यह घड़ी अन्य और कुछ नहीं है, चौकी आदिक नहीं है तब तो हम घड़ीको घड़ी समझते हैं। हम किसी भी चीजको जान रहे हैं, जानते ही हम दोनों बातोंको समझ रहे हैं। यह घड़ी है, और उसके साथ यह भी समझ बनी है कि अन्य कुछ नहीं है, तो जैसे यह घड़ी है यह ज्ञान प्रमाण है इसी प्रकार यह भी तो ज्ञान प्रमाण है कि यह और कुछ नहीं है। वस्तुका सद्भाव और वस्तुका अभाव दोनों ही जाने जा रहे हैं। तो सद्भाव भी स्वयं वस्तु हुई और अभाव भी वस्तु हुई।

अनुमानसे अभाव प्रमाणकी सिद्धि—अनुमानसे भी अभाव प्रमाणका ज्ञान होता है। जैसे मह प्रत्यक्षसे जानते हैं कि यह घड़ी है तो इस जाननेमें दो प्रकारकी बुद्धियां बनीं। घड़ी में जो कुछ प्रदेश हैं, मैटर हैं परमाणु हैं उनकी अनुवृत्ति है इसमें। उनकी व्यापकता है, उनका सद्भाव है, यह भी बुद्धि बनी और अन्य पदार्थ चौकी, चश्मा चटाई आदिक नहीं है यह, उनसे अलग है, उनसे यह व्यावृत्त है यह भी तो बुद्धि बनी। इसें कहते हैं अनुवृत्ति और व्यावृत्तिकी बुद्धि। एक सद्भावरूप को पकड़ने वाली बुद्धि और एक अभाव को पकड़ने वाली बुद्धि। प्रत्यक्षसे भी हम विशेषका ज्ञान करते हैं तो उसमें हमारी दो बुद्धियां चलती हैं और उन दोनों बुद्धियोंके द्वारा हम पदार्थको जानते हैं इस प्रकार अभाव भी अनुवृत्ति और व्यावृत्ति इन दोनों बुद्धियों से जाना जाता है। जैसे किसीने मित्रसे कहा कि उस कमरेमेंसे हमारा चश्मा उठा लावो। चश्मा वहाँ था नहीं। तो मित्र यह कहता है कि वहाँ चश्माका अभाव है, तो उसने जो यह अभाव जाना उस कमरेमें, उस अभावके जाननेके प्रसङ्गमें दो बुद्धियां उसकी हुई एक तो कमरेका सद्भाव जाना यह तो हुई अनुवृत्ति बुद्धि और चश्मासे व्यावृत्त मिला वह कमरा, यह हुई व्यावृत्ति बुद्धि। तो जो अनुवृत्ति और व्यावृत्तिकी बुद्धिसे जाना जाय उसे वस्तु कहते हैं। चीज भी सद्भाव और अभावसे जानी जा रही है, और चीज का अभाव भी सद्भाव और अभाव दोनोंसे जाना जा रहा है, फिर अभाव प्रमाण क्यों नहीं है।

अभावकी सिद्धिके विना सद्भावकी सिद्धिकी अशक्यता—यदि वस्तु-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

त्वका व्यवस्थापक अभाव नामक प्रमाण न हो तो कोई वस्तु व्यवस्था ही नहीं बन सकती किसीको कहा कि घड़ी उठा लावो और उसे यह शङ्का हो जाय कि यह घड़ी कहीं बिच्छू सांप न बन गई हो तो क्या व्यवहार चलेगा ? यह घड़ी घड़ी ही है—कांटा बिच्छू सांप आदिक नहीं है, अन्य कोई पदार्थ नहीं है घड़ीको छोड़कर। दोनों बातोंका बोध है कि नहीं हमें ? इसी प्रकार किसी चीजका अभाव हो गया तो वहाँ दोनों बातोंका बोध रहता है जिस जगह हम वस्तु न पायेंगे उस जगहका ज्ञान रहता है और जो वस्तु नहीं पा रहे उसका भी अभाव रूपसे ज्ञान रहता है, इससे अभाव नामका प्रमाण है। यदि अभाव कोई वस्तु न हो तो कुछ कार्य ही नहीं बन सकता, कोई प्रयोजन ही नहीं रह सकता चेतन कहो मूर्तिक बन जाय, आत्मा कहो जड़ बन जाय। आत्मा ज्ञानमय है, जड़ नहीं है, ऐसा ज्ञान किया तो दो बातें ही हमने जानी कि आत्मामें ज्ञान है और आत्मामें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है, अज्ञान नहीं है, पदार्थमें मात्र सद्भावपना भी नहीं है और मात्र अभावपना भी नहीं है। सद्भाव ही सद्भाव मानें अभाव न मानें तो वस्तु रह ही नहीं सकती। पदार्थकी सत्ता इसी आधार पर है कि वह पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है। अपने स्वरूपसे है इसका जानना जैसे प्रमाण है ऐसे ही परके स्वरूपसे नहीं है यह ज्ञान भी तो ठोस ज्ञान है। यदि अभाव नामका कोई प्रमाण न हो तो अनेक अटपट बातें अथवा सब कुछ सर्वात्मक हो जायगा, इससे अभाव प्रमाण है, ऐसा मीमांसक मतके अनुसार सिद्ध किया जा रहा है।

अभावके अवस्तुत्वकी एक आशंका— अब यहाँ एक प्रश्न क्षणिकवादियों की ओरसे उठाया जा रहा है कि वस्तु तो निरंश है, वस्तुमें फैलाव नहीं है, अवयव (अङ्ग) नहीं है। जैसे हम देख रहे हैं कि यह चौकी एक हाथ लम्बी चौड़ी है, तो एक हाथ लम्बी चौड़ी कुछ वस्तु ही नहीं होती। वस्तु तो एक अणुमात्र है, निरंश है। ऐसे निरंश अनेक परमाणु इकट्ठे मिल गये वह चौकी बन गयी। तो यह चौकी जो दिख रही है यह परमार्थ नहीं है, मायारूप है, सम्वृत्तिरूप है, हमारी कल्पना है। इसमें जो एक एक अणु है वह वस्तु है। यों वस्तुको निरंश माना है और द्रव्यसे ही निरंश नहीं, कालसे भी निरंश, जो वस्तु होती है वह एक समय ही रहती है और मिट जाती है, फिर उसके एवजमें वहां दूसरी वस्तु उत्पन्न हुई। जैसे यह परमाणु है तो जो परमाणु है वह मिट गया, अब दूसरा परमाणु बना, इस तरह नये नये ये अनन्त परमाणु बनते चले जाते हैं। अणु तो निरंश है और निरंश वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष है, सो प्रत्यक्षने सर्वरूपसे उस निरंश वस्तुका ग्रहण कर लिया, अब उसमें बिना ग्रहणकी कोई चीज ही नहीं रही। कोई ऐसा असत् नहीं है जो ग्रहण की कोई चीज ही नहीं रही। कोई ऐसा असत् नहीं है जो ग्रहण न किया गया हो। वस्तु ही सारी ग्रहण हो गई, फिर असत्का अभाव है उसके समर्थन वाले तुम अभाव नामक प्रमाण मानते हो सो व्यर्थकी बात है। कोई विषय ही नहीं रहा तो ज्ञात किसे किया जायगा ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभावकी वास्तविकता और अभावप्रमाणकी सिद्धिका समर्थन - अभाव विषयके अभावकी शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि भाई ऐसी बात है कि प्रत्येक पदार्थ सत् और असत् दोनों ही रूप है। कोई वस्तु अगर है तो वही है, अन्य कुछ नहीं है, इसमें सत् अंश भी आ गया, असत् अंश भी आ गया। अब अस्तित्वके अंशको तो प्रत्यक्ष आदिकने जाना और नास्तित्वके अंशको अभाव प्रमाणने जाना, फिर अभाव प्रमाण कैसे न मानोगे? यदि अभाव प्रमाण न होता तो प्रत्यक्ष आदिक भी प्रमाण नहीं रह सकते। यह चौकी है इसमें यह निर्णय पड़ा हुआ है ना, कि यह अन्य कुछ नहीं है, अन्य कुछ नहीं है इस ज्ञानकी अगर दृढ़ता न हो तो यह चौकी है ऐसा कौन निःशङ्क कह सकता है? तो वस्तुके सत् अंशका ग्रहण करानेमें उपकारक है असत् अंशका ज्ञान कराने वाला अभाव प्रमाण, ऐसे महत्त्वपूर्ण अभावका विषय करने वाला है अभाव प्रमाण।

सदंश और असदंशका स्वरूपभेद—यहाँ फिर एक शङ्का की जा रही है कि सत् और असत् दोनों अंश एक ही धर्मीमें तो हैं, जैसे इस घड़ीमें घड़ीका तो अस्तित्व है और चौकी आदिक का नास्तित्त्व है ऐसे जो इसमें दो अंश पड़े हुए हैं तो इन दो अंशोंका आधार तो यह घड़ी है ना, यह चीज है ना, इसीमें इसका अभाव है, इसीमें इसका सद्भाव है। तो धर्मी जब एक है, तो जब हमने इसको प्रत्यक्षसे सारे को जान लिया तो इसमें असत् अंश भी ग्रहणमें आ गया और सत् अंश भी ग्रहणमें आ गया, फिर अलगसे ग्रहण कराये जानेके लिये क्या रहा? उत्तरमें कहते हैं कि भाई! यद्यपि एक ही वस्तुमें अस्तित्व और नास्तित्व बसे हैं। घड़ीका सत्त्व घड़ीमें है, चौकी आदिका नास्तित्व घड़ीमें है। सो है, धर्मी घड़ी तो एक है, पर धर्म तो दो हैं। उनका स्वरूप न्यारा न्यारा है। जैसे नेत्रमें प्रकाश भी है और रूप भी है अथवा दीपकमें रूप भी है और प्रकाश भी है। तो ये दो चीजें तो अलग-अलग हैं ना, स्वरूप न्यारा है। अगर एक ही चीज बन जाय तो फिर दीपक प्रकाशरहित हो जायगा चौकीमें रूप तो है पर प्रकाश नहीं है, आममें रूप भी है, रस भी है, हैं एक ही जगह, परन्तु एक नहीं हो गए। क्या कोई यह जान सकता कि इस आममें इतनी जगहमें तो इसका रूप है और इतनी जगहमें इसका रस है? जहां रूप पड़ा हुआ है वहीं रस भी पड़ा हुआ है पर रूप रस तो नहीं बन गया और रस रूप नहीं हो गया। अगर रस रूप बन जाय तो फिर आंखोंसे देखते जावो और स्वाद लेते जावो। इसी प्रकार वस्तुमें सत् अंश और असत् अंश एक ही वस्तुमें है, पर इन दोनोंका स्वरूप जुदा है। अभाव भावरूप प्रमाणसे न जाना जायगा। जैसे जिस प्रकारका विषय है उस ही प्रकारके प्रमाणमें जाना जाता है। जैसे रूप आदिक भावरूप चक्षुसे जान जाते हैं इसी प्रकार अभाव अभावप्रमाणसे जाना जायगा और भाव प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे जाना जायगा। इससे अभाव भी एक जुदा प्रमाण है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अभाव प्रमाणकी सिद्धिका उपसंहार—कुछ समझमें तो आयी अभावकी

बात ? तो लो अभाव भी प्रमाण है क्योंकि वह प्रमेय है। इसलिये प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण नहीं ठहरे, आगम, अर्थापत्ति, उपमान और अभाव भी प्रमाण होते हैं। इस प्रकार प्रमाणके भेदके प्रकरणमें प्रत्यक्ष और अनुमान ही प्रमाण हैं इसका खण्डन किया है और यह व्यवस्था बनायी कि प्रमाण इस तरह दो प्रकारके हैं—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। जो इन्द्रिय और मनसे जाना जाय सो परोक्ष है और जो विशद स्पष्ट आत्मशक्तिसे जाना जाय सो प्रत्यक्ष है। और चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे भी जो स्पष्ट जाना जाय वह भी उपचारसे प्रत्यक्ष है,क्योंकि दार्शनिक पद्धति से प्रत्यक्षका लक्षण वैशद्य कहा गया है। इस प्रसङ्गमें प्रत्यक्ष और अनुमानके भेदसे ही द्विविधताके निराकरणके लिये अनेक प्रमाणान्तरोंकी सिद्धि की है। जिसमें अन्तमें अभाव प्रमाण सिद्ध किया गया है।

अस्पष्ट ज्ञानोंकी परोक्षरूपताकी प्रस्तावना—ज्ञान दो प्रकारका होता है—एक स्पष्ट ज्ञान दूसरा अस्पष्ट ज्ञान। जो स्पष्ट है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं जो अस्पष्ट है उसे परोक्ष कहते हैं। इस प्रकार ज्ञानके दो भेद हुए। ऐसे भेदोंको न मानकर प्रत्यक्ष व अनुमान ऐसे ही दो भेद माननेका जिन्होंने आग्रह किया है उनका समाधान करनेके लिये अब तक अनेक प्रमाणोंकी सिद्धि की गई है। अनुमान, अर्थापत्ति, अभाव आगम ये प्रमाण बताये गए हैं। तो अनेक प्रमाणोंकी सिद्धिकी बात सुनकर क्षणिकवादी यहाँ यह कह रहा है कि अनेक प्रमाण सिद्ध होनेसे दो प्रमाण रहे यह भी तो बात न रह सकी। जो सूत्रमें बताया है कि प्रमाण दो हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष। तो ये दो भेद भी तो मिट गये। अब तो प्रमाण अनेक बन गये। इसके उत्तरमें बतावेंगे कि उन सबका परोक्ष प्रमाणमें अन्तर्भाव हो जाता है। जितने अन्य अन्य प्रमाणोंकी अभी तक सिद्धि की है वे सब परोक्षमें गर्भित हैं, क्योंकि ये सारे ज्ञान जो अभी बताये गए ये प्रत्यक्षकी तरह स्पष्ट नहीं है ये सब अस्पष्ट ज्ञान हैं।

अर्थापत्ति, अनुमान, उपमान, आगम व अभावप्रमाणकी परोक्षरूपता—अर्थापत्तिसे अग्निमें जलानेकी शक्तिका ज्ञान किया गया, तो वह ज्ञान भी अस्पष्ट है, आंखों देख रहे हैं चटाई, आदिक, कितना तो स्पष्ट मालूम होता है, ऐसे अग्निमें जलानेकी शक्ति स्पष्ट विदित नहीं होरही, वह परोक्ष है। उपमानमें सदृशताका उपमान किया जारहा है कियह रोझ गायके समान है तो यह समानता भी तो कुछ प्रत्यक्ष सामने नहीं है, समानताका ज्ञान तो हो रहा किन्तु सामने स्पष्ट समानता पड़ी हो जैसे कि रोझको स्पष्ट देख रहे हैं इस तरह समानताका स्पष्ट बोध नहीं है इस कारण उपमान भी परोक्ष है, आगम भी परोक्ष है। शब्द सुनकर, शास्त्र सुनकर जो ज्ञान किया जा रहा है तत्त्वके स्वरूपके बारेमें अथवा लोककी रचनाके सम्बन्धमें स्वर्ग है नरक है आदिक जो कुछ भी ज्ञान किये जा रहे हैं वे सब परोक्ष ज्ञान हैं। अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्षकी तरह सामने तो नहीं नजर आता। वह भी परोक्ष है। अभावकी वास्तविक बात यह है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभाव निषेध्यके आधारके सद्भावरूप होता है सो जो प्रत्यक्षगम्य अभाव है वह प्रत्यक्ष है, जो अनुमानादिगम्य अभाव है वह परोक्ष है। इस प्रकार जितने भी ये प्रमाण है वे सब चूंकि अस्पष्ट हैं तो अस्पष्टताके एक लक्षणकी दृष्टिसे सारे ज्ञान परोक्ष हो गए।

प्रत्यक्षज्ञानोंकी तरह परोक्ष ज्ञानोंकी भी एक लक्षणलक्षितता—जैसे कि स्पष्टताकी दृष्टिसे एक वस्तु देखी तो यह स्पष्ट ज्ञान हुआ या नहीं? स्पष्ट है। तो कानोंसे जो शब्द सुने जा रहे हैं उनका ज्ञान भी स्पष्ट है, नासिकासे जो गंध सूँघी जा रही है, सुगंध दुर्गन्धका ज्ञान हो रहा है वह भी स्पष्ट है। रसनासे जो रस चखा जाता है खट्टा–मीठा आदिक ये सब भी उसे स्पष्ट है और किसी चीजको छू कर जो यह ज्ञान किया जाता है कि यह कोमल है, यह कड़ा है, यह रूखा है, चिकना है, भारी है, हल्का है यह सब भी स्पष्ट है। तो जैसे स्पष्टताके लक्षणसे लक्षित जितने भी ज्ञान हैं वे सब प्रत्यक्षमें गर्भित हैं, इसी तरह अस्पष्ट ज्ञान जितने भी हैं वे सब परोक्षमें गर्भित होते हैं। चाहे उनमें कुछ सामग्रीका भेद हैं, आँखोंसे देखा तो रूप देखा गया, कानोंसे सुना गया तो शब्द सुने गए, रसनासे चखा तो खट्टा–मीठा आदिक रस चखा गया। सामग्रीका भेद है इन सबके ज्ञानमें लेकिन पद्धति एक है, सब स्पष्ट हो रहे हैं, तो इसी प्रकार परोक्षके जितने भी ज्ञान हैं उपमान अर्थापत्ति आदिक वे सब अस्पष्ट पदार्थको जनाते हैं इस कारण वे सब परोक्षमें गर्भित हैं।

जाननेके नाना प्रकार—यह सब अपने ज्ञानकी बात कही जा रही है, इस तरहसे लोग जाना करते हैं तो वे ज्ञान किस किस किस्मके हुआ करते हैं, सो ज्ञानकी किस्में बतायी जा रही हैं, जैसे ऐसा समझा कि यह है और यह समझा कि वह है, और यह समझा कि यह वही, तो इन तीनोंमें कुछ अन्तर है कि नहीं? पद्धतिका रीतिका अन्तर है यह है, यह तो स्पष्ट ज्ञान है। सामने चीज पड़ी है उसे हम जान रहे हैं, वह सब स्पष्ट है। साँव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। और वह है, तो वह सामने नहीं है, किन्तु ख्यालमें आ रहा हैं तो वह स्मरण ज्ञान हुआ, परोक्षज्ञान हुआ। और यह यह एक तीसरी चीजको बताता है। सामने जो वस्तु है और स्मरणमें जो वस्तु आई है उसकी एकता दिखाना है। यह पुरुष वही है यह प्रत्यभिज्ञान हुआ। ज्ञानका काम यद्यपि जानना है और इस दृष्टिसे सब ज्ञान एक है। किसी भी तरह जाने जान तो गये, पर जाननेकी किस्में अलग अलग हैं।

अनेक प्रमाणोंका वर्णन और उनमें कुछ प्रमाणोंकी पुनरुक्तता—अभी तक सभी मत वालोंकी ओरसे ज्ञानकी किस्में बतायी गई हैं, एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है जो स्पष्ट जानता है, एक अनुमान है जो किसी चीजको निरखकर दूसरी चीजका ज्ञान कराता है। धुवां देखकर आगका ज्ञान होना यह अनुमान है, एक आगम है, शब्द सुन कर वस्तुका बोध हो जाना। जैसे कहा मकान, तो झट ज्ञान हो गया कि यह कहा, इस पदार्थकी बात कही। शब्द सुनकर पदार्थका बोध हो जाय यह आगम है। स्पष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रसिद्धि अर्थ देखकर अदृष्ट अर्थकी कल्पना बने वह अर्थापत्ति है। जैसे धधकती हुई आगको देखकर यह कल्पना बनी कि इसमें जलानेकी शक्ति है तो अर्थापत्ति हुई। किसी वस्तुको देखकर अन्य वस्तुकी सदृशताका ज्ञान हुआ, यह अमुक चीजके समान है यह उपमान हुआ। और, कुछ नजर न आये उसका अभाव जाने यह अभाव प्रमाण हुआ, इस तरह इतने प्रमाण सिद्ध तो किए गए पर इसमें कई ज्ञान पुनरुक्त हो गये। जैसे अर्थापत्ति और अनुमानमें कुछ अन्तर नहीं है, अग्निको देखकर जाना कि इसमें जलाने की शक्ति है, यही तो अनुमान बना। इस अग्निमें जलानेकी शक्ति है। यदि जलानेकी शक्ति न होती तो पदार्थको भस्म न कर सकती थी। अनुमानमें और अर्थापत्तिमें क्या भेद है? इस तरह कुछ ज्ञान कुछ ज्ञानोंमें गर्भित होते हैं तो सब प्रकारसे जितने ज्ञान रहते जो पुनरुक्त भी न हों और छूटे भी न हों उसका आगे वर्णन करेंगे।

उपमान प्रमाणका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव अब यहाँ शङ्काकार यह कहता है कि परोक्ष ज्ञान तो जैन शासनमें इस प्रकार कहे हैं स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। उसमें उपमान तो बताया ही नहीं तो उपमान प्रमाण अलग है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि उपमानका अन्तर्भाव प्रत्यभिज्ञानमें हो जाता है। एक चीज सामने देखी और दूसरी चीजका ख्याल आया, उसमें कुछ जोड़ना, इसका नाम है प्रत्यभिज्ञान। जैसे रोझ देखा और गायका स्मरण हुआ, उसमें समानता जोड़ दी कि यह गायके समान है, प्रत्यभिज्ञान हो गया। यदि उपमान प्रमाण कुछ अलग विषय मानकर अलग माना जाय तो फिर यह बतावो कि विलक्षणताका जो ज्ञान हुआ दो वस्तुवोंमें, उसका कौनसा प्रमाण मानोगे? नया प्रमाण बन गया। पर प्रत्यभिज्ञानका जो यह लक्षण है कि जो चीज दिखे उसमें और जिसका स्मरण हो उसमें कुछ भी संकलन करना प्रत्यभिज्ञान है। यह पुरुष वही है जिसे अमुक नगरमें देखा था यह एकत्वका जोड़ हुआ। यह रोझ गायके समान है इसमें सदृशताका जोड़ हुआ। यह हिरण भैंससे बिल्कुल जुदा है यह विलक्षणताका जुदा है यह विलक्षणता संकलन हुआ। यह इससे दूर है, यह इसके निकट है, यह भैया इससे छोटा है, यह भैया इससे बड़ा है, ये सारे प्रतियोगियाके संकलन हैं सब प्रत्यभिज्ञान हो गए। उपमान कोई अलग प्रमाण नहीं है। उपमानका तो प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव होता है।

ज्ञानका सर्वसाधारण उद्भव—ऐसे ज्ञान हम आप सबके पैदा होते हैं चाहे कोई साहित्य जानता हो या न जानता हो, चाहे किसीने न्याय शास्त्र सीखा हो या न सीखा हो, चाहे कोई अपने ज्ञानका अवलम्बन कर सके या न कर सके, ज्ञान तो सभी में होता है जैसे कि हर एक कोई ख्याल कर लेता है। अरे, वह चीज तो वहीं रखी रही, उसको तो मैं भूल आया इस प्रकार किसी वस्तुका स्मरण किया जाता है, सभी स्मरण करते हैं किन्तु वह स्मरण नामका परोक्ष ज्ञान है यह नहीं जानते। उन ज्ञानों की ये किस्में बतायी जा रही हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थापत्तिका अनुमानमें अन्तर्भाव—एक ज्ञान बताया था अर्थापत्ति। जिसके बिना जो न हो उसको निरखकर उसका ज्ञान करना अर्थापत्ति है जैसे नदीमें पूर आ गया, तो नदीका पूर देखकर यह ज्ञान करना कि ऊपर वर्षा हुई है अन्यथा यह पूर नहीं आ सकता था, यह अर्थापत्ति हुआ बताते हैं। आचार्यदेव कहते हैं कि अर्थापत्तिका तो अनुमानमें अन्तर्भाव होता है। अनुमानमें और अर्थापत्तिमें क्या अन्तर है ? नदीमें पूर देखकर ऊपर वृष्टि हुई ऐसा सम्बन्ध सोचकर अनुमान ज्ञान हुआ, उसीको तुम अर्थापत्ति कहते हो। अर्थापत्तिको उत्पन्न करने वाला पदार्थ इस तरहसे जाना गया या नहीं कि यह इसके बिना नहीं हो सकता। ईंधनको आगने जलाया जलाने वाली आगको देखकर यह अन्यथानुत्पत्ति ज्ञानमें आयी कि नहीं कि इसमें जलानेकी शक्ति न होती तो यह जला न सकती थी। तो ऐसी अविनाभावता ज्ञात हो तब अदृष्ट अर्थका ज्ञान बनता है या न भी ज्ञात हो तो भी अदृष्ट अर्थका ज्ञान हो जाता है ? ऐसे दो प्रश्न किए। न जाना गया अविनाभाव फिर भी उससे अदृष्ट अर्थ की कल्पना बन गयी। तो इस तरह तो बड़ा अनर्थ हो गया। जिसके बिना जो चीज नहीं होती कहो उसे भी न जनाये और जिसके बिना जो होता है उसे भी जना दे तो अन्यथानुत्पत्तिसे न जाना जाय पदार्थ और फिर किसी चीजका ज्ञान करा दे यह सम्भव नहीं है, ये ही युक्तियां हैं, ये ही कानून हैं। तो यह अर्थापत्ति और अनुमान कोई जुदी चीज नहीं होते, यह इस प्रसङ्गमें सिद्ध किया जा रहा है।

आगम प्रमाणकी तरह अर्थापत्तिकी पृथक् प्रमाणरूपताका अभाव—जितने अभी ज्ञान बताये थे उनमें कोई ज्ञान तो अपुनरुक्त हैं और कुछ ज्ञान पुनरुक्त हैं, अर्थात् कुछ ज्ञान तो ऐसे हैं जो अन्य ज्ञानमें सामिल हैं उनको अलगसे संख्यामें न कहना चाहिए, और कुछ ज्ञान ऐसे हैं कि नहीं सामिल हो सकते। जैसे आगम ज्ञान। यह स्वतंत्र ज्ञान है। शब्द सुनकर यह पदार्थ बताया गया है, इस शब्दसे ऐसा ज्ञान होनेका नाम आगमज्ञान है। शास्त्रोंमें भी यही बात है और हम आप बोल चाल करते हैं उनमें भी यही बात हैं। शास्त्रोंमें भी शब्द हैं और उन शब्दोंमें क्या कहा गया है, उस पदार्थका बोध होता है। जीव, अजीव, आश्रव बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष। ये ७ तत्त्व हैं, शास्त्रमें लिखे हैं। सुनकरके ज्ञान भी हो जाता है कि जीव बताया है तो जो प्राणधारी है, चैतन्य जिसमें पाया जाता है उसको कहा गया है। अजीव शब्द बताया है तो जहां चैतन्य नहीं है उसे अजीव कहा है। कर्म भी अजीव है। आश्रव शब्द सुनकर यह भाव ज्ञात कर लिया जाता है कि ओह ! जीवमें कर्म का आना इसे कहा है आश्रव। जीवमें कर्म बंधें सो बन्ध। जीवमें नये कर्म न बंधें सो सम्बर और जो कर्म पहिलेसे बँधे हों वे छूटने लगें सो निर्जरा और जब कर्म जीवसे बिल्कुल अलग हो जायें उसीका नाम है मोक्ष तो शास्त्रमें शब्दोंको सुनकर जैसे उनके वाच्य अर्थका परिज्ञान होता है. लोक व्यवहारमें भी शब्दोंको सुनकर उनके वाच्यभूत अर्थका ज्ञान होता है। इस दृष्टिसे आगम शब्दका नाम है। जिन जिन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

शब्दोंको सुनकर पदार्थका बोध होता है, वे सब आगम ज्ञान कहलाते हैं। पर आगम ज्ञान कहनेसे महत्ता दी जाती है शास्त्रोंकी, क्योंकि लोक व्यवहारकी गप्प सप्पकी बातोंसे जीवको कुछ हित नहीं मिलता है, उसका महत्त्व तो हित करने वाले शब्दोंका आंका जाता है। इसलिये आगम शब्दसे शास्त्रका ग्रहण किया जाता है। तो जैसे आगम एक स्वतंत्र प्रमाण है इसी प्रकार अर्थापत्ति स्वतंत्र प्रमाण नहीं है।

अर्थापत्ति और अनुमान दोनोंमें अन्यथानुपपत्तिका आधार—अर्थापत्तिका अनुमानमें अन्तर्भाव है क्योंकि अनुमानमें भी यह बात पायी जाती है कि जो जिसके बिना न हो उसे देखकर उस अदृष्टका ज्ञान कर लेते। जैसे पर्वतमें अग्नि तो अदृष्ट है, अग्नि हमें नहीं दिख रही, पर धुवां देखकर हमने अग्निका अनुमान किया, क्योंकि धुवां अग्नि बिना नहीं हो सकता। तो यह हुआ अनुमान ज्ञान। इसीको तुम कहते हो अर्थापत्ति। इसमें अन्तर क्या रहा? यदि अन्यथानुत्पत्तिसे न जाना गया पदार्थ अदृष्ट अर्थको बताने लगे तब तो जिस चाहे को जो चाहे कह बैठो, कोई नियम नहीं बनेगा। यदि अन्यथानुत्पत्तिसे जाना गया ही पदार्थ अदृष्ट अर्थको बताता है तो यही अनुमान है।

अर्थापत्तिमें अन्यथानुपपन्नत्वके बोधकी अर्थापत्तिसे असम्भवता—अच्छा, अब यह बतलावो कि यह पदार्थ अमुकके बिना नहीं हो सकता है, अग्निका जला देना अग्निमें जलानेकी शक्ति बिना नहीं हो सकता, धुवां का होना यह अग्निके सद्भाव बिना नहीं हो सकता है। यह बात तुमने अर्थापत्तिसे ही जानली या अन्य प्रमाणोंसे जानली? अगर कहो कि अर्थापत्तिसे जाना तो इतरेतराश्रय दोष हो गया। जब अर्थापत्ति सिद्ध हो तो अन्यथानुत्पत्ति जानी जाय और जब अन्यथानुत्पत्ति जानी जाय तो अर्थापत्ति जानी जाय। इतरेतराश्रय दोष उसे कहते हैं कि एक पदार्थ दूसरे के आश्रय रहे, वह दूसरा भी इस पहिले के आश्रय रहे, तो काम कुछ नहीं बन सकता। जैसे एक ताला जो बिना चाभीके ही दबानेसे बन्द हो जाता है, उस तालाकी चाभी तो डाल दी ट्रंकमें, फिर लगा दिया ताला, तो उस समय वह स्थिति बन गयी कि ताला खुले तो चाभी निकले और चाभी निकले तो ताला खुले, तत्वस्वरूपके कथनमें यदि कोई विपरीत मार्गका प्रतिपादन करे तो उस वर्णनमें कभी ऐसी बात कहनेमें आ जाती है कि जिसमें इतरेतराश्रय दोष होता है।

अर्थापत्ति और अनुमानमें भेदकी असिद्धि—अर्थापत्ति और अनुमानमें भेद सिद्ध करने के लिए अर्थापत्तिवादी लोग ऐसा भेद डालते हैं कि अनुमानके लिए जो सम्बन्ध जाना जाता है, सम्बन्ध जाने बिना अनुमान तो नहीं बनता। जैसे अग्नि और धुवांका कार्य कारण सम्बन्ध है, अग्नि कारण है धुवां कार्य है, अग्निसे धुवां उत्पन्न होता है, इसी प्रकार साध्य साधनका जब सम्बन्ध ज्ञात हो तब अनुमान बनता है तो फिर जो सम्बन्ध ज्ञात होता है वह अर्थापत्तिके बाद ज्ञात होता है तो सम्बन्धके ज्ञानसे

Version 1

पहिले यह अर्थापत्ति हुई और अर्थापत्तिके बाद अनुमान बना, इस तरह भेद डालते हैं लेकिन यह केवल कथन मात्र है। अरे अर्थापत्तिमें कोई भेद नहीं हैं, इस तरह अर्थापतिका अनुमानमें अन्तर्भावमें हुआ और अनुमान परोक्ष ज्ञान है। अब इस प्रकरणमें यह सिद्ध करते जायेंगे कि ज्ञान दो ही तरह के होते हैं एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। जो स्पष्ट जाने सो परोक्ष। तो अनुमान अस्पष्ट जानता है इसलिए वह परोक्ष है और अर्थापत्ति कोई अलग चीज नहीं है वह अनुमान है।

अर्थापत्तिमें अन्यथानुपपन्नत्वका प्रमाणान्तरसे भी अनवगम—अब इस प्रकरणमें यह पूछा जा रहा है कि अर्थापत्ति प्रमाणको उत्पन्न करने वाला जो पदार्थ है उस पदार्थमें और उस अदृष्ट अर्थमें कुछ सम्बन्ध जाना गया कि नहीं? अगर जाना गया तो किससे जाना गया? अर्थापत्तिसे जाननेकी बात कहो तो उसमें इतरेतराश्रय दोष आता, अन्य प्रमाणसे जाना गया तो वह अन्य प्रमाण क्या है? क्या भूयोदर्शन या विपक्षमें अनुपलम्भ? यदि कहो भूयोदर्शन है याने बराबर देखना इससे अदृष्ट अर्थ की कल्पना होती है। हम रोज रोज देखते कि अग्नि जलानेका काम करती है, जो भी जलाना हुआ अग्निसे जला देते हैं तो बार-बार रोज-रोज देखनेसे हमें ज्ञान होगया कि इसमें जलानेकी शक्ति है तोबार-बार देखनेसे या विपक्षमें अर्थ नहीं पाया गया इसलिए अर्थापत्ति बनी? जैसे अग्निका विपक्ष है जल और जलमें जलानेकी शक्ति नहीं, क्या इस तरहसे जाना तुमने कि अग्निमें दाहक शक्ति है? क्योंकि विपक्षमें अनुपलम्भ है उसका खण्डन करते हैं कि भूयोदर्शनसे अगर जाना तो साध्य धर्मीमें जाना या दृष्टान्त धर्मीमें? भाई तुम जिसमें सिद्ध करना चाहते उसमें उस शक्तिका पदार्थके साथ अविनाभाव तो तब समझा जाय जब बारबार दर्शन हो। जैसे हम देखते हैं कि आग है वहां धुवां है, दसोंबार देखा तब तो हमने पर्वतमें धुवां देखकर अग्निका ज्ञान किया। इसी तरह अग्निमें शक्ति है और यह जला रही है, ऐसा दोनोंको यदि बारबार देखा हो तो तुम्हारी अर्थापत्ति बने, पर शक्ति तो अतीन्द्रिय है, वह इन्द्रियके द्वारा जानी ही नहीं जाती. फिर बारबार दर्शन कैसे हो सके और फिर प्रकृतसाध्य धर्मीमें जब हमें उस सम्बन्धका ज्ञान नहीं है तो अर्थापत्ति हम कैसे बनायें? यदि कहो कि दृष्टान्तधर्मीमें भूयोदर्शन होता है उन दोनों बातोंमें बारबार दर्शन होता है तो दृष्टान्तमें तो अविनाभाव रहा और प्रकृतसाध्यधर्मीमें ज्ञान कराये यह नहीं हो सकता, और अगर हो जाय तो वह सब अनुमान कहलायेगा। यह प्राणी जिन्दा है क्योंकि श्वास ले रहा है तो उस प्राणीका जिन्दापन क्या किसीने देखा है? हम झट अनुमान कर लेते हैं। अनेक अदृष्ट अर्थोंका हम परिज्ञान जो करते हैं उसमें केवल एक ही युक्ति है। यह न होता तो यह न हो सकता था और यह है इस कारण वह अवश्य है। सारी युक्तियों का अनुमानका एक यही आधार रहता है, किसी तरहका अनुमान कर लो।

निरपेक्ष पूर्णज्ञानकी सारभूतता—भैया! ज्ञानकी किस्में बतायी जा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रही हैं जो हममें उत्पन हुआ करती हैं। इन सब ज्ञानोंमें सारभूत ज्ञान तो वह है जो आत्म शक्तिसे बिना मर्यादाके स्वभावत: समस्त सत्को जाने य हम आप लोगोंके छुट पुट ज्ञान जिनप' लोग घमंड करते है, मैंने बहुत जाना, मैंने बहुत विद्यायें सीख ली, मैं बहुत कलामें निपुण हूँ इस प्रकार जो अहंकार भाव होता है जिन छुट पुट ज्ञानोंमें वे ज्ञान तो सारे अपूर्ण हैं। पूर्ण ज्ञान हो जाय वहाँ अहंकार असम्भव है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। उसका स्वभाव जानना है। वह तो स्वभावसे निरन्तर जानता रहता है और जानता है सत् को, जो है उसे जानता है सामने हो चाहे न हो। सत् है तो जाननेमें आ जायगा। यह तो हम आप लोगोंके लिए एक कलंक जैसी बात है कि हम सामने की चीजको तो जान सकते हैं औ' जो सामने न हो उसे नहीं जान सकते, ऐसा भेद ज्ञानमें नहीं पड़ा है ज्ञानकी ओरसे। पर कर्म बन्धनसे हम आप मलिन हैं, ऐसे ही आवरण पड़े हैं, ऐसे ही विभावोंने हम पर हुकूमत कर लिया है उस परिस्थितिमें हम इतने कमजोर हैं कि थोड़ा ही जान पाते हैं, जो सामने हो उसको ही जान पाते हैं, सर्वसत्को नहीं जान सकते, पर ज्ञानमें ज्ञानकी ओरसे यह अपूर्णता नहीं पड़ी है। ज्ञान तो समस्त प्रमेयको जो कुछ भी सत् हो उस सबको जान लेता है। तो ज्ञानोंमें सारभूत ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है जो समस्त पदार्थोंको एक साथ स्पष्ट बिना इन्द्रिय मनकी सहायताके केवल आत्मशक्तिसे जान लेता है।

निरपेक्ष पूर्वज्ञानके विकासका उपाय एकमात्र सहज ज्ञानस्वभावका अवलम्बन—अब साथ ही यह भी समझिये कि ऐसे सकल प्रत्यक्षको उत्पन्न करने का उपाय है अपने आत्मामें सहज सनातन स्वत: सिद्ध जो एक ज्ञानस्वभावमें ज्ञान-स्वभावको जाने, मैं ज्ञानमात्र हूँ, इस प्रकार जो अपने ज्ञान वभावको जाने, अपने ही केन्द्रमें मग्न हो जाय तो यह सहज आत्मपरिज्ञान सकल प्रत्यक्षका कारण बनता है। इससे सारभूत ज्ञान तो अपने ही ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करना है। इसीमें ही शरण मिलता है, इसीमें समस्त अशान्ति दूर होती है। तो हम आप इस ज्ञानस्वभावकी उपासनाके प्रसादसे विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न करें और संसारके दु:खोंसे सदाके लिये छुटकारा पा लें, ऐसा पुरुषार्थ करें तो इसमें ही इस मनुष्य जीवनकी सफलता है।

अर्थापत्ति और अनुमानमें भेद सिद्ध करनेका प्रयास– अर्थापत्तिप्रमाण-वादी यहाँ अपना मन्तव्य रख रहे हैं –साधनसे सपक्षदृष्टान्तमें प्रवृत्त हुए प्रमाणसे सर्वोपसंहाररूपसे अर्थात् व्याप्तिरूपसे अपने साध्यके अविनाभावपनेका निश्चय होता है और अर्थापत्तिका उत्थापन करने वाले पदार्थसे प्रकृत साध्यधर्मीमें ही प्रवृत्त हुए प्रमाण से सर्वोपसंहाररूपसे अदृष्ट अर्थके अन्यथानुपपन्नत्व अर्थात् अविनाभावपनेका निश्चय होता है। यह अनुमान और अर्थापत्तिमें भेद है। इसका आशय यह है कि जैसे यह अनुमान बना कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे, जहां जहां धुवा होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है जैसे रसोईघर। इसमें साधन धूम पहिले रसोईघरमें माना और उससे

Version 1

वहां अग्निका ज्ञान किया फिर व्याप्ति बनी उससे जहां जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है यह अविनाभाव बना फिर पर्वतमें साध्य अग्नि सिद्ध हुई। किन्तु अर्थापत्तिमें सीधे ही प्रमाणप्रसिद्ध अर्थसे अपने ही प्रकृतधर्मीमें अदृष्ट अर्थके अन्यथानुपपन्नत्व का निश्चय हो जाता है। यह दोनोंमें अन्तर है। इस कारण अर्थापत्तिका अनुमानमें अन्तर्भाव नहीं होता।

अर्थापत्ति व अनुमानमें पार्थक्यकी आशङ्काका समाधान—अर्थापत्ति और अनुमानके भेदकी आशङ्कापर आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि साधन सपक्षमें अन्वितमात्र होनेसे साध्यका गमक नहीं है. किन्तु अविनाभावसे अथवा विपक्षमें अन्वित न हो इससे गमकताकी दृढ़ता होती है जैसे अनुमान बना कि बज्रलोह लेख्य है अर्थात् लोहेकी छेनीसे उसपर लिखा जा सकता है पार्थिव होनेसे। तो यहां यह व्याप्ति साध्यावगमनमें समर्थ है कि जो लोहलेख्य नहीं होता है वह पार्थिव भी नहीं होता है। इसमें अन्तर्व्याप्तिका बल है जिससे साध्यसिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि अन्यथानुपपन्नत्व सिद्ध हो तो साधन साध्यका गमक होता है। फिर सपक्षान्वयकी युक्तिसे क्या लाभ है, यदि कहो कि सपक्षानुगम न मानें तो साधन साध्यका कैसे गमक हो। इसका समाधान यह है कि जैसे अर्थापत्तिमें अन्यथानुपपत्तिसे अर्थ अदृष्ट तत्त्वकी सिद्धि करता है। इसी प्रकार साधन भी अन्यथानुपपत्तिसे साध्यका गमक होता है। इस तरह अर्थापत्ति अनुमान ही है।

अविनाभाविताके लक्षणसे अर्थापत्ति और अनुमाममें अपार्थक्य—सपक्षानुगम व अननुगमका अनुमान व अर्थापत्तिमें भेद भी जचता हो तो भी इतनेमात्र से उसमें पार्थक्य नहीं कहा जा सकता है, अन्यथा कोई अर्थापत्ति तो पक्षधर्मसहित होती और कोई अर्थापत्ति पक्षधर्मरहित होती है तो यों ये भी दो प्रमाण अलग अलग हो जावेंगे। पक्षधर्मत्वरहित भी अर्थापत्ति होती है। जैसे नदीपूरको देखकर ऊपर वृष्टि हुईका ज्ञान किया तो यहां जिस क्षेत्रमें वृष्टि है वहा नदीपूर नहीं और जिस क्षेत्रमें नदीपूर है उस क्षेत्रमें वृष्टि नहीं। यहां पक्ष 'ऊपर वृष्टि हुई है" यह तो ऊपर अर्थापत्ति बताने वाला अर्थ याने नदीपूर कहा है। इससे अन्तर्गत सूक्ष्म भेद भी हो तो भी इतने मात्रसे अर्थापत्ति व अनुमानमें भेद नहीं माना जा सकता, क्योंकि, अभाव अविनाभाव वाले अर्थसे अन्य अर्थका ज्ञान होना यह मूल लक्षण अर्थापत्ति और अनुमान दोनोंमें पाया जाता है। यद्यपि सपक्षानुगम अर्थात् दृष्टान्तोंमें साध्य साधनका पाया जाना तथा विपक्षानुपलम्भ अर्थात् विपक्षोंमें साध्य साधनका न पाया जाना भी, अनुमानकी समीचीनताके साधक है तथापि यह सब सुगम अनुगम करनेके लिये विस्तारसे प्रतिपादन है, वास्तवमें तो जहां अन्यथानुपपत्ति पाई जावे वहां अनुमान प्रवृत्त होता है और ऐसे ही अन्यथानुपपत्ति प्रवृत्त होती है। इससे अर्थापत्ति अनुमानसे पृथक् नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

शक्तिके अभावकी आशङ्का—अर्थापत्तिके उदाहरणमें यह बात कही गयी थी कि अग्निको देखकर अग्निकी शक्तिका परिज्ञान करना यह अर्थापत्ति प्रमाण होता है अर्थात् यदि शक्ति न होमी तो यह अग्नि जला कैसे देती ? अग्निमें जला देनेकी शक्ति है, इस अदृष्ट अर्थका ज्ञान अर्थापत्तिसे होता है। इसको सुनकर नैयायक लोग जो कि पदार्थके समूहको कार्यकारी मानते हैं, पदार्थमें कोई शक्ति अलग है यह स्वीकार नहीं करते सो ही नैयायिक लोग यह प्रश्न कर रहे हैं कि आगका स्वरूप तो प्रत्यक्षसे ही समझमें आ रहा है यह है आग। अब उस आगके अलावा कोई उसमें अतीन्द्रिय शक्ति है इस बातको जाननेमें कोई प्रमाण नहीं है फिर अर्थापत्तिमें प्रमाणपना कैसे आ सकता है ? शक्ति कोई विशेष नहीं है, चीज है, चीज मिल गयी तो काम हो गया। उस शक्तिका अभाव कर रहा है यह नैयायक सिद्धान्त। शक्तिके विषयमें नैयायिक लोग अपना मंतव्य रख रहे हैं कि पदार्थमें पदार्थ स्वरूप ही स्वयं शक्ति है। पृथ्वीमें पृथ्वीपनाका ही नाम शक्ति है और उस पृथ्वीपनेके सम्बन्धसे वे पृथ्वी आदिक कार्यकारी होते हैं। शक्ति अलग कोई चीज नहीं है। कई चीजोंके मेलसे कार्य बनता है, उसमें जो अंतिम मेल है वह कार्यकारी होता है। जैसे बहुतसे सूत इकट्ठे हो गये फिर भी उससे कपड़ाका कार्य नहीं बनता जब तक कि अन्तिम तंतुका संयोग न हो जाय। तो अन्तिम तंतुका संयोग होना यही एक शक्ति है। शक्ति कोई अलग वस्तु नहीं है। यह नैयायिक सिद्ध कर रहा है।

सामग्रीसे ही कार्य होनेके हेतुसे शक्तिके अभावकी मान्यता—शक्तिके विषयमें कुछ लोग तो यह मान लिया करते हैं कि शक्ति कुछ अलग वस्तु है, वस्तु कुछ अलग है। जैसे कि आजके विज्ञानमें भी लोग ऐसा कहा करते हैं कि यह पदार्थ है, भौतिक पदार्थ यह अलग चीज है और शक्ति अलग वस्तु है। कोई लोग तो शक्ति को इतना पृथक् मानते हैं और कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि शक्ति न आँखों दिखती है न कुछ नजर आती है। जो पदार्थहै उस पदार्थका जो स्वरूप है, उस पदार्थ का जो भाव है वही शक्ति है। कुछ लोग इस तरह कहते हैं। तो यहाँ शक्तिका अभाव बताने वाले अपना मंतव्य यह रख रहे हैं कि पदार्थका संयोग हुआ जिस तरह पदार्थोंका जुटना शुरू हुआ और उसमें जो अन्तिम बात बनी उससे कार्य बना ही, शक्ति कुछ अलग नहीं है। जब कोई यह पूछेगा कि कार्य होता है और कुछ तथा पदार्थ है और कुछ। जैसे कपड़ा है वह तो है एक दूसरा पदार्थ और सूत तंतु यह दूसरा पदार्थ है। तो एक पदार्थ दूसरे पदार्थकी शक्ति कैसे बन जायगा ? पदार्थका ही नाम यदि शक्ति है, शक्ति कुछ अलग चीज नहीं है तो जैसे कभी हवासे पानी बन जाता है तो एक पदार्थ क्या दूसरे पदार्थकी बिना शक्तिके बन गया ? तो इसके उत्तर में नैयायिक कहते हैं कि यह प्रश्न तो वहां भी रखा जा सकता है जो शक्तिको पदार्थ में मानते हैं और शक्तिसे अभिन्न मानते हैं। जब शक्तिसे अभिन्न पदार्थ हो गया तो पदार्थ कह लो या शक्ति कह लो। कोई अलग चीज तो नहीं रही।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्तिकी अनुपयोगिताका मन्तव्य - कदाचित् यह कहो कि शक्ति उन पदार्थोंका उपकार करती है पदार्थोंके मेलसे कार्य तो बनता है, पर उन पदार्थोंके मेल में एक ऐसी स्पीड आती है, उपकार होता है, वेग आता है कि कार्य होने लगता है। तो यह उपकार शक्तिने किया, अतीन्द्रिय शक्तिके द्वारा शक्तिमय पदार्थका उपकार किया जाता है। तो यहां पूछा है कि शक्तिने जो शक्तिमान पदार्थका उपकार किया वह भिन्न है कि अभिन्न ? यदि भिन्न है तो उपकार करनेवाली शक्ति भी भिन्न है तो उसका भी अन्य शक्तिसे उपकार हुआ, इस तरह अनवस्था दोष आता है। जैसे रसोई बनती है, आग जलाया, बटलोहीमें पानी भरकर व चावल भरकर चूल्हेपर रख दिया तो चालव पक गए तो चावल सब चीजोंका सम्बन्ध रखकर बन गए। अब उसमें शक्तिकी क्या कल्पना करना ? देखते हैं रोज कि किन किन पदार्थोंका मेल करनेसे कौनसा काम बनता है, बनते जा रहे हैं काम। शक्तिकी क्या जरूरत ? ऐसा शक्तिको न मानने वाला सिद्धान्त कर रहा है।

अनुमान प्रमाणसे शक्तिकी सिद्धि-- शक्तिका अभाव मानने वालोंकी शङ्काके समाधानमें आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि तुम शक्तिका अभाव कहते हो तो क्या इस वजहसे शक्ति नहीं मानते कि शक्तिको बताने वाला कोई प्रमाण नहीं है अथवा इस कारण तुम शक्तिको नहीं मानते कि वह शक्ति अतीन्द्रिय है। शक्ति बतानेवाला कोई प्रमाण नहो है, यह बात तो तुम्हारी गलत है क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति अन्यथा बन ही नहीं सकती, इस हेतुसे उत्पन्न हुए अनुमानसे शक्तिका ग्रहण होता है। यदि अग्निमें दाहक शक्ति नहीं होती तो अग्निमें जलानेका काम हो ही नहीं सकता था। एक आग है एक मिट्टीका ढेला पड़ा है। मिट्टीके ढेलेमें जलानेकी शक्ति नहीं है, आग में जलानेकी शक्ति है। मिट्टीका ढेला क्यों नहीं जला पाता ? यह प्रश्न किया जाय तो क्या उत्तर दोगे ? उत्तर यही होगा कि उस मिट्टीके ढेलेमें जलानेकी शक्ति नहीं है तो अनुमानसे शक्तिका सद्भाव सिद्ध होता है।

सामग्रीसे कार्य होनेमें भी शक्तिका चमत्कार यदि यह कहो कि शक्ति की बात ही नहीं है वहाँ, सामग्री कई मिल गयीं उनसे कार्यकी उत्पत्ति हो गयी। ईंधन जल गया, इसमें शक्तिकी कौनसी तारीफ है ? तो उनको समाधान कराया जा रहा है कि हम सामग्रीका निषेध नहीं कर रहे, सामग्री इकट्ठी जुड़ेंगी तब कार्य बनता है यह बात सही है सामग्रीका स्वरूप कार्यकारी है, किन्तु अमुक सामग्री अमुक प्रकार का कार्य करेगी, इसमें व्यवस्था शक्तिसे होती है। ईंधन मिला, आग मिली, तो आग जल गयी, यह ठीक है. रोज रोज देखते हैं, उसका हम निषेध नहीं करते किन्तु आग जलानेके कामका कारण बनता है इसमें हेतु क्या है ? प्रतिनियत सामग्री प्रतिनियत कार्यको करती है इसको अतीन्द्रिय शक्तिका सद्भाव माने बिना नहीं बताया जासकता।

सामग्री होनेपर भी प्रतिबंधक द्वारा शक्तिप्रतिबंध होनेसे कार्यका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अभाव कभी अग्निके पास कोई प्रतिबन्धक मणि रख दिया जाय कि फिर अग्नि जलानेका काम नहीं कर सकती। जैसे लोग किन्हीं समारोहोंपर ऐसा चमत्कार दिखाते हैं कि यह लो जलती हुई धधकती हुई लोहेकी सांकलको भी हाथोंसे खींच रहे हैं फिर भी हाथ नहीं जलता। तो वह करता क्या है कि हाथमें कोई ऐसी जड़ीका रस लगा लेता है कि फिर हाथपर अग्नि भी रखले तो हाथ नहीं जलता ! तो वहाँ अग्नि तो वही है वह जलानेका काम क्यों नहीं कर पाती ? यदि सामग्री मिलकर कार्य किया करती हैं तो सामग्री तो मिली मिलाई है, फिर वहाँ आग क्यों नहीं जलाती ? यों नहीं जलाती कि उस समय जो भी मणि रखी है या जो भी जड़ी बूटीका रस पड़ा है उसने अग्निकी शक्तिमें रुकावट कर दी है। शक्ति माननी पड़ेगी। यदि शक्ति व शक्तिका प्रतिबन्ध न मानोगे तो फिर यह बतलावो कि उस मणिने अग्निका स्वरूप मिटा दिया या सहकारियोंका स्वरूप। अग्निका स्वरूप तो ज्योंका त्यों दिख रहा है ? क्यों नहीं फिर ईंधनको वह आग जलाती ? तो बात वहाँ यह हुई कि उस मणि ने अग्निकी शक्तिका प्रतिबंध कर दिया। सहकारी भी सब मौजूद हैं, ईंधनका संयोग है, धधकती हुई अग्नि पासमें पड़ी है, सब कुछ है फिर क्यों वह आग काम नहीं कर रही है ? यों नहीं कि उस मणिने शक्तिकी रुकावट कर दी।

शक्ति और शक्त्यंशोंका उपलम्भ—पदार्थोंमें शक्ति पड़ी हुई है। जीवमें ज्ञानकी शक्ति है, वह जानता है। ये चौकी आदिक पदार्थ क्यों नहीं जानते, जीव ही क्यों जानते ? अरे, जीवमें ज्ञानकी शक्ति पड़ी है और जीवोंमें भी जो ऐसी विभिन्नताएँ देखी जाती हैं कि अमुक जीव कम और अमुक जीव अधिक जानता है तो वहाँ कौनसा अन्तर आ गया ? एक शक्तिके विकासका अन्तर है। शक्तिमें डिग्रियाँ होती हैं जिसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं, उसके अंश। जैसे बुखारमें अंश पड़े रहते हैं, इसमें १०१ अंशका बुखार है, इसमें १०२ अंशका है। अच्छा बतावो कि किसीके १० अंशका बुखार भी होता है क्या ? ९६ डिग्रीसे कम तो बुखार होता ही नहीं है। ९५ डिग्री बुखार हो या उससे और कम हो तो फिर जीवित ही नहीं रहता। तो यद्यपि किसी ने अंशका बुखार नहीं देखा, ९०–९० अंशका बुखार नहीं जाना लेकिन वह जो १०० अंशका बुखार है उसमें जो इस प्रकारका माप है उसके अंश बन जायें तो एक करके ऐसा १०० अंश बुखार है यह कहा जाता है।

शक्तियोंके लोकदृष्टान्त—दूधमें चिकनाई होती है बकरीके दूधमें कम चिकनाई होती है, गायके दूधमें उससे अधिक, भैंसके दूधमें उससे अधिक और गाड़र के दूधमें सबसे अधिक। तो उनमें अन्तर क्या पड़ा ? चिकनाईका अंश बढ़ गया। और, बताने वाले कहते भी हैं कि इस दूधमें १०० अंश चिकनाई है इसमें १५० अंश चिकनाई है, इसमें २०० अंश चिकनाई है। तो शक्तिके अंश होते हैं। और उन अंशों का विकास जैसे होता है तैसे पदार्थमें कार्य बनता है। शक्तिका लोप नहीं किया जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता है। एक मनुष्य बहुत अधिक बोझ उठाकर फेंक देता है और एक मनुष्य ५ सेर बोझ नहीं उठा पाता, तो क्या अन्तर आ गया ? वह अन्तर है एक शक्तिका। शक्ति सभी पदार्थोंमें हुआ करती है। अभी इस तख्तपर ४ आदमी बैठना चाहें तो बैठ सकते हैं क्योंकि नया है, पर २०–२५ वर्ष बाद जब कि यह घुन जायगा, पुराना हो जायगा तो फिर इसमें दो चार आदमी न बैठ सकेंगे। बैठेंगे तो वह झट टूट जायगा। तो अब क्या हो गया ? इसकी शक्तिमें अन्तर आ गया। शक्तिके अंश कम हो गये। तो शक्ति माने बिना पदार्थ कार्य कर सकेगा यह बात नहीं घटायी जा सकती।

सामग्री होनेपर भी प्रतिबन्धक व उत्तम्भकके सद्भावके प्रभावसे शक्तिकी सिद्धि— पदार्थ हैं और वे निरन्तर परिणमते रहते हैं। उनमें उस प्रकारके परिणमनकी शक्ति पायी जाती है जिससे पदार्थ भिन्न-भिन्न काम कर रहे हैं तो वे सब पुद्गल। भौतिक। उनमें यह बात कही गयी कि यह पदार्थ इस तरहका काम करे, यह पदार्थ इस तरहका काम करे, उनमें उस प्रकारकी शक्ति पायी जाती है। तो केवल इतना माननेसे काम न चलेगा कि चीजें इकट्ठी हो गयीं तो कार्य बन गया, शक्ति नामकी कोई चीज नहीं है। अगर चीजोंके मिलनेसे ही कार्य बन जाता है, उसमें शक्तिकी कोई बात नहीं मानी जाती है तो जब अग्नि धधकती है, ईंधन भी पड़ा हुआ है, यहाँ कोई प्रतिबन्धक मणि वगैरह रख देनेसे उस ईंधनको वह अग्नि क्यों नहीं जलाती ? क्या उस मणिने या उस जड़ी बूटीके रखने उस अग्निका स्वरूप मिटा दिया या उस सहकारीका स्वरूप मिटा दिया ? नैयायिक कहते हैं कि उस प्रतिबंधक मणिने न तो अग्निका स्वरूप मिटाया और न सहकारी का, किन्तु अग्निका स्वभाव ही विकृत कर दिया, इसलिए अब जलानेका कार्य नहीं बनता। जैसे पानी बर्तन आग आदि सभी चीजें इकट्ठी हों तो चावल पक जाते हैं, कार्य बन जाता है। तो जैसे यहाँ सामग्री है इसी प्रकार एक सामग्री यह भी है कि अग्निका स्वभाव मिटाने वाली प्रतिबंधक चीजका अभाव भी हो, वह भी एक सामग्रीमें सामिल है क्योंकि प्रतिबंधक वस्तुके अभाव बिना अग्नि कार्य नहीं कर पाती। तो इस सिद्धान्तने यह कहा है कि जैसे सब चीजें इकट्ठी होती हैं तब कार्य बनता है तो एक कारण यह भी और होना चाहिये कि एक चीजमें बाधा डालने वाली जो दूसरी चीज है, वह भी पास न हो तो कार्य बनता है। तब उनसे पूछा जा रहा है कि ऐसी भी हालतमें कि अग्नि आदिक सब सामग्री हैं और प्रतिबन्धक मणि पासमें रखी है तो अग्नि कार्य नहीं कर पाती। एक मणि यदि उत्तम्भक और पासमें रख दें तो आग कार्य करने लगती है। तो उत्तम्भक मणिके रख देनेपर वह कार्य न होना चाहिए पर होता जरूर है. इससे यह बात बतलाना व्यर्थकी है कि सामग्री इकट्ठी हो जाय यो काम होगा। और सामग्री इकट्ठी मिलनेपर काम तो होता है, पर उस सामग्री में उस प्रकार काम करनेकी शक्ति है तब कार्य होता है। शक्ति न हो तो पदार्थ कार्य करनेमें समर्थ नहीं है।

Report any errors at vikashd@gmail.com

शक्तियोंके कारण पदार्थ व्यवस्था—शक्तियोंका नाम जैन सिद्धान्तमें गुण रखा है. आत्मामें कितनी शक्तियां हैं ? जाननेकी शक्ति, देखनेकी शक्ति, कहीं रमनेकी शक्ति, ये सारी शक्तियां इस आत्मामें मौजूद हैं । पुद्गलमें कुछ अन्य जातिकी शक्तियां हैं, रूपशक्ति है जिससे इसमें रूप उत्पन्न होता है । रसकी शक्ति है, स्पर्शकी शक्ति है, गंधकी शक्ति है इस प्रकार अनेक शक्तियां इस पुद्गलमें हैं और, इन्हीं शक्तियों के कारण यह भेद पड़ता है कि यह अमुक जातिका पदार्थ है । यदि शक्ति न मानी जाय तो सारा विश्व एकान्तात्मक हो जायगा. ये न्यारे-न्यारे पदार्थ कुछ न रहेंगे । ये पदार्थ जो न्यारे-न्यारे समझमें आ रहे हैं, यह रूई है यह मक्खन है, यह आग है, यह पानी है, यह पलङ्ग है. यह पुस्तक है, ऐसी जो न्यारी-न्यारी बातें समझमें आ रही हैं वे इसी कारण तो हैं, ये न्यारे-न्यारे पदार्थोंकी शक्तियां भिन्न-भिन्न हैं, सबका अलग-अलग स्वरूप है सबमें अलग-अलग काम करनेकी शक्ति है ।

पर्यायशक्तिकी प्रकटरूपता—शक्ति पदार्थमें दो प्रकारसे रहती है एक तो शाश्वत शक्ति (ओघ शक्ति) और एक पर्याय शक्ति । जो पदार्थ जिस हालतमें है उस हालतमें जो शक्ति रह सकती है वह उसी हालत तक रहेगी । पर्याय मिटी कि उस प्रकारकी शक्ति भी मिटी । जैसे मनुष्यमें शक्ति नाना प्रकारके हिसाब आदिक काम करने की है और यह ही मनुष्य मर कर यदि पेड़ होगया तो जीव तो वह ही है, क्या वह भी हिसाब किताब लगाता रहेगा, क्या वह भी यहाँ की जैसी व्यवस्थाएँ बना सकेगा ? तो पर्याय शक्ति पर्याय तक रहती है, पर उन सब पर्यायोंमें भी मूलभूत शक्ति पदार्थमें सदा काल रहती है ? न उस तरहकी शक्ति भी रही पेड़में, पर यह शक्ति तो उसमें पायी जाती कि जड़को मिट्टी मिले पानी मिले तो जड़से ही खींच खींच कर वे अपना सारा आहार पानी ले लेते हैं । यह शक्ति मनुष्यमें नहीं है कि पैरोंमें मिट्टी पानी लगा दे तो सारे शरीरमें भोजन चला जाय यह बात इस पर्यायमें नहीं है । तो जिस पर्यायमें जो बात हो सकनेकी है वह बात उस पर्याय तक है ।

उल्टा वृक्ष—अरे देख तो जरा, यह मनुष्य एक उल्टा पेड़ है पेड़ोंकी जड़ें नीचे होती हैं पर मनुष्यकी जड़ ऊपर हैं. जड़ तो एक होती है और उसके बाद फिर शाखायें फूटी हैं । हाथ पैर तो शाखा हैं मनुष्यके, जड़ यह शिर है और वह पद्धति भी देख लो कि पेड़ जड़से आहार लेते हैं तो मनुष्य शिरसे आहार लेते हैं । मुखसे आहार लेते हैं । जो जड़से आहार इस उल्टे पेड़ने भी लिया और सीधे पेड़ने भी लिया । ऐसी ही बातें देखकर चूंकि यह जीव ही ब्रह्मस्वरूप है और जीवोंमें श्रेष्ठ जीव मनुष्य है सो ब्रह्मका स्वरूप कुछ लोगोंने ऐसा बताया है कि इसकी जड़ ऊपर है और नीचे शाखायें हैं वेदका एक वाक्य है कि उस ब्रह्मकी जड़ तो ऊपर है और शाखायें नीचे हैं । यह इसीका ही तो वर्णन है । जीवोंमें श्रेष्ठ जीव मनुष्य है और मनुष्यका आकार ऐसा है कि इसकी जड़ तो ऊपर है जिससे यह भोजन पान करता है और शाखायें नीचे लटक रही हैं ।

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्तिका प्रकट प्रभाव—जिस पर्यायमें जिस प्रकार होनेकी शक्ति है उस पर्यायमें वैसा ही हो सकता है। तो कुछ शक्ति पर्यायके साथ रहती है और कुछ शक्ति द्रव्यमें शाश्वत रहा करती है। शक्तिका लोप नहीं किया जा सकता। इतने बड़े बड़े काम चल रहे हैं। एक यही ले लो—इंजन कितनी बड़ी रेल गाड़ीको खींच रहा है, उसमें जो स्टीम बना है उस स्टीममें इतनी शक्ति है कि इतने बड़े वजनको खींच दे कि जिस वजनको ५० हाथी मिलकर भी नहीं खींच सकते। तो ये सब चीजें शक्तिके चमत्कारकी दिख तो रही हैं, शक्तिका कैसे अभाव किया जा सकता है? कोई धातु परिमाणमें बहुत छोटी है मगर उसमें वजनकी शक्ति, गर्मीकी शक्ति कार्यकी शक्ति अधिक है। कोई कितनी ही धातु वजनके परिमाणमें बड़ी है और उसमें शक्ति कम है तो ये सब पर्यायोंकी अपनी अपनी भिन्न भिन्न शक्तियां हैं।

शक्तियोंका विचित्र प्रभाव उन शक्तियोंमें भी एक दूसरेकी शक्ति मिटा दे, प्रतिबंध कर दे ऐसी भी शक्तिया हैं। अग्निमें जलानेकी शक्ति है, ईंधनको जला देगी। अग्निके पास प्रतिबन्धक मणि रख दें तो अग्नि जल नहीं सकती, और उसके पास उत्तम्भक मणि रखदें तो वह जलनेका काम करती है। एकने शक्ति रोका और एकने शक्ति रोकने वालेको रोका तो कार्य होने लगा। तो यह कैसी विचित्र शक्ति है और यह सारा जगत शक्तिका ही तो खेल है। जितने वैज्ञानिक चमत्कार आज चल रहे हैं—राकेट, बेतारका तार, रेडियो प्रोग्राम, ये सब क्या हैं? सब शक्तियोंका ही जगाना है। तो पदार्थमें ऐसी भिन्न भिन्न अनेक शक्तियां होती हैं, उन शक्तियोंका अनुमान किया जाता है।

अर्थापत्तिका अनुमानमें अन्तर्भाव और अनुमानकी परोक्षरूपता—अर्थापत्ति प्रमाणवादी तो यह कह रहे हैं कि शक्तिका ग्रहण अर्थापत्तिने किया, उसपर जैन शासन यह कह रहा है कि उस शक्तिका ज्ञान अनुमानसे होता, जिसे तुम अर्थापत्ति कहते हो, अर्थात् अगर जलानेकी शक्ति न होती तो आग जला नहीं सकती थी। इस बुनियादपर शक्तिका ज्ञान हुआ तो इसी बुनियादपर तो अनुमान बनता है, इसलिए शक्तिका अनुमान किया गया है। अर्थापत्ति कोई जुदा प्रमाण नहीं है। अभी यहाँ अनेक प्रमाण बताये जा रहे थे कि आगम भी प्रमाण है, अर्थापत्ति भी प्रमाण है, अनुमान भी प्रमाण है, अभाव भी प्रमाण है। सभी प्रमाणोंको कुछ जैन शासन की ओरसे कुछ अन्य शासनोंकी ओरसे बताया जा रहा था। अब उन सब प्रमाणोंको प्रत्यक्ष और परोक्षमें अन्तर्भाव करनेके लिये यह सब बताया जा रहा है कि अमुक प्रमाण अमुकमें अन्तर्भूत होता है और वह परोक्ष है या प्रत्यक्ष? अर्थापत्तिका अनुमानमें अन्तर्भाव है और यह ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं, इस प्रकार ज्ञान सब दो भागोंमें बटे हैं। कोई ज्ञान प्रत्यक्ष है जो कि स्पष्ट जानता है। कोई ज्ञान परोक्ष है जो कि अस्पष्ट जानता है। इस प्रकार आत्माके ज्ञान स्वरूपके विकास इन दो ढङ्गोंमें हो रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शक्तिमान सामग्रीसे कार्य निष्पत्ति---अर्थापत्ति अथवा अनुमान प्रमाणसे पदार्थोंकी शक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक पदार्थ शक्तिमान हैं और उस शक्तिके ही आधारपर पदार्थ कार्य किया करते है, किन्तु नैयायिक लोग पदार्थमें शक्ति नहीं मानते। उनका कथन है कि पदार्थ मिल गये तब कार्य होने लगा। शक्तिके माननेकी क्या जरूरत है। आग ईंधन मिल गये तो जलने लगा। अब उसमें किसी अतीन्द्रिय शक्तिकी क्या कल्पना करना। उनके समाधानके लिते यह बताता गया है कि यदि एक सामग्रीका मिल जाना ही कार्यको करने वाला है, उसमें शक्ति कुछ नहीं मानी जाती तो फिर यह बतावो कि जिस समय अग्निके पास प्रतिबंधक मणि रख दी जाय तो अग्नि कार्य क्यों नहीं करती? प्रतिबंधक उसे कहते हैं जो सब कुछ सामग्री मिल जानेपर भी कार्य न होने दे। जैसे कोई मंत्रवादी मंत्र पढ़कर पदार्थके कार्य करने की शक्तिको न होने दे तो ये सब प्रतिबंधक कहलाते हैं। इसपर उनका उत्तर था कि सामग्रीका मिलना कार्यकारी है तो उसी सामग्रीमें यह भी एक सामग्री कहलाती है कि प्रतिबंधकका वहां अभाव है। तब उन्हें फिर समाधानमें कहा गया कि प्रतिबंधक भी मौजूद है, सामग्री भी मौजूद है और एक उत्तम्भन मणि और रख दी जाय, उत्तम्भक उसे कहते हैं तो प्रतिबंधका अभाव नहीं है, वह मणि भी मौजूद है फिर कार्य क्यों नहीं हो रहा है?

शक्तिके द्वारा ही प्रतिबंधकत्व व उत्तम्भकत्वकी सिद्धि—बात वहां यह थी कि प्रतिबंधक मणिने अग्निकी शक्ति रोकी थी और उत्तम्भक मणिने फिर प्रतिबंधककी शक्ति रोकी तो अग्नि अपना कार्य करने लगी, पर ऐसा न मानकर एक अभावको ही सामग्री माना जा रहा है। इसपर कहा जाता कि चलो अभाव भी एक सपकारी सामग्री सही अब यह तो बतलावो कि प्रतिबंधक वस्तु और उत्तम्भक वस्तु दोनोंका अभाव होनेपर अर्थात् दोनों ही न हों तो अग्नि अपने कार्यको करती है कि नहीं करती? नहीं करती यह तो कह नहीं सकते क्योंकि प्रत्यक्षमें हर जगह देखा जा रहा है कि आग है तो वह रोटी पका देती, चीजोंको जला देती। यदि कहो कि प्रतिबंधक और उत्तम्भक मणि मंत्रके अभाव होनेपर अग्नि अपना कार्य करती है तो उत्तम्भकका अभाव कार्यकारी हुआ या प्रतिबंधकका अभाव या उनमेंसे किसी एकका अभाव या दोनोंका अभाव? यदि कहो कि दोनोंका अभाव कार्यकारी है तो दोनों ही न हों तब कार्य होना चाहिए। पर उत्तम्भक रखा और कार्य हो जाता है। यदि कहो कि एकका अभाव कार्यकारी है तो किसका अभाव कार्यकारी है। यदि कहो कि प्रतिबंधकका अभाव कार्यकारी है तो प्रतिबंधकके होनेपर कार्य क्यों हो गया? यदि कहो कि उत्तम्भकका अभाव कार्यकारी है तो उत्तम्भकका अभाव है और प्रति-बन्धक मौजूद है तब कार्य हो जाना चाहिए। मतलब यह है कि शक्ति सीधा मान लो तो सारा कार्य प्रबंध समस्या सुलझ जाती है। पदार्थमें शक्ति है। उस शक्ति का प्रतिबंध कोई करे, तो कार्य नहीं हो सकता। उस शक्तिका अनुमान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाणसे ग्रहण होता है।

तुच्छाभावमें सहकारीत्वका अभाव—प्रसंग तो यह है अर्थापत्तिका अभाव अनुमानमें बतानेका, किन्तु प्रसंगवश विषय छिड़ गया कि शक्ति वास्तवमें पदार्थमें है अथवा नहीं ? प्रतिबन्धका अभाव कार्यमें सहकारी माना है तो वह कौन सा अभाव सहकारी है ? अभाव होते हैं चार। प्रागभाव प्रध्वंसाभाव. इतरेतराभाव, और एक सर्वथा अभाव। तो प्रतिबंधकका प्रागभाव कार्यकारी यों नहीं है कि फिर प्रतिबंधक हट जानेपर वह तो प्रध्वंश बन गया, फिर कार्य न होना चाहिए। और प्रध्वंसाभाव यों कार्यकारी नहीं कि जब प्रतिबंधक भी न था, प्रागभाव था तब कार्य न होना चाहिए था। इतरेतराभाव तो सदा है चाहे प्रतिबन्धक उत्तम्भक दोनों कहीं हों। जब प्रतिबंधक भी सामने है और उत्तम्भक भी सामने है या भिन्न भिन्न स्थानमें है, इतरेतराभाव तो है ही तो प्रतिबन्धकमें उत्तम्भक नहीं और उत्तम्भकमें प्रतिबन्धक नहीं तब कार्य हो जाना चाहिये या न होंना चाहिए। यह सब व्यवस्था एक शक्ति माने बिना नहीं हो सकती। बात यही सही है कि जहाँ अन्वयव्यतिरेक कार्यके साथ लगा हो वह अभाव वहाँ सहकारी है। और प्रकारसे अभावकी व्यवस्था बन ही नहीं सकती।

शक्तिवैचित्र्यका दर्शन—पदार्थ है उसमें शक्ति है और उस शक्तिका निरन्तर कोई न कोई परिणमन चलता है चाहे उसका कम विकास हो या अधिक निरन्तर शक्ति रहती है और उस शक्तिका विकास भी कुछ न कुछ रहा करता है। शक्ति नहीं है तो पदार्थ भी कुछ नहीं है। पदार्थ क्या अशक्त है। किसी कामके करनेमें सामर्थ्य नहीं है क्या ? काम हो रहे हैं क्या ये सामर्थ्य बिना हो रहे हैं। शक्ति है और उस शक्तिसे ही सारी संसारकी व्यवस्था नीति व्यवस्था, आत्माके परिणमनकी व्यवस्था सब कुछ उसीके आधारपर है। शक्ति न मानने वालो यही बतावो अच्छा कि अग्नि वही है, मनुष्य बहुतसे खड़े हुए हैं, उस अग्निके सम्पर्कमें एक मंत्रवादी किसी पुरुषके प्रति मंत्र पढ़ता है और वह अग्नि उसपर असर नहीं कर पाती शेषोंपर असर कर देती तो यह भेद कहाँसे आया कि वही अग्नि उस ही समय दूसरेको तो जला दे और जिसपर मंत्र किया है उसे न जलाये ? यह भेद कैसे पड़ गया ? यदि सामग्रीसे ही कार्य बने तो सामग्री दोनोंके लिये एकसी है, यह भेद बना क्यों ? कोई पूछे जैन शासन वादियोंसे भी कि तुम बतावो क्यों भेद बना ? भेद यों बना कि वस्तु अनेक शक्त्यात्मक होती है। यदि उनमेंसे किसी शक्तिका किसी पुरुषके प्रति किसी मंत्र द्वारा अगर प्रतिबन्ध कर दिया तो अन्य शक्तिका प्रतिबन्ध तो नहीं हुआ। उसीके प्रति ही शक्तिकी रुकावट की गई है, इस कारण वहां कार्य नहीं करती और और चीजें जला देती है। तो अभाव सहकारी कारण है यह बात नहीं बनती।

शक्त पदार्थसे ही कार्यनिष्पत्ति—अभाव नामक कोई तत्त्व ही नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जितने भी अभाव माने जाते हैं, कहे जाते हैं वे सब किसी वस्तुके सद्भावरूप होते हैं। अभाव कोई तत्त्व नहीं। अगर अभाव वास्तविक चीज हो तो अभाव सामान्य सहित होगा, और जो सामान्य सहित होता है वह द्रव्य होगा या गुण होगा या क्रिया होगी, नैयायिक सिद्धान्तके अनुसार दोषापत्ति की जा रही है। यह बात अयुक्त है कि प्रतिबंधक न हो और सामग्री मिल जाय तो कार्य बन जाता है, उसमें अतीन्द्रिय शक्तिकी अपेक्षा नहीं होती। जहाँ उस ही पदार्थसे केवल कार्य नहीं होता वहाँ दूसरा पदार्थ सहायक होता है। जैसे केवल आग ईंधनको जला देती है पर केवल सूत कपड़ेको नहीं बना देता, उसके लिए अनेक सामग्री चाहिएँ। यह सब असङ्गत है, क्योंकि ऐसा होने पर भी सर्वत्र शक्ति कार्य करती है। अन्यथा यह बतलावो कि सूत तो जो सड़ गया वह भी है पर उससे कपड़े क्यों नहीं बन जाते ? यही तो कहोगे कि अब उस सूतमें ताकत नहीं रही। तो ताकतका ही नाम तो शक्ति है। शक्ति बिना कुछ पदार्थ नहीं है कपड़ा बहुत जीर्ण शीर्ण हो जाय, पकड़ते ही फटने लगे तो फिर वह काममें तो नहीं लिया जा सकता, अथवा कोई कपड़ा जल गया, जलनेपर भी वह मानो कपड़ेकी तरह ही पड़ा हुआ है तो वह काममें तो नहीं लिया जा सकता। उठाते ही वह बिगड़ जायगा, वह तो राख है केवल सकल रह गयी, तो क्यों नहीं उसका उपयोग होता कि उसमें शक्ति समाप्त हो गयी। तो शक्ति बिना पदार्थ कुछ करनेमें समर्थ नहीं है।

शक्तिका अभाव माननेके दुराग्रहमें अदृष्ट व ईश्वरत्वका भी लोप—अगर शक्ति नहीं मानते तो फिर अदृष्ट भी मत मानो। जैसे कहो कि भाग्य (पुण्य) है क्या ? जिसको जो कुछ मिल गया सो मिल गया। महल मिलना आज्ञाकारी पुत्र होना, स्त्री होना, ये सारी बातें हो गयीं ठीक हैं, उसके सिवाय और कुछ अदृष्ट नहीं है, तो अदृष्ट भी न रहा, पुण्यका भी अभाव हो गया और फिर ईश्वरका भी अभाव मान लो। नैयायिक लोग संसारकी सृष्टिमें ईश्वरको कर्ता मानते हैं, कारण मानते हैं, तो आखिर ईश्वर भी तो अदृष्ट है, दिखता भी नहीं, जो कुछ दिख रहा है, जो पदार्थ का पुञ्ज है वह अपने आप कार्य कर रहा है। पानी वर्षा तो जमीन गीली हो गयी, घास उगी, यों सारे काम अपने आप हो रहे हैं, फिर ईश्वर माननेकी क्या जरूरत है, पुण्यके माननेकी भी क्या आवश्यकता है ? यदि कहो कि इसके बिना व्यवस्था नहीं बनेगी तो ऐसी ही शक्तिकी बात है। शक्ति माने बिना कार्यकी व्यवस्था नहीं बन सकती।

शक्तिके अविश्वासमें उद्धार असम्भव—जो कार्य होता है वह अपने विशिष्ट धर्मसे सहित कारणसे ही होता है, केवल सहकारी कारणमात्रसे नहीं होता। जैसे सुख होता तो उसमें पुण्य कारण है पुण्य कर्म बँधा हो, पुण्य भाव किया हो तो सुख हो सकता है, अदृष्ट कारण है। ऐसे ही जितने भी कार्य हैं ये सारे के सारे कार्य सब शक्तिको सिद्ध करते हैं। शक्ति यद्यपि अतीन्द्रिय है, आँखोंसे नहीं दिखती, इन्द्रिय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से नहीं पहिचानी जाती, किन्तु शक्तिका अभाव नहीं है। केवल आँखों ही दिखे, इतना ही तो पदार्थ नहीं है। आगमसे, युक्तिसे, अनुमानसे भी तो जाना जाता है वह भी पदार्थ है। जो शक्तिपर विश्वास नहीं करते उन लोगोंका जीवन धर्म श्रद्धासे दूर रहता है। किसलिए अच्छा काम करें ? जब जैसा होना है हो जाता है। जो शक्तिकी श्रद्धा नहीं रखते उन्हें अविश्वास ही हो जाता है। अपने आपके आत्माकी शक्तिका जिसे विश्वास नहीं है वह नीच घृणित कार्योंसे दूर हो ही नहीं सकता। अरे मैं तो प्रभुकी तरह अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुखका स्वरूप वाला हूँ। मुझमें तो दु:खका नाम ही नहीं है। मेरेमें तो वह सामर्थ्य है कि सर्वविशुद्ध होकर विश्वको जान जाऊँ फिर भी रंच मात्र भी क्षोभ न हो सके। अपनी शक्तिका जहां विश्वास नहीं है वहां यह खोटे कामोंसे हटकर आत्माके हित वाले काममें कैसे लगेगा।

ज्ञानशक्तिके अश्रद्धानमें संसार बन्धन—अनादि कालसे यह जीव कायर स्थितिमें बना हुआ है, कर्म बन्धन चला आ रहा है ये ही ये काम करता चला आया, आहार किया, भय किया, कामसेवन किया, परिग्रहमें तृष्णा किया ये ही काम करता चला आया यह जीव, उससे यह कायर बना हुआ है। इसकी कायरता हटे इसका उपाय अपनी शक्तिका विश्वास है। नहीं है शक्तिका विश्वास तो इस कायरताको कोई दूर नहीं कर सकता। विशुद्ध ज्ञानमें अद्भुत शक्ति है यह जीव अपने ज्ञान-स्वरूप दृष्टि नहीं दे रहा, इसका विश्वास नहीं कर रहा, इसको नहीं अपना रहा तो बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि उलझ जानेसे इसके व्यर्थके सङ्कट बढ़ गए। अपने आपके बारेमें सोचिये कि यह मैं जीव सबसे निराला बिल्कुल अकेला अपने ही स्वरूप सत्त्व रखने वाला अपने आपके परिणमनसे ही परिणमने वाला एक स्वतंत्र पदार्थ हूँ। इस आत्माका किसी भी अन्य जीवसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। बाहरी पदार्थोंका संग तो यह सारा धोखा है।

सब जीवोंमें शक्तिसाम्य—सभी जीव एक समान हैं। किसी जीवका किसी जीवके साथ कोई वैकल्य नहीं है। सभी चैतन्यस्वरूप हैं, सबमें ज्ञान और आनन्द पाया जाता है। सभी जीव रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित हैं। सबमें ज्ञानप्रकाश है। सभी जीवोंका स्वरूप एक है, लेकिन मोहका कैसा अंधेरा छाया है कि यह जीव किसीसे राग करता है और किसीसे द्वेष करता है। किसीको अपना मानता है और किसीको गैर मानता है। अरे ! किसमें राग करना न किसमें द्वेष करना। घरमें बसने वाले जिन दो चार जीवोंसे राग किया जा रहा है वे भी तो वैसे ही जीव हैं जैसे कि जगतके अन्य जीव हैं। स्वरूपकी दृष्टिसे सभी जीवोंमें समानताका भाव लाइये ! उस शक्तिका विश्वास करिये ! वह शक्ति सबमें समान है। चेतना शक्ति, जिसको भूलकर यह जीव अनादिकालसे अब तक चारों गतियोंमें भटक रहा है। जिस चैतन्य शक्तिमें यह स्वयं तन्मय है उस शक्तिका श्रद्धान रखिये ! बाह्य पदार्थोंमें किसीमें भी अपनी रुचि न बनाइये !

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाह्य पदार्थकी रुचिमें संकटविस्तार—भैया ! परमें विश्वास न बनाइये, जो पदार्थ जिसको जितना अधिक प्यारा है वह पदार्थ उसका उतना ही अधिक वैरी है, अनिष्ट करने वाला है। खूब निर्णय करके देख लो, मोहमें लगता है ऐसा कि यह मेरा बहुत प्यारा है। अरे वह प्यारा आपका हित क्या कर रहा है ? आपको कुछ शान्ति दे रहा है क्या ? वह तो आपकी अशान्तिका ही कारण बन रहा है। लोग कहते हैं कि आपका उदय होता है तो कुपूत पैदा होता है। किन्तु यह तो बतावो कि कुपूतसे आपको कुपूत होनेके कारण राग नहीं रहता, उसमें प्रेम नहीं रहता, उससे उपेक्षा हो जाती है। और, कभी कभी तो इतना आप कर सकते हैं कि ऐलान करदें, गजटोंमें प्रकाशित करदें कि मेरा इससे कोई वास्ता नहीं, यह कोई गलत कार्य करे तो खुद जिम्मेदार है। आप देखो सभी सङ्कटोंसे बचे हुए हैं, पर घरमें यदि सुपूत हो जाय बड़ा आज्ञाकारी, कलावान, विनयशील अगर पुत्र उत्पन्न हो जाय तो उस पुत्रके लिये आप जीवनभर कितना कष्ट सहकर पालन-पोषण करेंगे ! आप यह निर्णय बनायेंगे कि हमारी चाहे कुछ भी हालत हो, हम चाहे हीन परिस्थितिमें रह जायें पर इस पुत्र को मैं सर्वोच्च बनाऊँगा। फिर आप उस पुत्रको धनिक बनानेमें, योग्य समर्थ बनानेमें सारे जीवनभर कष्ट सहते हैं। तो कष्टकी दृष्टिसे यह बतलाओ कि कुपूतके कारण आपको अधिक कष्ट भोगना पड़ा या सुपूतके कारण ? कहते हैं कि पापके उदयसे कुपूत हुआ, पर पाप नाम है किसका ? पाप नाम है मोहका ! कुपूतमें आपका मोह ज्यादा नहीं हो पाता और सपूतमें आपका मोह अधिक बढ़ता है तो पाप सुपूतके सम्बन्धमें बढ़ा या कुपूत के ?

अदृष्ट फल—यह वस्तुके स्वरूपकी बात कही जा रही है। संसारका ढङ्ग तो इस प्रकार है कि जिसके पुण्यका उदय है उसकी सेवाके लिये अनेक लोग निमित्त बनते हैं पुण्यका उदय है तो कोई किसी बालकको पैदा होते ही कहीं छोड़ आयें तो भी दूसरा कोई ऐसा मिल जाय जो कि आपसे भी बढ़कर उसकी सेवा करेगा तो इस अदृष्टका पुण्यका (भाग्यका) कौन मना कर सकता है ? यहां जो ये भेद नजर आते कोई श्रीमान है कोई गरीब है, कोई यशवान है, कोई यश रहित है किसीका सम्मान है किसीका अपमान है, इन सब बातोंमें कोई आन्तरिक कारण तो है। और वह आन्तरिक कारण है कर्म। कर्मोंकी विचित्रता है। जिसके जिस ढङ्गका उदय है उसके उस ढङ्गकी व्यवस्था बनी हुई है। जो देश साम्यवादके लानेका प्रयत्न रख रहे हैं उन देशोंमें भी चाहे लूट-मार करके धनकी अपेक्षासे समता बना दे, किसीको न रहने दे धनी, धनिकोंसे छुड़ाकर गरीबोंको बांट दे, परन्तु उस देशमें भी किसीकी इज्जत है, कोई चपरासी है कोई मंत्री है, किसीको सलामी दी जा रही है, कोई सलामी कर रहा है, इस बातको कोई मेट सकता है क्या ? किसी भी देशमें हो अदृष्टको कोई समाप्त नहीं कर सकता, अर्थात् अदृष्टका कोई निषेध नहीं कर सकता। है वह अदृष्ट। हाँ योगीजन उस अदृष्टका विनाश करके भाग्य कर्मसे दूर होकर विशुद्ध परमात्मा बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायें तो यह भी एक तत्त्व है पर शक्ति सर्वत्र है। शक्तिका अपलाप करके पदार्थकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती।

विशिष्ट शक्ति बिना मात्रसामग्रीसे कार्यकी अनिष्पत्ति जो लोग पदार्थोंमें शक्ति नहीं मानते उन्होंने यह भी कहा था कि शक्ति क्या है ? पृथ्वी है उस पृथ्वीमें जो पृथ्वीपना है वही उसकी शक्ति है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तो उनसे पूछा जा रहा है कि देखो मिट्टीका ढेला है वह भी पृथ्वी है, घड़ा बनता है वह पृथ्वी है। कपड़ा बनता है, वह पृथ्वी है। नैयायिक सिद्धान्तमें, जो चीजें ग्रहण की जा सकती हैं रखी जा सकती हैं वे सब पृथ्वी कहलाती हैं। तो जब पृथ्वीका पृथ्वीपना घड़ा बना देगा तो वह पिण्ड कपड़ा क्यों नहीं बन जाता ? कपड़ा भी बन जाय क्योंकि पृथ्वीपरसे कार्य बनता है। कोई भी कार्य बन जाय, कपड़ा बननेमें जो कारण बेम सलाका आदिक हैं वे भी उसके पास रखदें तो क्यों नहीं कपड़ा बन जाता ? यदि कहो कि पृथ्वीपना है, इतना मात्र पृथ्वीको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं, किन्तु तंतुपना सहित पदार्थमें कपड़ा उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य है। तो उनसे कहा जा रहा है कि तंतु तो कोई सड़ा हुआ हो वह भी है, उससे कार्य क्यों नहीं बनता ? यदि कहो कि वह उस अवस्था विशेषसे युक्त हुआ तो कार्य कर सकता है। तो वह अवस्था विशेषका ही नाम तो शक्ति है। शक्ति हो तो उससे कार्य बनता है, शक्ति नहीं है तो कार्य नहीं बनता। जैसे ये तन्तु आदि पुद्गल गल सड़ जाय तो वहाँ कार्यकी क्षमता नहीं रहती इसी प्रकार यह जीव विषय कषायोंसे गल सड़ जाय तो इसमें आत्मीय आनन्द पानेकी या ज्ञान जागृतिकी सामर्थ्य नहीं रहती।

आत्मबलके आश्रयमें कल्याण – आत्मबल किसका नाम है ? अपने आपको ऐसा निरखना कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ, इस ज्ञानस्वरूप आत्मामें किसी भी पर तत्त्वका प्रवेश नहीं है। यह ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व स्वयं अपने स्वरूपमें अपने आप है। इसमें शरीर भी नहीं है, अन्य किसी प्रकारकी वेदना भी नहीं है, यह तो एक भावस्वरूप मात्र है. ऐसा अपनेको केवल ज्ञानमात्र अनुभव करें, इतनी ही मेरी दुनिया है। मैं जानता हूँ इतना ही मेरा अनुभव है। इसको ही मैं भोगता हूँ इससे बाहर कहीं कुछ मैं नहीं हूँ, इस प्रकार ज्ञानस्वरूप अपने आपकी दृष्टि बने उसका नाम है आत्मबल। आत्मबली, पुरुषको कहीं भी अशान्ति नहीं है। किसी शत्रुने मार काट भी कर दी, तिस पर भी उसे अशान्ति नहीं है क्योंकि वह शरीरको अपना स्वरूप ही नहीं समझता। शरीर पर ही तो प्रहार हुआ है, शरीरसे निराला यह एक जीव है और उस जीव तक हो मेरा नाता है, वह जहाँ है वहाँ ही मेरा सब कुछ है। यहाँ जीवन, रहा किसी भी लोकमें चला गया तो वहाँ भी यह मैं हूँ, अपनेको निहारूँगा, अपनेमें रहूँगा तो सब कुछ वैभव वहाँ भी हमें मिला ही रहेगा। जो केवल अपनेको ज्ञानस्वरूपमात्र निरखते हैं वे ही आत्मबली कहलाते हैं और उनके इस सूक्ष्म विवेचक दृष्टिसे समस्त कर्म क्षीण हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाते हैं। विशुद्ध आत्मीय सहज आनन्दके वे अनुभवी हैं। शक्तिका ही सारा चमत्कार है। शक्तिको जो कोई नहीं मानता वह वस्तुके स्वरूपको ही नहीं मान रहा है वह फिर धर्म पालन ही क्या करेगा, मुक्ति मार्गको वह क्या अपनायेगा। उस शक्तिका ग्रहण अनुभवन प्रमाणसे होता है ऐसा यहाँ इस प्रकरणमें सिद्ध किया जा रहा है।

शक्तिशून्यतावादियोंका विकल्प—प्रमाणके भेदोंके प्रकरणमें अर्थापत्ति वादियोंने अर्थापत्ति प्रमाणके समर्थनमें दृष्टान्त दिया था अग्निका। अग्निमें जलानेकी शक्ति है अन्यथा अग्नि जला नहीं सकती। जलानेकी शक्ति अतीन्द्रिय है, आँखोंसे दिखती नहीं है, ऐसी शक्तिका भी ज्ञान होना यह अर्थापत्ति प्रमाण है। इसे जैन शासन ने बताया कि ज्ञान तो सही है, पर यह अनुमान प्रमाण है, अर्थापत्ति अनुमानसे जुदी चीज नहीं है. यदि जलानेकी शक्ति न होती तो यह जला नहीं सकती। जो आग नहीं है, चौकी आदिक है ये जला नहीं रहे, अतः सिद्ध है कि इनमें जलानेकी शक्ति नहीं है, तो शक्तिका परिज्ञान करनेका दृष्टान्त दिया जा रहा था, उसपर शक्तिको न मानने वाले सिद्धान्तोंने शक्तिका खण्डन किया और यह शक्तिके खण्डनमें युक्ति दे रहे हैं कि यह बतलावो कि पदार्थमें जो शक्ति मानी जा रही है वह शक्ति नित्य है या अनित्य? सदा रहने वाली है या होती है मिटती है?

शक्तिको नित्य अथवा अनित्य माननेपर दोषका प्रस्ताव—यदि कहो कि शक्ति नित्य है तो सदा कार्य होते रहना चाहिए क्योंकि शक्ति सदा मौजूद है काम क्यों नहीं होता? और फिर सहकारी करणोंकी अपेक्षा भी न रखना चाहिये क्योंकि सहकारी कारण मिलनेसे पहिले ही कार्य बन गया क्योंकि शक्ति नित्य है। यदि कहो कि शक्ति अनित्य है तो अनित्यके मायने तो यह है कि कभी बनी। जो पहिलेसे नहीं है, अभी बनी है उसका अर्थ है कि अब यह शक्ति बनी। तो शक्ति बनी है तो किसी शक्तिमान पदार्थसे बनी है या अशक्तिमान पदार्थसे बनी है। शक्तिमानसे बनी है तो उसमें जो शक्ति है वह भी किसीसे बनी होगी, यों अनवस्था दोष आ जायगा। यदि कहो कि अशक्तसे बनी तो शक्ति रहित पदार्थसे जब शक्ति बन गयी तो शक्ति माननेकी जरूरत ही क्या है? सीधा पदार्थ कार्य कर लेता है। यही मान लो इस सिद्धान्तने यह बताया में कि चीजें मिली कार्य बन गया। जैसे विज्ञानमें अनेक पदार्थोंका संयोग करके कोई नई चीज बनायी जाती है तो पदार्थोंका संयोग हुआ, नवीन चीज बन गयी तो इसमें शक्तिका क्या काम? ऐसा वह शक्तिको न मानने वाला कह रहा है।

शक्तिकी नित्यानित्यात्मकता—शक्ति तो प्रत्येक पदार्थमें रहती ही है। शक्तिके बिना कार्यबन ही नहीं सकता। उत्तरमें यह कह रहे हैं आचार्यदेव कि शक्ति नित्य है या अनित्य है ऐसा जो तुम प्रश्न कर रहे हो तो किस शक्तिके बारेमें कर रहे हो? पदार्थमें दो तरहकी शक्ति होती हैं एक द्रव्य शक्ति और दूसरी पर्यायशक्ति।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्यशक्ति तो नित्य रहती है सदा रहती है और पर्यायशक्ति अनित्य रहती है प्रत्येक पदार्थ द्रव्य पर्यायात्मक है अर्थात् वह द्रव्य सदा रहता है और उस पदार्थमें प्रति समय नवीन नवीन अवस्थायें बनती हैं। तो द्रव्य शक्ति नित्य ही है क्योंकि द्रव्य अनादि कालसे है, अनन्तकाल तक रहेगा। किसी भी सतका कभी विनाश नहीं होता और न किसी दिनसे उत्पन्न होता है यह भी बात है। तो द्रव्य चूँकि अनादि निधन है, यह द्रव्यका स्वभाव है। द्रव्यका स्वरूप द्रव्यकी शक्ति भी अनादि अनन्त हैं। हाँ, पर्याय-शक्ति अनित्य ही है क्योंकि पर्यायकी आदि है और पर्यायका अन्त है। वस्तुमें जो भी परिणमन होता है वह सब किसी समय हुआ और किसी समय समाप्त होगा। मिट्टीमें घड़ा बना तो घड़ा पर्याय है, वह किसी समय बना और कभी खतम होगा। लोग मकान बनवाते हैं तो वे मकान भी किसी दिन बने हैं तो किसी दिन खतम हो जायेंगे। आज कल तो मकान लिफाफा जैसे बनते हैं, इनकी तो बात ही क्या? जो राजा महाराजावोंके बड़े दृढ़ किले कभी बने थे वे भी आज खंडहर रूपमें दीख रहे हैं, तो आजके ये बने हुए मकान भी १००–२०० वर्ष बादमें खतम हो जावेंगे, गिरकर ढह जावेंगे। तो पर्यायें जितनी भी हैं वे सब अनित्य हैं। तो शक्ति अनित्य है या नित्य है? इसका उत्तर तो यह है कि द्रव्यशक्ति नित्य है और पर्यायशक्ति अनित्य है।

पर्यायशक्तिसमन्वित द्रव्यशक्तिकी कार्यकारिता– शक्ति नित्य होनेसे यह दोष न आयगा कि पदार्थमें सदा कार्य होते रहना चाहिए। उन सहकारी कारणों की उसमें जरूरत न रहना चाहिए। यह दोष इस कारण न आयगा कि शक्ति नित्य तो जरूर है मगर वह शक्ति पर्याय शक्तिसे सहित होकर ही कार्य करने वाली होती है। केवल द्रव्यशक्ति काम नहीं करती। द्रव्यशक्ति जब पर्याय शक्तिसे सहित होती है तब उसमें कार्यकी उत्पत्ति होती है। जैसे मिट्टीमें घड़ा बननेकी शक्ति सदा मौजूद है। जो मिट्टी पर्वतके नीचे पड़ी है उसमें भी घड़ा बननेकी शक्ति है, पर उस मिट्टीको निकाले कौन? बिना उस मिट्टीको निकाले घड़ा न बनेगा मगर उस द्रव्यमें शक्ति तो है, चीज तो है। द्रव्यशक्ति तब कार्य करती है जब पर्याय शक्ति भी मिल जुल जाय। तो विशिष्ट पर्यायमें परिणत जो द्रव्य हो वही कार्य कर सकता है। और, विशिष्ट पर्यायकी परिणति बने यह सहकारी कारणकी अपेक्षासे होता है। याने पर्याय शक्ति उस ही समय होती है जब सहकारी कारण वहाँ मिला–जुला हो।

विशिष्टपर्यायपरिणत द्रव्यके कार्यकारित्वकी सिद्धिमें दृष्टान्त— मिट्टीमें घड़ा बनानेकी शक्ति है पर जब उस मिट्टीको पानीसे गीला किया हो चक्रादिक कुम्हारके हथियार मौजूद हों, उस मिट्टीको चाकपर चढ़ाया गया हो, वे सभी साधन मिले हों तो मिट्टीमें घड़ा बनता है। तो पर्यायशक्ति मिल गई ना, घड़ा बननेकी शक्ति अब आयी है। द्रव्यमें शक्ति तो सदा थी पर पर्यायका सहयोग न मिला था जो सोने की खान हैं उनमें मिलता क्या है? मिट्टी है, और कुछ नजर नहीं आता। वहाँ सोने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के टुकड़े, या सोनेकी छोटी छोटी बूँदें सी या सोनेका ढेला जैसा नहीं होता, वहाँ तो सारी मिट्टी ही मिट्टी दिखती है। उस मिट्टीको लाकर भट्टीमें पकाते हैं, उसका शोधन करते हैं, तब उसमें समझो, कोई दो मन मिट्टीमें एक दो रत्ती सोना निकल आता है। तो पर्यायशक्ति उसमें कब हुई ? जब उसे विधिपूर्वक आंचमें लाया गया, उसकी प्राप्ति की गई। तो पर्यायशक्ति मिले तब द्रव्यशक्ति काम करती है। इसलिए यहाँ दोष देना अयुक्त है कि शक्ति है तो वह सदा काम करे। कार्य करनेका जिसमें सामर्थ्य है, सामर्थ्य तो है, मगर कुछ सहकारी कारण और मिलते तब वह कार्य कर पाते हैं।

शक्त्यपलापवादियोंके अदृष्ट और ईश्वरकी कार्यकारिताकी असिद्धि जैसे अदृष्ट, भाग्य, पुण्य यह सुखको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। पुण्यका उदय हो तब तो सुख मिलता है मगर वह मात्रपुण्य कर्मका उदय आया और सुख मिल गया ऐसी बात तो नहीं है। घर हो, स्त्री हो, बच्चे हों, इज्जत हो, मित्र हों, गोष्ठी हो, ये सभी चीजें हों याने नो कर्म मिले तभी तो सुख मिलेगा। तो उसका सहकारी कारण भी चाहिए यदि नित्य होनेसे सदा कार्य होते माना जाय तो अदृष्ट पुण्य भी सदा सुख पैदा करता रहे। उन साधनोंकी अपेक्षा न रखे और ईश्वर भी सदा समस्त सृष्टि रचता रहे, क्योंकि उसमें सदा शक्ति तो है। नैयायिक मतके अनुसार ईश्वरको वे सदा सृष्टि रचनेमें शक्तिमान मानते हैं अतः उनकी ही बात उनके लिए कही जा रही है कि यदि वह ईश्वर सदा शक्ति रखता है तो फिर उसको सदा सृष्टि करना चाहिए। सहकारी कारणोंकी अपेक्षा फिर व्यर्थ है। इस तरह शक्तिका अवलोप करना ठीक नहीं है।

अपनी शक्तिके मार्गणका ध्यान—शक्ति है उनकी डिग्रियां हैं, उनके अंशों के विकास भी होते हैं जिससे हम यह निर्णय करते हैं कि यह पदार्थ इतना शक्तिवान है यह इतना शक्तिवान है। जैसे हम अन्य पदार्थोंमें शक्तिकी खोज करते हैं इसी प्रकार हम कभी अपने आपमें अपनी शक्तिका खोज करने चलें, ऐसी रुचि जगे कि मैं अपने आत्मा को तो पहिचानूँ, उसमें क्या शक्ति है, क्या प्रताप है, क्या प्रभाव है, इस ओर अपना कदम बढ़े अपनी शक्तिका अनुभव होवे तो समझिये कि यह आत्मा संसारके पञ्झटोंसे सदाकालके लिए छूट जायगा। आत्मशक्तिका विश्वास होना उस ही के बनता है जो संसारके झंझटोंसे छूटकर परम पवित्र बनेगा। मोही जीव तो बाह्य पदार्थोंसे ही अपना हित मानते हैं। उन्हें अपने आपकी शक्तिका कुछ पता ही नहीं है। इसीसे वे अपने आपको कायर अनुभव करते हैं, पर पदार्थोंकी आशा करके उनसे सुखकी भीख मांगते हैं। जरा अपने आपकी शक्तिका कुछ विश्वास तो कीजिए, और अनुभव भी कीजिए। आत्मामें ज्ञानशक्ति मुख्य रखिये उसका ही सारा प्रताप है, ज्ञानकी कला पर ही सुख दुःख आनन्द आदि सब निर्भर हैं। आत्मा ज्ञान शक्तिमान है और इस ज्ञानबलके द्वारा ही वह आत्मा समस्त दुःखोंसे दूर रहा करता है। शक्ति है और प्रत्येक सत्में है। शक्तिके बिना सत्की सत्ता ही नहीं रह सकती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्तिमान्से नव नव पर्यायशक्ति होते रहनेका अनादिप्रवाह शक्तिका विरोध करने वाले सिद्धान्तने कुछ और प्रश्न रखे थे। कहा था कि यह बतलावो कि शक्ति अनित्य है, तो शक्तिकी उत्पत्ति किसी शक्तिमान पदार्थसे होती है या शक्ति रहित पदार्थसे होती है। और उसमें दोष भी दिया था अनवस्थाका और शक्ति रहित पदार्थ से शक्ति बनने लगे तो शक्ति रहित पदार्थका सीधा कार्य क्यों न बनने लगे ? यह दोष भी दिया था, किन्तु यह अवर्णवाद सङ्गत नहीं है, क्योंकि शक्तिकी उत्पत्ति शक्तिमान पदार्थसे ही होती है, पर इसमें भी अनवस्था दोष न आयगा, किन्तु एक अनादि प्रवाह सिद्ध होता है। पूर्व शक्तिमान पदार्थने एक नवीन कार्यके स्थानमें दूसरी शक्तिके द्वारा तीसरा कार्य किया। बीज और अंकुर की तरह अनादिसे चले आ रहे हैं कोई भी सत् अनादिसे शक्तिमान था और वर्तमान शक्तिके द्वारा गुण पर्यायको उसने उत्पन्न किया। तो जो शक्ति जब जब मिले उस शक्तिसे उसके अगले समयकी बात उसने पैदा की। अगले समयकी शक्ति सहित पदार्थने उसके अगले समयकी परिणति बनायी। इस तरह शक्तियोंसे कार्योंकी उत्पत्ति अनादिसे चली आ रही है।

अनादिप्रवाहके कुछ दृष्टान्त - जैसे बीज और अंकुर वृक्ष बीज, बतलावो वृक्षसे बीज बना या बीजसे वृक्ष बना ? दोनों ही बातें हैं। यह बतलावो कि सबसे पहिले क्या था, बीज था या वृक्ष ? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि कहो कि सबसे पहिले बीज था, तो बीज आया कहांसे ? बीज वृक्षसे ही तो आया करते हैं। यदि कहोगे कि सबसे पहिले वृक्ष था, तो वृक्ष आया कहांसे ? बीजके बिना वृक्ष कहां से आया ? पितासे पुत्र हुआ तो वह पिता भी तो किसीका पुत्र था, फिर उसका पिता भी किसीका पुत्र था। यों बापोंकी संतति भी बीज वृक्षकी तरहसे अनादिसे चली आयी है। इसी प्रकार जितने भी कार्य उत्पन्न होते हैं अर्थात् पूर्व पर्याय परिणत द्रव्यसे उस समयकी शक्तिसे कार्य उत्पन्न होता है। जिस समय जिस पदार्थमें जो कार्य उत्पन्न हुआ उस समय उस पदार्थमें जो शक्ति थी उस शक्तिसे हुआ। वह पहिली शक्तिसे हुआ, वह पहिली शक्तिसे हुआ। इस तरह पहिली पहिली शक्तियों से कार्य होता चला आया है वर्तमान शक्ति पहिली शक्ति सहित पदार्थके द्वारा ही प्रकट की गई और वह पहिली शक्ति उससे शक्तिमान पदार्थके द्वारा ही प्रकट की गई। पूर्व पूर्व शक्तियुक्त पदार्थसे उत्तर अवस्था उत्पन्न होती है। इसी तरह आगे भी अनन्तकाल तक पदार्थोंसे कार्य उत्पन्न होता रहेगा।

भेदाभेदैकान्तमें अदृष्ट और ईश्वरकी भी अकार्यकारिता —इस तरह विकल्प करके कि शक्तिमान पदार्थसे शक्ति उत्पन्न हुई या शक्तिरहित पदार्थसे ? यों विकल्प करके शक्तिका जो खण्डन करते हैं वे अदृष्ट और ईश्वरकी बात भी सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ उनसे फिर पूछा जायगा कि अदृष्ट सुखको देता है, पुण्य सुख उत्पन्न करता है तो यह बतलावो कि वह अदृष्ट किसी अन्य अदृष्टसे युक्त आत्माने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पन्न किया, पुण्यवान आत्माने पुण्य उत्पन्न किया या पुण्य रहित आत्माने उत्पन्न किया ? यदि कहो कि दूसरा पुण्य उसके पास था ऐसे पुण्यवान आत्माने पुण्य उत्पन्न किया तो वह पुण्य कहाँसे आया ? वह पुण्य दूसरे पुण्यसे आया, वह पुण्य पहिले पुण्य वानसे आया, इस तरह अनवस्था दोष हो जायगा। अनवस्था नहीं होती है, वहाँ भी परम्परा है, पर यों जो नहीं मानते हैं उनको दोष दिया जा रहा है। यदि कहो कि पुण्यरहित आत्मामें पुण्य उत्पन्न किया तो फिर जैसा मुक्त आत्मा है वह पुण्यरहित है तो वह तो पुण्य नहीं उत्पन्न करता, वह तो धर्ममय रहता है। इस तरह ये संसारी जीव भी पुण्यरहित होकर पुण्य उत्पन्न करने लगे यह बात सम्भव नहीं हो सकती।

पुण्य और धर्मका स्वरूप—देखो पुण्यमें और धर्ममें अन्तर है। पुण्यमें होता है शुभभाव और धर्ममें होता है वीतरागभाव। तीन तरहके भाव होते हैं—शुभभाव, अशुभभाव और वीतरागभाव। विषय भोगनेके भाव, क्रोधादिक करनेके भाव ये तो अशुभभाव हैं। भगवत्‌भक्तिके भाव, जीव दयाके भाव, दान आदिकके भाव ये सब शुभभाव हैं और जहाँ न विषय कषायोंका भाव है न दया, दान आदिक के भाव हैं, किन्तु ज्ञातृत्वमात्र हैं वे सब वीतरागभाव कहलाते हैं। वीतरागभावमें केवल एक ज्ञानमय परिणति है, केवल ज्ञाता द्रष्टा है, जिसमें जानन जाननका ही प्रकाशक भरा हुआ है उसे कहते हैं धर्म। मुक्त आत्मा तो धर्ममय होते हैं, पुण्य पाप भावोंसे रहित होते हैं। इसी प्रकार ये संसारी जीव भी पुण्य रहित होकर पुण्य उत्पन्न कर लें यह कैसे सम्भव हो सकेगा ?

शक्तिके नित्यानित्यैकान्तके दोषका परिहार—शक्ति है और वह नित्य भी है अनित्य भी है और उसमें जो पर्याय शक्ति है वह अनित्य है। इस तरह यदि न मानोगे और यह ही आग्रह करोगे कि नित्य होनेसे सदा कार्य क्यों नहीं होता, शक्ति इसलिये कुछ है नहीं। तो यह बतलाओ कि तुम्हारा महेश्वर जो सृष्टि करने वाला है वह शक्ति रखता है कि नहीं ? फिर सदा सभी कार्य क्यों नहीं कर देता ? एक मनुष्यको १०० वर्षोंमें जो परिस्थिति बनेगी वह एक ही दिनमें क्यों नहीं बना देता ? तो वह सहकारी कारणोंको लेकर कार्य करता है या सहकारी कारणोंको न लेकर कार्य करता है ? सहकारी कारणोंको लेकर यदि वह कार्य करता है तो सहकारी पदार्थमें भी और सहकारी कारण चाहिए। यों अनवस्था दोष होगा और सहकारी कारणोंसे रहित होकर यदि ईश्वर कार्य करता है तो सदा कार्य होना चाहिए। तो जैसे वहाँ तुम यह बतलाते हो कि पहिले पुण्यसहित आत्माने पुन्य उत्पन्न किया उस से सुख हुआ इसी तरह जैन शासनमें भी यही बात है कि पहिले शक्तिमान पदार्थने ही एक नवीन शक्ति वाला कार्य किया फिर वह शक्तिमान पदार्थ नवीन शक्ति वाला कार्य करेगा। यों परम्परा चलती है। तो ये सब तर्क करना कि शक्ति नित्य है कि अनित्य है, शक्तिने क्या किया, यह सब कोरा बकवास है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्तिकी शक्तिमानसे भेद व अभेदका विकल्प—शक्ति बिना जगतमें कुछ भी कार्य नहीं हो सकता। शक्ति न मानने वाले एक ऐसी भी उलझन डालते हैं कि यह बतलावो कि पदार्थ है उसमें है शक्ति तो उस शक्तिसे वह पदार्थ भिन्न है कि अभिन्न है। उस शक्तिसे वह पदार्थ जुदा है या तन्मय है। यदि कहो कि तन्मय है तो एक बात कुछ कहो। या शक्ति या पदार्थ। दो चीजें नहीं रह सकती। यदि कहो कि भिन्न है तो यह शक्ति इस पदार्थकी है इतना भी तुम सिद्ध नहीं कर सकते। जैसे यह चौकी कागजसे भिन्न है तो बतलावो चौकीका कागज है या कागजकी चौकी? अरे चौकी चौकी है, कागज कागज है। दोनों स्वरूप जुदे हैं। इस तरह पदार्थसे शक्ति जब न्यारी मान ली गई तो फिर किसकी शक्ति? शक्ति जुदी चीज है, शक्तिमान पदार्थ जुदी चीज है।

आधुनिक विज्ञानवादियोंके भी शक्तिकी पदार्थसे भिन्नताकी आशङ्का—आजकल के वैज्ञानिक लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि शक्ति एक जुदा तत्त्व है और पदार्थ जुदा तत्त्व है। जैसे नैयायिक सिद्धान्तने माना, ये सब प्राचीन मत हैं, उन्हींको ये वैज्ञानिक भी दुहरा रहे हैं। उनका कथन है कि पदार्थ जब फूटता है, बिखरता है, नष्ट होता है तो उसमेंसे फिर घोर शक्ति उत्पन्न होती है और वह केवल शक्ति शक्ति रहती है, पदार्थ वहाँ नहीं रहता है। यदि ऐसी शक्ति निराधार पदार्थ बिना रहने लगे तो इसका अर्थ है कि शक्ति एक स्वतन्त्र पदार्थ हुआ और परमाणु आदिक स्वतन्त्र पदार्थ हुए। पर ऐसा कहना जैन शासनके अनुसार युक्त नहीं है कि शक्ति जुदी चीज है और पदार्थ जुदी वस्तु है। अभी जरा वे और खोज करें। जैसे वह पदार्थ तो है स्कंध और जो बिखर गए वे सब हैं अणु अणु। अणु प्रमाणकी रचना कोई कर नहीं सकता। न उनके औजार हो सकते न हथियार! स्कंधोंको कुछ छोटा छोटा तो किया जा सकता है किन्तु उन स्कंधोंसे जो वास्तविक परमाणु है, जो निरंश है जिसका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता वह किसी भी प्रयोगसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता। और ऐसा सूक्ष्म परमाणु है, वह शक्तिमान है। शक्ति निराधार नहीं होती।

शक्तिकी शक्तिमानसे भेदाभेदात्मकताकी सिद्धि—यहाँ नैयायिकोंने जो पूछा था कि शक्ति शक्तिमान पदार्थसे भिन्न है अथवा अभिन्न? तो उसका उत्तर यह है कि शक्ति शक्तिमान पदार्थसे कथंचित् भिन्न भी है कथंचित् अभिन्न भी है। शक्तिमान पदार्थमें शक्ति भिन्न यों है कि हमें पदार्थ तो आँखों दिखता है, शक्ति आँखों नहीं दिखती, इससे शक्तिका स्वरूप और है, पदार्थका स्वरूप और है। और वह शक्ति अनुमानसे ग्रहणमें आती है, पदार्थ तो प्रत्यक्षसे ग्रहणमें आ रहा है और पदार्थ में रहने वाली शक्ति अनुमानसे ग्रहणमें आ रही है। इससे शक्तिका स्वरूप और है पदार्थका स्वरूप और है, लेकिन उस शक्तिको शक्तिमान पदार्थसे कभी भी अलग नहीं किया जा सकता। शक्ति एक जगह रख दें और पदार्थ एक जगह रख दें तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो फिर न शक्तिकी सत्ता रहेगी न पदार्थ की। इस कारण शक्ति पदार्थ से अभिन्न है भिन्न और अभिन्न देखनेकी दृष्टियां हैं। इसमें कोई विरोधकी बात नहीं है क्योंकि भेदाभेदात्मकता होना यह पदार्थमें बुद्धिगत होता हुआ है। हम पदार्थको अनेक धर्मों की दृष्टियोंसे जान पाते हैं, अगर दृष्टि हम न लगायें तो सारा व्यवहार खतम हो जायगा।

http://www.jainkosh.org

स्याद्वादसे विवादोंका समाधान—जरा पूछ बैठना चाहिए शक्तिके विरोधी के प्रति कि यह बतावो आत्मा शरीरसे भिन्न है कि अभिन्न ? यदि यह कहोगे कि शरीरसे जुदा है आत्मा तो प्राणीका गला घोंटदे कोई तो हिंसकको दोष न लगनेका प्रसङ्ग होगा, क्योंकि आत्माको तो शरीरसे जुदे ही मान लिया। उस आत्माका क्या नुकसान है ? और, यदि कहो कि हम शरीरसे भिन्न नहीं हैं, शरीर और आत्मा एक हैं तो गला घोटदें तो इसमें आत्माका क्या बिगाड़ है ? अरे तुम्हारा आत्मा तो अमर है। तो किसी भी पदार्थको एकान्तसे कोई धर्म माना जाय तो उसमें विवाद उठता है, स्याद्वादसे उसका समाधान मिलता है कि आत्मा शरीरसे कथंचित् न्यारा है, क्योंकि आत्माका स्वरूप चैतन्य है, शरीरका स्वरूप जड़ है। और, आत्मा शरीरसे कथंचित् न्यारा नहीं है, क्योंकि एक क्षेत्रावगाह है, और परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। तो स्ताद्वादसे शक्ति व शक्तिमानका भी यही उत्तर है कि पदार्थकी शक्ति पदार्थसे कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है। शक्तिका अवलोप नहीं किया जा सकता शक्ति है और उस शक्तिके अनुसार पदार्थ निरन्तर अपना कार्य करता रहता है।

शक्ति और शक्तिमानकी धर्मधर्मिरूपता—चूंकि शक्तिमानसे शक्ति भिन्नाभिन्न है अतः शक्तिके न मानने वाले पुरुषोंका शक्तिलोप करनेके लिये यह उपालम्भ देना भी बेकार है कि शक्तिने शक्तिमानका उपकार किया या शक्तिमानने शक्तिका उपकार किया। इस उपालम्भमें वे इन विकल्पोंसे वातावरण क्षुब्ध कर देते हैं कि किसीने भी किसीका उपकार किया मान लिया जाय तो वह उपकार भिन्न है या अभिन्न है। अभिन्न है तो किया ही क्या वह तन्मात्र ही रह गया। यदि भिन्न है तो अनवस्था दोष हो जायगा। शक्तिमानका यह उपकार है या शक्तिका यह उपकार है इस सम्बन्धको सिद्ध करनेके लिये अन्य उपकारकी कल्पनासे अन्य शक्ति व शक्तिमानकी कल्पना करना पड़ेगी। ये सब शिकायतें यों उपयुक्त नहीं है कि उपकार तो पदार्थका स्वयंका जो परिणमना है वही है। पदार्थ द्रव्यत्वशक्तिके कारण निरन्तर परिणमते रहते हैं। शक्ति कोई स्वतंत्र द्रव्य नहीं हैं जो अन्यान्य उपकारके लिये विकल्पोंका शिकार बने। पदार्थ शक्तिमान है और उसकी शक्तियां पदार्थसे कथंचित् भिन्न है व कथंचित् अभिन्न हैं। शक्ति और शक्तिमानमें भेद और अभेदके माननेमें विरोध और संकरदोष नहीं आता। क्योंकि भेदकी अपेक्षा अन्य है व अभेद की अपेक्षा अन्य है। शक्ति और शक्तिमान पदार्थ भिन्न भिन्न प्रमाण द्वारा ग्राह्य हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस कारण भिन्न है। शक्तिमान पदार्थका जैसे अग्निका तो ग्रहण प्रत्यक्षसे हो रहा है, किन्तु दाहकत्व शक्तिका ग्रहण अनुमानसे हो रहा है। शक्ति शक्तिमानसे अभिन्न यों है कि ये जुदे जुदे प्रदेशमें नहीं है ये दोनों स्वतंत्र सत् नहीं है। एक ही पदार्थमें समझानेके लिये धर्मधर्मीका व्यपदेश किया गया है। शक्तिमान पदार्थ धर्मी है और शक्ति धर्म है, अतः इनका एकत्र न विरोध है और न संकरता है।

शक्तिका एक अनेक विकल्प द्वारा खंडनका प्रयास– नैयायिक सिद्धान्त में कारण सामग्रीके होनेसे कार्य होना बताया है और उसी आधारपर कारक साकल्यको प्रमाण भी बताया गया है। ये शक्ति नहीं मानते तो शक्तिके खण्डनमें वे अपना उपान्तिम विकल्प रख रहे हैं कि पदार्थमें शक्ति एक होती है या अनेक। जैसे आग ईंधन वस्तुको जला देती है और आगमें जलानेकी शक्ति है तो आगमें जो कुछ भी शक्ति है वह शक्ति एक है या आगमें अनेक शक्ति पड़ी हुई हैं? यदि कहोगे कि उसमें शक्ति एक है तो फिर एक साथ उसमें अनेक कार्य न होना चाहिए, जैसे आग जलती है और प्रकाश भी करती है, गर्मी भी लाती है, जलका शोषण भी करती है तो अग्नि जो अनेक काम करती है वह एक शक्ति से कैसे कर सकती है? अगर एक ही शक्ति है तो अनेक कार्य न उत्पन्न होने चाहिएँ। यदि कहो कि उस आगमें अनेक शक्तियां होती हैं तो फिर अपने आपमें उन अनेक शक्तियोंको जो धारण करता है वह अनेक शक्तियों से धारण करेगा। फिर वे अनेक शक्तियाँ कैसी हैं उनको अन्य शक्तियोंसे धारण करेगा, यों अनवस्था दोष आयगा। इस प्रकार ये नैयायिक जन शक्तिका अभाव बतानेके लिए यह आखिरी विकल्प रख रहे हैं कि पदार्थमें एक मानी जाय तो आपत्ति आती है और अनेक मानी जाय तो आपत्ति आती है, इस कारण शक्ति कुछ नहीं है। पदार्थ हैं और वे पदार्थ सब इकट्ठे मिल जुल जायें तो उनमें कोई एक कार्य बन जाता है।

पदार्थमें अनेक शक्तियोंकी सिद्धि— अब शक्तिके एक अनेककी समस्याके समाधानमें आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि शक्ति एक है अथवा अनेक है, ऐसा विकल्प असङ्गत है उसमें दोष देना युक्त नहीं है। पदार्थमें शक्ति एक ही होती है ऐसा नहीं है। पदार्थमें अनेक ही शक्तियां हुआ करती हैं। अनेक शक्तियोंसे सहित कारण हुआ करता है, क्योंकि कार्य अनेक देखे जाते हैं अथवा इस तरह अनुमान कर लीजिये कि ये नाना प्रकारके जो कार्य नजर आते हैं वे अनेक शक्ति युक्त कारण से उत्पन्न होते हैं। क्योंकि ये विचित्र कार्य होते हैं जैसे नाना पदार्थोंके नाना कार्य होते हैं और उन नाना कार्योंसे नाना पदार्थोंकी सिद्धि है इसी प्रकार एक पदार्थके द्वारा भी जो अनेक कार्य देखे जाते हैं उससे यह सिद्ध है कि उस पदार्थमें अनेक शक्तियां हैं। कारण शक्तिका भेद माने बिना ये नाना प्रकारके कार्य नहीं बन सकते हैं जैसे हम एक ही पदार्थमें रूपका भी ज्ञान करते हैं, रस, गंध, और स्पर्श आदिकका ज्ञान करते हैं तो वे गुण चार हैं तभी तो उनका ज्ञान हो रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे एक आमका फल है वही आमका फल देखा तो रूपका ज्ञान हुआ, छुवा तो स्पर्श का ज्ञान हुआ, सूँघा तो गंधका ज्ञान हुआ और चख लिया तो रसका ज्ञान हो गया। तो उस आममें ये चार स्वभाव हैं तभी तो चार प्रकारके ज्ञान बने। उस आममें रूप की शक्ति है, रूप है तो चक्षुसे रूप नजर आया। उस आममें रस-शक्ति है तो रसना इन्द्रियसे रस ग्रहणमें आया। इसी प्रकार गंध और स्पर्श है। तो जैसे ये आममें चार प्रकारके ज्ञान हैं तो चार प्रकारके विषय हैं, चार कारण हैं। जानते हैं तब उनका बोध हुआ। अगर रूपादिक नाना नहीं हैं तो फिर एक चीज बन जायगी। भिन्न भिन्न ज्ञान नहीं हो सकते इस कारण जैसे कि आममें रूप आदिक चार शक्तियां हैं, तत्त्व हैं तब ४ प्रकारके ज्ञान बने। इसी प्रकार किसी भी पदार्थमें जो अनेक तरहके कार्य देखे जाते हैं तो उसमें अनेक शक्तियां हैं।

शक्तिकी अनेकताकी सिद्धिमें कुछ दृष्टान्त—जैसे दीपक जला तो कितने कार्य हुए दीपकसे ? बत्ती जली, तेल सूखा, प्रकाश हुआ, गरमी भी आयी। अनेक काम बने कि नहीं ? तो दीपकमें वे अनेक शक्तियां हैं तब अनेक कार्य बने। कदाचित् यह कहो कि चक्षु आदिक बुद्धिमें केवल रूप आदिक प्रतिभासमें आये हैं सो वे प्रतिभासमें आ रहे हैं तो उस आममें ये चार चीजें हैं, यह कैसे सिद्ध करोगे ? यदि प्रतिभासके कारण वे हैं तो कहते हैं कि यही बात तो प्रकृतमें कही जा रही है। एक प्रदीप तेलको सो सोखना, बत्तीका दाह, पदार्थका प्रकाश आदिक ये जो नाना कार्य कर रहा है इस अनुमानकी बुद्धिमें भी शक्ति है यह प्रतीतिमें आ रहा है फिर उनसे रहित पदार्थको कैसे कहा जाय ? अर्थात् पदार्थ है और पदार्थमें अनेक शक्तियाँ हैं जिन शक्तियोंके कारण पदार्थ नाना प्रकारके कार्य किया करते हैं।

शक्ति माने बिना मात्र सामग्रीसे कार्यकी अनुपपत्ति—यह भी नहीं कह सकते कि आमके रूप रस आदिक तो प्रत्यक्ष बुद्धिमें आ रहे हैं इसलिए वह तो वास्तविक सत है, पर शक्तियां तो अनुमानमें आ रही हैं इसलिए वह सत्य नहीं है। अनुमानमें जो बात आ गयी वह क्या असत्य होती है ? यदि अनुमानकी बात असत्य होने लगे तो कर्म, भाग्य, अदृष्ट, ईश्वर ये सब अदृष्ट हो जायेंगे, क्योंकि ईश्वरको, भाग्यको, अदृष्ट आदिकको प्रत्यक्ष कौन देख रहा है ? ? कार्य देखकर ही उसका अनुमान करते हैं कि हाँ, यह भाग्यका उदय है, न होता भाग्य तो इतना वैभव, इतना समागम, इतना यश ये कैसे मिलते ? तो इसका जो अनुमान किया गया है वह यह सत्य ही तो है। असत्का अनुमान नहीं है। शायद यह कहो कि प्रदीप आदिक द्रव्य तो वह एक है और उसमें सहकारी कारण अनेक हैं, बत्ती है तेल आदि है तो उस सामग्रीके भेदसे जलन शोषण आदिक नाना कार्य बन जाते हैं, पर उनमें शक्तिका भेद नहीं है, स्वभाव शक्तिका नहीं है यह भी बात ठीक नहीं। यों तो रूप आदिक भी कुछ नहीं हैं यह भी सिद्ध कर दिया जायगा। यह कहोगे कि आँखोंसे देखा तो आममें रूप नजर आया,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नासिकासे जाना तो गंध नजर आया और स्पर्शसे छुवा तो उसमें स्पर्श समझमें आया, हैं कुछ नहीं उसमें ये चीजें ? केवल जाननेकी सामग्रीके भेदसे ये भिन्न-भिन्न समझमें आये हैं। तो यों रूप आदिक भी खतम हो जायेंगे। इससे पदार्थमें शक्ति है और वे पदार्थ उन शक्तियोंसे ही कार्य किया करते हैं। उस शक्तिका अनुमानने ग्रहण किया।

मूलमें प्रमाणकी द्विविधताका प्रतिपादन – अर्थापत्तिवादीने यह कहा था कि शक्तिका ग्रहण अदृष्ट अर्थका ग्रहण अर्थापत्तिसे होता है। किन्तु अर्थापत्ति कोई अलग प्रमाण नहीं है, वह अनुमानमें ही अन्तर्भूत है। इस प्रकार जो अनेक प्रमाण बना दिये गए थे अब उन प्रमाणोंको संकोच करके एक लक्षणमें लक्षित करके उन्हें दो भेदरूपमें लाया जा रहा है। प्रमाण दो प्रकारके हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। जो स्पष्ट ज्ञान है वह तो प्रत्यक्ष है और जो अस्पष्ट ज्ञान है वह परोक्ष है। अनुमान अस्पष्ट ज्ञान है इसलिए शक्ति आदिकका ग्रहण करने वाले जो अनुमान हैं वे परोक्ष ज्ञान हैं। अब क्षणिकवादियोंके द्वारा माने गए प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो प्रमाणोंका खण्डन करनेके लिए जो मीमांसक मतके अनुसार अभाव प्रमाण बताया गया था, उस अभाव प्रमाणको बतानेसे पहिले अर्थापत्ति प्रमाणकी एक उपान्तिक बातका खण्डन किया जा रहा है।

अर्थापत्तिपूर्वक अर्थापत्तिका भी अनुमानमें अन्तर्भाव – अर्थापत्तिपूर्वक भी अर्थापत्ति होती है, ऐसा बताया गया था। जैसे शब्दको सुनकर पहिले तो यह जानना कि शब्दोंमें पदार्थको बतानेकी शक्ति है, जैसे घड़ी शब्द बोला तो झट घड़ीका ज्ञान हो जाता है कि यह कहा गया है। तो घ और ड़ी इन शब्दोंमें घड़ी नामक पदार्थको बतानेकी शक्ति है तो सबसे पहले वाचक शक्तिकी अर्थापत्ति की तत्पश्चात् वाचक शक्तिके द्वारा यह जाना कि शब्द नित्य है। अगर नित्य न होते तो इस शब्दका यह अर्थ है इसका यह अर्थ है, यह बात नियत न रहती। ऐसी अर्थापत्तिपूर्वक अर्थापत्तिको सिद्ध किया गया था। वह भी असिद्ध बात है, क्योंकि वाचक सामर्थ्य है शब्द में, शब्द पदार्थोंका ज्ञान कराता है, इतने मात्रसे नित्यपनेके साथ अविनाभाव नहीं बन जाता। नित्यपनेकी बात और है और शब्दने यह ज्ञान करा दिया, यह बात और है। शब्द नित्य होता ही नहीं है, इस बातको आगे भी सिद्ध करेंगे और संक्षेपरूपसे यह जान जायें कि शब्द उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाया करता है। शब्द एक मैटर है, शब्दका घात होता है। मुखके पास हाथ करके बोलो तो बराबर उन शब्दों की चोट लगती रहती है। कमरा बन्द करके भीतर बोलो तो आवाज बाहर नहीं प्रकट हो सकती, भींटसे भिड़ जाती है। और, आजकल तो लोग शब्दोंको रिकार्डमें बन्द करने लगे हैं। क्या है वहाँ असली बात ? यद्यपि कहीं शब्द नहीं बन्द होते हैं, उन शब्दोंके निमित्तसे उस मशालेमें एक प्रकृति बनी है कि वह सूई आदिकका संयोग पाये, यंत्रका सम्बन्ध पाये तो उससे नित्य नवीन-नवीन शब्द प्रगट होते रहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

शब्द नित्य नहीं हैं और अर्थापत्तिपूर्वक अर्थापत्ति भी कुछ हो तो वह भी अनुमानमें गर्भित हो जाती है और उसे यों कह लेना चाहिए कि अनुमानपूर्वक अनुमान है। वह अर्थापत्ति कोई अलग प्रमाण नहीं है।

अभावार्थापत्तिकी मीमांसा—अर्थापत्तिके प्रसङ्गमें एक अभावपूर्वक अर्थापत्ति भी बतलाया। जैसे घरमें किसीने देखकर किसीसे कहा कि देवदत्त घरमें नहीं है, कहीं बाहर गया है तो घरमें नहीं है यह अभाव 'बाहर है' यह ज्ञान कराता है, यह अभावपूर्वक अर्थापत्ति है। जैन शासनके अनुसार प्रथम तो अभाव कोई चीज नहीं है। अभाव नाम है उसका कि जिसमें तुम अभाव देखना चाहते हो तो उस वस्तुसे रहित उस पदार्थका सत्त्व रहनेका नाम अभाव है। जैसे इस कमरेमें घड़ा नहीं है, यह कहा तो घड़ेका अभाव मायने घड़ेके बिना कमरेका रहना, तो कमरेका जो निषेध्याधाराऱूप से सद्भाव है वही घड़ेका अभाव है। निषेध करने योग्य पदार्थके आधारके सद्भावका नाम अभाव है और फिर अभावपूर्वक अर्थापत्ति भी हो तो वह अनुमान है। अनुमानसे बाहर और कुछ नहीं है।

अभावार्थापत्तिके दृष्टान्तका अयोग व अनुमानसे साधन—जैन यह कहा है अर्थापत्तिवादियोंने कि जीवित देवदत्त अन्यत्र है क्योंकि घरमें नहीं है तो यह बतलावो कि घरमें जो जीवव रहता था उसी जीवितपनेसे विशिष्ट घरमें देवदत्तके अभावका विशेषण है या बाहर होनेवाले जीवनसे विशिष्ट देवदत्तके अभावका विशेषण है? तर्क ऐसा होता है कि तर्कमें तर्क उठाते जावो तो वातावरण ही ऐसा बन जाता है कि उसकी सिद्धि नहीं हो पाती। यह पूछ रहे हैं कि घरमें जो जीवित रहता था उस जीवनसे सहित देवदत्त बाहर है या बाहर जो बीवन बन रहा है उस जीवनसे सहित देवदत्तका घरमें अभाव है। यदि कहो कि घरमें जो जीवन था उससे युक्त देवदत्तका बाहर सद्भाव सिद्ध किया जा रहा है तो यह बात तो अयुक्त है क्योंकि घर में जो जीवन है उस जीवन सहित तो बाहर नहीं है। बाहर जो जिन्दा है वही उसका जीवन है। घरमें रहते हुए जीवनका घरमें अभाव है यह बात तो वचनविरुद्ध है और फिर जीवनकी सत्ता उसमें किससे जानी गयी? जिससे जानी गई उसीसे देवदत्त जाना गया। अभावपूर्वक अर्थापत्तिका जीवन किस प्रमाणसे ज्ञात है? उस जीवनकी सिद्धि यदि अर्थापत्तिसे मानें तो उसमें अन्योन्याश्रय दोष है। अर्थापत्ति सिद्ध हो तो उसका जीवन सिद्ध हो, जीवन सिद्ध हो तो अर्थापत्ति सिद्ध हो। इतना भी नहीं सिद्ध कर सकते कि देवदत्त घरमें नहीं है, इसलिए बाहर है। यह भी स्याद्वादका सहारा लिए बिना सिद्ध नहीं किया जा सकता है। यदि कहो कि हम निश्चित जीवनकी बात नहीं कह रहे। हम यह कह रहे कि यदि घरमें न रहता हुआ देवदत्त जीवित है तो जीवित देवदत्त अन्यत्र है। तो ये सब अर्थापत्तियां संदेह युक्त होनेसे कोई स्वरूप नहीं रखती, न प्रमाण है किन्तु यदि अविनाभाविता है जिस किसी अर्थापत्तिमें तो

Version 1

वह अनुमान है। यहाँ अनुमान बनता कि जीवित देवदत्तका उस घरमें अभाव होनेसे उसका बाहरमें सद्भाव न होता तो घरमें इस जीवित देवदत्तका अभाव भी न होता। इसमें प्रतिज्ञा हेतु आदिक सभी चीजें आती हैं तो यह अनुमान तो बना, पर अर्थापत्ति नामका कोई प्रमाण नहीं है।

अपने ज्ञानके प्रकारोंका दर्शन – यह सब अपने ज्ञानकी बात चल रही है। आत्मा सभी ज्ञानस्वरूप हैं और सबका ज्ञान पदार्थोंको जानता रहता है। कुछ प्रत्यक्षसे हम आप जानते हैं। आंखों देखें, कानोंसे सुनें सब प्रत्यक्षसे भी जानते रहते हैं, कुछ बातें हम परोक्ष भी जानते रहते हैं। जैसे हमने पहिले जानी हुई चीजोंका ख्याल किया तो यह भी तो ज्ञान है, हम दो चीजोंकी तुलना कर रहे हैं। यह इससे भिन्न है, यह इससे अभिन्न है, यह इसके समान है, यह इससे असमान है, यह वही है, यह वह नहीं है, ये सब ज्ञान हो रहे हैं ना ! हम कोई तर्क और युक्तियां भी देते रहते हैं। यदि ऐसा है तो यों होगा, ये सब विज्ञान चलते हैं। तो हम आप सब लोगोंके ये ज्ञान चलते रहते हैं, इन्हीं ज्ञानोंका स्वरूप बतलाया जा रहा है कि किस ज्ञानका क्या स्वरूप होता है ? प्रत्यक्षज्ञान कौन कहलाता और परोक्षज्ञान कौन कहलाता ? ये सब ज्ञान करके हम अपने ज्ञानके स्वरूपका निर्णय बनाते हैं। विस्तृत रूपसे जाननेसे प्रयोजनभूत बात भी बहुत स्पष्ट जान ली जाती है। जैसे, किसी मित्रसे कोई काम कराया तो जितना काम कराना है उससे अधिक ज्ञान उस चीजका वह रखता हो तो अच्छे ढङ्गसे उस कामको वह कर लेगा और जितना काम कराना है उतना ही सिर्फ ज्ञान वह रखता है तो उस कामको अच्छे ढङ्गसे वह न कर पायगा। विशेष ज्ञान जहां है उसका प्रयोजनभूत सामान्यज्ञान स्पष्ट रहा करता है। तो हम अपने आत्माके ज्ञान स्वरूपका यथार्थ निर्णय करें इसके लिये यह भी आवश्यक है कि हम इन ज्ञानकलावोंको भी जानें कि ज्ञान किस किस प्रकारसे अपनी कलासे जाना करता है।

अपना स्वरूप दु:खका अकारण—मूलमें तो ज्ञान एक जाननेका काम करता है, इसमें और कोई ऐब नहीं है, पर देखा यों जा रहा है और लोग यों सोचते हैं कि आत्मा यदि जानता न होता कुछ तो इसको कोई दु:ख न था। यह जानता है इसलिए इसमें दु:ख आते हैं। ये चौकी मेज आदिक पदार्थ कुछ नानते नहीं तो इनको दु:ख भी कुछ नहीं होता। इस प्रकारकी कल्पना करना उनका एक अज्ञान है। जानने से दु:ख नहीं होता, जानना तो एक उत्कृष्ट तत्त्व है, मान लो कि जगतमें कोई जानने वाला पदार्थ यदि न होता और सारे पदार्थ यों ही पड़े रहते तो कोई जगतकी व्यवस्था भी थी क्या ? इस जाननहार आत्माके कारण पदार्थकी व्यवस्था भी ज्ञात है पदार्थ भी है फिर पदार्थ किसलिए होता है ? जानना दु:खके लिये नहीं होता। जाननेके साथ जो राग द्वेष मोह लगे हैं वे दु:खके लिए हैं। अरहंत सिद्ध परमात्मा तो समस्त लोकालोकको जानते हैं उनको क्या क्लेश है ? तो जाननेसे कोई क्लेश नहीं होता है,

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मोह रागद्वेषसे क्लेश होता है। जब कभी सड़कसे आप जाते हैं तो रास्तेमें सैकड़ों हजारों लोग मिलते हैं तो किसीको देखकर आपको कष्ट तो नहीं होता ? और, यदि कोई अपना आदमी मिल जाय, जिससे राग हो वह यदि लंगड़ाता हुआ आ रहा है तो उसे देखकर आप झट व्याकुल हो जाते हैं. और चाहे बहुतसे लंगड़े आते जाते दिख जायें पर उनको देखकर आपको क्षोभ नहीं होता तो क्षोभ जाननेसे नहीं होता, किन्तु रागसे होता है। तो अशान्ति मेटनेके लिए यह कल्पना न करिये कि जानना मिट जाय ऐसी विधि बनाइये कि ये रागद्वेष मिट जायें !

मोहकी दुःखकारिताका एक दृष्टान्त—एक दृष्टान्त दिया गया है राज-वार्तिकमें कि एक पुरुष किसी दूसरे गांव जा रहा था तो उसने यह देखा कि एक १० वर्षके बालकको हाथीने अपनी सूँडसे पकड़कर फेंक दिया और वह बालक मर गया। उस मनुष्यका भी १० वर्षका बालक उसीकी सकलसे मिलता जुलता था, तो उसको भ्रम हो गया कि यह मेरा ही बालक है जो मर गया। तो ऐसे भ्रमके बाद वह एकदम बेहोश होकर गिर पड़ा। उसको बेहोश हालतमें गिरता देखकर एक व्यक्ति उसके निकट गया। वह मनोविज्ञानका कुछ अधिकारी था तो यहाँ वहाँ देखकर सामनेकी उस बालक वाली घटनाको निरखकर उसने यह जान कि इसको अपने पुत्रका शोक हुआ है, इसको यह शङ्का बन गयी है कि मेरा पुत्र गुजर गया। क्योंकि वह मर जाने वाला बालक भी इसीकी सकलका व इसीकी उमरका है। तो उसने उसकी बेहोशी मिटानेके उपायमें सर्वप्रथम यह उपाय किया कि झट उसके घर खबर भेज दी और कहा कि उस बालकको झट लावो ! वह बालक आ गया। वहां उपचार भी किया जा रहा था थोड़ा उपचारसे उसे शान्ति मिली और आँखें जहाँ खोली तो सामने उसका बालक खड़ा मिल गया। तो उसका भ्रम दूर हो गया। समझ गया कि जो लड़का मरा है वह मेरा नहीं है। मेरा तो यह है। उसकी बेहोशी सब समाप्त हो गयी। तो उसे जो दुःख हुआ था वह लड़केके मरनेसे दुःख न हुआ था किन्तु यह मेरा लड़का है जो गुजर गया, इस प्रकारका जो राग भाव था उस राग भावसे उसे क्लेश हुआ।

रागकी क्लेशमूलताकी घटनायें—रेलगाड़ीमें मुसाफिरी करते हुएमें उसी डिब्बेमें किसीसे थोड़ा स्नेह हो जाय बोल-चालसे तो क्या होता है कि जब उसपर कोई दूसरा व्यक्ति किसी बातसे गुस्सा होता है तो वह मुसाफिर भी खेद मानने लगता है। अरे उससे उसका कुछ लेन देन नहीं, कोई बात नहीं, थोड़ी देरके लिए एक साथ बैठे हुए हैं पर व्यर्थमें वह व्यक्ति उसके पीछे दुःखी होता हैं। तो वह चूँकि उसके प्रति राग भाव बना लेता है, इसलिए दुःखी होता है। किसी लड़का-लड़कीका सम्बन्ध निश्चित् हो जाय, सगाई हो जाय, तो यद्यपि अभी सम्बन्ध नहीं बना, सगाईके बाद भी बात छूट सकती है लेकिन सगाई होते ही अपनी आत्मीयताकी कल्पना हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैठी कि यह मेरा सम्बन्धी है, यह मेरा घर है, अब वहाँ कोई आपत्ति आये तो यह भी दु:खी होने लगेगा। और, सगाई–सम्बन्धसे पहिले कोई आपत्ति न मानता था। तो जाननेमें दु:ख नहीं है किन्तु उसके साथ जो रागभाव लगा है उस रागभावके कारण दु:ख है। तो दु:ख मिटानेके लिए ज्ञानबल बढ़ाना चाहिए जिससे रागद्वेष मोह दूर हो, यह शान्तिका उपाय है।

क्लेशविनाशमें भेदविज्ञानकी साधकतमता—रागद्वेष मेटनेके उपायमें एक भेदविज्ञान ही खासा उपाय है। हम सब पदार्थोंको भिन्न–भिन्न पहिचान लें फिर रागद्वेष मोह न रहेंगे। यह मैं आत्मा इन सब आत्मावोंसे अत्यन्त निराला केवल अपने ही गुणपर्यायमें रहने वाला हूँ। मेरा किसी भी जीवसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं आत्मा अपने परिणमनोंको ही करता रहता हूँ, मुझमें किसी अन्य जीवका सम्बन्ध नहीं है। जब भेदविज्ञान हो तो इस ज्ञानके प्रतापसे स्वयं ही राग उसका हट जायगा, मोह तो हट ही जायगा। अज्ञान तो रहेगा ही नहीं। ज्ञान तो यथार्थ जग गया कि सर्व पदार्थ अपने अपने स्वरूपसे सत् बने हुए हैं। कोई किसीकी सत्ता बनाता नहीं है, तो यह स्वातन्त्र्यका परिज्ञान होते ही मोह दूर हो जाता है। मोह दूर हुआ कि उसके सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं। सभी क्लेश मोहके आधारपर निर्भर हैं। जो परपदार्थ हैं उन्हें मानना कि ये मेरे हैं यह महान अज्ञान है। अरे मैं मैं हूँ, ये ये हैं, मेरा कहीं कुछ नहीं है, तो ऐसा ज्ञान जगे जिससे मोह दूर हो जाय तो वह ज्ञान इस जीवका उद्धार कर सकने वाला है, तो ज्ञानबल बढ़ानेका उपाय करना चाहिए कि जिससे हमारे सारे क्लेश शान्त हो जाएँ। उस उपायमें सर्वोपरि उपाय भेदविज्ञानका है। भेदविज्ञान वस्तुस्वरूपके ज्ञानसे जगता है, इससे वस्तुके स्वरूपको बताने वाले शास्त्रका हम ज्ञान बढ़ायें और सम्यक्त्व प्राप्त करें तो इस सम्यक्त्वके प्रतापसे ही हम संसारके समस्त क्लेशोंसे मुक्ति पा सकते हैं।

अभावप्रमाणवादियोंके प्रति निषेध्याधारमें निषेध्यसे संसृष्ट या असंसृष्ट होनेका विकल्प—जैसे आँखोंसे निरखकर वस्तुको हम जान लेते हैं कि यह चौकी है, पुस्तक है आदि, तो उसे हम प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, इसी तरह किसी चीज का अभाव हो, कोई वस्तु न हो और "वहाँ यह नहीं है" ऐसा ज्ञान किया जाता है तो वह अभावज्ञान कहलाता है। अभावप्रमाणवादी इस अभावको अलग एक प्रमाण मानते हैं। उन्होंने यह बताया था कि जिस चीजका निषेध करते हैं, जिस चीजका अभाव बताते हैं, उसकी जो आधारभूत वस्तु है उसका ग्रहण होनेसे अभावज्ञान बनता है और वह तीन प्रकारसे उत्पन्न होता है आदिक जो कुछ बताया उसके सम्बन्धमें उनसे पूछा जा रहा है कि तुमने जो यह जाना कि यहाँ घड़ा नहीं है तो निषेध हुआ घड़े का, घड़ेका हम यहाँ अभाव बताना चाहते हैं, उसकी आधारभूत वस्तु हुई यह जमीन, यह फर्श, यह कमरा, सो इस वस्तुके ग्रहणमें अभावका ज्ञान हुआ, तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निषेधका आधारभूत भूतलका जो ग्रहण है वह प्रतियोगी घटसे न छुआ हुआ भूतलका ज्ञान हुआ या घटसे सहित जमीनका ज्ञान हुआ ? इन विकल्पोंका स्पष्ट भाव यह है कि हम जिस कमरेमें जाकर वहाँ घड़ा नहीं देखते हैं और कहते हैं कि यहाँ घड़ा नहीं है ! तो क्या देखकर तुमने कहा ? जमीन देखकर ही तो कहा । तो वह जमीन घड़ेसे छुई हुई देखी या घड़ेसे बिना छुई हुई देखी ?

निषेध्यसंसृष्ट निषेध्याधारकी असंगतता – घड़ेसे सहित जमीन देखकर यह कहा कि वहाँ घड़ा नहीं है तो यह स्ववचनविरुद्ध बात है । घड़ेसे सहित जमीन देखा और फिर कहा कि घड़ा नहीं है तो प्रतियोगीके सम्पर्कसहित आधारको देखकर अभावज्ञान तो बनता नहीं और फिर भी अभावज्ञान जबरदस्ती मानें तो वह प्रमाणभूत नहीं है । जैसे दरी सहित कमरेको निरखकर कोई कहे कि वहाँ दरी नहीं है, तो इसे कौन मान लेगा ? इससे जिस चीजका निषेध करना है उस चीजसे सहित आधारका ग्रहण नहीं हो सकता ।

निषेध्यासंसृष्ट निषेध्याधारमें अभावप्रमाणकी असिद्धि – यदि यह कहो कि उस चीजसे रहित आधारका ज्ञान हुआ अर्थात् घड़ा न था, घड़ेसे सहित कमरेका ज्ञान हुआ, फर्शका ज्ञान हुआ तो यह बात तो प्रत्यक्षसे ही जान ली । घड़ा नहीं हैं, यह जमीन है यह तो प्रत्यक्षसे ही जान लिया, फिर अभाव प्रमाण माननेकी क्या आवश्यकता रही, क्योंकि प्रत्यक्षसे ही उस प्रतियोगीका अभाव जान लिया गया । घड़ा नहीं है यह आंखोंसे देख लिया, फिर उसमें एक अलग अभाव प्रमाण मानना यह तो व्यर्थ है । बात यहां यह कही जा रही है कि जैसे यह ज्ञान समक्ष रहने वाले पदार्थको प्रत्यक्षसे जान लेता है इसी प्रकार यह ज्ञान प्रत्यक्षसे ही अभावको जान लेता है । जहां आंखोंसे निरख करके अभाव बताया वह प्रत्यक्ष ज्ञान है । अभाव नामका कोई अलग प्रमाण नहीं है आप अपने ज्ञानसे रोज रोज यह सब काम लेते रहते हैं उस ही ज्ञानकी बात कही जा रही है कि आप ज्ञानसे किस तरहका काम लिया करते हैं । और वह किस किस्मका ज्ञान होता है । तो ये दो विकल्प करके अभावका खण्डन किया है । घड़ेसे छुवा हुआ कमरा नहीं जाना गया और घड़ेसे न छुवा हुआ कमरा सीधा प्रत्यक्षसे जान ही लिया, फिर अभाव प्रमाण माननेकी आवश्यकता नहीं रही ।

प्रतियोगीसे असंसृष्ट आधारकी साधनामें प्रश्नोत्तर— शायद यह कहो कि घड़ेसे न छुवा हुआ यह कमरा है ऐसा ज्ञान तो घड़ेके अभावके प्रमाण द्वारा जाना गया है तो पूछते हैं कि वह भी अभाव प्रमाण अन्य प्रतियोगीसे न छुए हुए वस्तुके ग्रहणसे जाना जायगा और वह वस्तुसे नहीं छुवा हुआ है । प्रतियोगीसे रहित है यह अन्य अभावसे जाना जायगा तो यह अनवस्था दोष होगा । अगर कहो कि जिस अभाव प्रमाणसे घड़से न छुई हुई यह भी जान लिया गया तो इसमें इतरेतराश्रय

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दोष होगा। जब घड़ेसे न छुई हुई जमीन है वह जाने तो अभाव ज्ञान बने। जब अभावज्ञान बने तो यह जमीन घड़ेसे असंसृष्ट है यह ज्ञान बने। तो अभाव प्रमाण कोई स्वतंत्र प्रमाण नहीं है किन्तु प्रत्यक्षज्ञानकी ही वह एक किस्म है। कोई कोई अभाव ज्ञान अनुमानसे भी बनता तो वह अनुमानमें गर्भित हैं। जैसे यह अनुमान किया कि इस चौकीमें जलाने की शक्ति नहीं है, चौकी किसी अन्य पदार्थको जला नहीं सकती, उसमें दाहक शक्तिका अभाव है क्योंकि यह किसीको जलाती नहीं है। तो इसमें दाहक शक्तिका जो अभाव जाना वह प्रत्यक्षसे तो नहीं जाना, अनुमानसे ही जाना। तो अभाव जिन–जिन प्रमाणोंसे जाना जाय उन–उन प्रमाणोंरूप है। अभाव कोई स्वतंत्र प्रमाण नहीं है।

अभावप्रसंगमें प्रतियोगीके स्मरणमें आशंकित विकल्प— अभाव प्रमाण वादी यह विधि बतला रहे थे कि जिसका अभाव बताते उसके आधारका तो ग्रहण होता है और जिसका अभाव बताते उसका ख्याल होता है। तो अभाव ज्ञान होता है। व्यवहारमें ऐसा लगता भी है लेकिन वह सब प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोंसे बन जाता है। कोई अलग अभाव प्रमाणकी जरूरत नहीं रहती। तो प्रतियोगीके स्मरणकी जो बात अभावप्रमाण वादियोंने कही थी सो पूछा जा रहा है कि प्रतियोगीका स्मरण अर्थात् जहां नहीं है तो उस घटका जो स्मरण है वह जमीनको छुए हुए घटका स्मरण है? यदि घटमे सहित जमीनका स्मरण है तो अभाव प्रमाण बन ही नहीं सकता। घड़ा तो मौजूद है। यदि न छुए हुएका स्मरण है तो अनवस्था दोष और इतरेतराश्रय दोष आते हैं।

अभावकी वस्त्वन्तरसद्भावरूपता – हम सीधे ही जल्दी ही बता देते हैं कि ये ये चीजें हैं या नहीं? उसमें कोई तर्क नहीं निकलता। किसीने कहा कि जरा देखो अलमारीमें समयसार ग्रन्थ रखा है, उठा लावो! अलमारी खोला तो वहां एक भी पुस्तक न थी। वह कहता है कि यहां समयसार ग्रन्थ नहीं है। देखकर ही तो बताया तो वह अभाव प्रत्यक्षमें अन्तर्गत हुआ। अभाव तुच्छ अभावरूप नहीं हुआ करता। कुछ नहीं का, केवल न का ज्ञान नहीं हुआ करता यह मनुष्य, किन्तु उस पदार्थसे रहित वस्तुका ज्ञान हुआ करता है। न दो प्रकारके होते हैं—एक शून्यरूप और एक दूसरेके सद्भावरूप। जैसे चौकीपर दो तीन किताबें रखी हैं और किसीसे कहा कि तुम 'जिनवाणीसंग्रह' मत लाओ! तो उसका अर्थ यह निकल सकता है कि और सब किताबें ले आवो! यह भी अर्थ निकलता है कि कुछ भी मत लावो! तो न के दो अर्थ हुआ करते हैं। यहां न का अर्थ सद्भावरूप है। किसी भी वस्तुका अभाव कहा जाय तो अन्य वस्तुके सद्भावरूप अभाव पड़ेगा उस वस्तुका प्रत्यक्षसे ज्ञान होता, अनुमान आदि से ज्ञान होता। इसलिए अभावका ज्ञान कराने वाला कोई अलग प्रमाण नहीं है। यह ज्ञानविलासकी ही बात चल रही है, कोई अन्य पदार्थकी बात नहीं है, यह खुदकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बात है। हम स्वयं जानते हैं तो किस ढङ्गसे जानते रहते हैं। http://www.jainkosh.org जानते सब हैं। यह अभावज्ञानकी भी बात सबपर गुजरती है। छोटे बच्चेसे लेकर बड़े तक भी इस ज्ञानका उपयोग करते हैं। पर वह ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता है और उसकी पद्धति क्या है, स्वरूप क्या है। उसका तो ज्ञान सब नहीं कर पाते। उस ही स्वरूप को यहां बताया जा रहा है। अभाव प्रमाण अलग नहीं है, किन्तु प्रत्यक्षसे ही हम जान जाते हैं कि अमुक चीज यहाँ नहीं है।

अभावप्रसङ्गमें प्रतियोगिस्मरणकी मीमांसा अभाव प्रमाणवादी कह रहे हैं कि भाई पदार्थको प्रत्यक्ष कर लेनेपर भी जिस चीजका हमें अभाव बताना है, अमुक चीज नहीं है ऐसा बताना है, उस चीजका स्मरण तो होता ही है। यदि घटका स्मरण न हो तो कोई यह नहीं कह सकता कि यहाँ घट नहीं है। इसलिए प्रतियोगी का स्मरण होता है, उसका फिर ज्ञान हुआ वह अभाव ज्ञान है, तो आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि जिसका भी स्मरण होता है उसका स्मरण होता है तब जब कि वह अनुभवमें आये। जिन जिन वस्तुवोंका ख्याल करते हैं उन वस्तुवोंका ख्याल आपको तभी आयगा जब उनको हमने कभी देखा है, जाना है। जो चीज आज तक जानी नहीं गई उसका कौन स्मरण करता है। तो अभावमें आप प्रतियोगीका स्मरण बतला रहे हैं तो प्रतियोगी भी प्रत्यक्षमें आकर स्मरणमें आ सकेगा। तो प्रतियोगीका जो अब स्मरण हो रहा है वह अन्य वस्तुसे सहितका हो रहा है या रहितका। इसमें भी वही सब विडम्बना समझलो, अनवस्था और अन्योन्याश्रय दोष है। अभाव किसी स्वतंत्र अभाव प्रमाणसे नहीं जाना जाता। सीधा जान लेते हैं है तो "है' जान लिया देखकर, नहीं है तो 'नहीं" जान लिया।

सर्वथा अभावके अवगमकी असंभवता—अभाव अन्यके सद्भावरूप हुआ करता है। क्या कोई ऐसे भी अभावको जानता है कि जहां किसी वस्तुका ज्ञान कुछ भी नहीं हां कुछ भी सत्पदार्थ विकल्पमें न हो रहा हो और अभाव समझा जा रहा हो ? ऐसा अभाव किसीके द्वारा नहीं जाना जाता है। जिस वस्तुको आप इस तरह जानते हैं कि यह नहीं है तो कुछ जान गए तभी तो कहोगे कि यह नहीं है। किसी पुरुष को देखकर पहिले आपको किसीको देखकर यह संदेह हो जाय अपने भाईके प्रति कि यह अमुक चन्द आ रहे हैं और था वह दूसरा कोई। पासमें आने पर वह जान सका कि यह तो कोई दूसरा व्यक्ति है। तो जिसको निरखकर उसे अपने भाईके अभाव का ज्ञान आया उसका तुच्छ अभाव तो नहीं हुआ। तो असत् कोई भी वस्तु नहीं है। असत्का ज्ञान कैसे हो सकता है ? यहाँ अभावको तुम असत्रूप कह रहे हो, किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप बता नहीं रहे हो तो अवस्तुका कहीं ज्ञान हो ही नहीं सकता।

अवस्तुकी ज्ञेयरूपताका अभाव—कदाचित् कोई ऐसा भी जानले कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आकाशका फूल, गधेका सींग। जो बात है भी नहीं उसे भी कोई जाने तो वहाँ भी सर्वथा असत्का ज्ञान हुआ। यद्यपि आकाशमें फूल नहीं उगते, फूल पेड़में ही होते हैं, गधेके सींग नहीं हुआ करते, गाय भैंस आदिकके ही सींग होते हैं लेकिन जब गधेके सींग नहीं है, ऐसा जाना तो गधा गधा तो है और सींग सींग तो हैं, कहीं भी हो। सींग कोई वस्तु ही न हो तब तो आपत्ति दे। गधा अलग वस्तु है, सींग अलग वस्तु है। अब अलग रहने वाली वस्तुओंको हम एक जगह जोड़नेकी कल्पना बना रहे हैं तो यह कल्पना हमारी असत्य हुई, पर जो कुछ भी ज्ञानमें आता है वह पदार्थ नियमसे है, कहीं भी हो, तब ज्ञानमें आता है। जो कुछ भी न हो तो ज्ञानमें क्या है? स्वप्नमें भी कभी कभी अटपटी चीजें दिखनेमें आती हैं जिसे कभी हमने जाना भी नहीं है, हमारी कल्पनामें भी नहीं था, इस जीवनमें ऐसी भी अटपट बातें दिखती हैं, लेकिन वे अटपट भी दिखी स्वप्नमें। तो स्वप्न तकमें भी जो वस्तु सर्वथा असत् है, हुआ ही न करती हो, किसी भी तरहसे वह दिख गयी हो यह बात नहीं है, चीज है, कहीं हो, कभी हो, सत् है जो स्वप्नमें भी ख्याल आता है उसका, जागृत अवस्थामें भी ख्याल होता है उसका, पर जो वस्तु है ही नहीं सर्वथा असत् है उसका कौन ख्याल करता है?

अभावप्रमाणसे अभावसिद्धिकी अव्यवस्था जिस स्थानपर घट नहीं है उस स्थानको देखकर घटका अभाव कहा। यह अभाव प्रमाणको बताने वाली पद्धतिसे नहीं हुआ। उस पद्धतिमें बतलाते हैं कि प्रतियोगी घटका स्मरण होता है तब अभाव प्रमाण होता है और घटका प्रतियोगी भूतल है, भूतलका प्रतियोगी घट है, प्रतियोगी उसे कहते हैं जो जिससे अलग है उसका उससे मुकाबला करे तो एक दूसरेका प्रतियोगी हो जाता है। जैसे दो पद्धतियोंमें वाद विवाद हो तो उसमें किसीका भी नाम लेकर पूछ सकते हैं कि इसका प्रतियोगी कौन है। तो घटका प्रतियोगी हुआ भूतल और भूतलका प्रतियोगी हुआ घट। यदि यह कहो कि प्रतियोगी भूतलके ख्याल आनेसे यह जाना गया कि यह घट भूतलसे सहित नहीं है, रहित है और घटसे रहित है उसके स्मरणसे भूतलका ज्ञान हुआ कि यह घटसे रहित है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। जब तक घटसे रहित जमीनका स्मरण नहीं होता जब तक यह घट जमीनसे नहीं छुए हुए है यह ज्ञान नहीं हो सकता। जब तक घटको यह भूमिसे छुवा हुआ नहीं है यह स्मरण न हो तो जमीन घटसे रहित है यह प्रतिपत्ति नहीं हो सकती।

भावांशकी तरह अभावांशका भी प्रत्यक्षसे ज्ञान—अभावांश का ज्ञान भावांशके प्रत्यक्षकी तरह हैं। जैसे प्रत्यक्षमें भावांशका ज्ञान कर लेते हैं ऐसे ही इस प्रत्यक्षसे अभावांशका ज्ञान भी कर लेते हैं। यह घड़ा घड़ा है, यह चौकी आदिक अन्य कुछ भी नहीं है, ये दोनों बातें हमने आँखोंसे देखकर बताया या हम बड़े सोच विचार में पड़ गए और चौकीका ख्याल कर चटाईका ख्याल करा। दुनियाभरकी समस्त अन्य वस्तुओंका ख्यालकर और फिर वहाँ यह जाना कि देखो घड़ेमें चौकी आदिक कुछ नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं, कोई ऐसा बिलम्ब करता है क्या ? क्या कोई यों अन्य चीजोंका ख्याल करता रहता है जिसका कि घड़ेमें अभाव बताना है ? घड़ी देखा और तुरन्त जान गए। घड़ी घड़ी है, चौकी आदिक नहीं है। इस घड़ीमें घड़ीके ही कलपुर्जोंका सद्भाव है और वस्तुवोंके पुर्जोंका अभाव है, यह बात हम प्रत्यक्षसे ही तो जान लेते हैं, अन्य अभाव प्रमाण जैसी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है ?

प्रमाणके लक्षणका अनुस्मरण – यह प्रमाणभूत ज्ञानकी चर्चा की जा रही है। कौनसे ज्ञान प्रमाणभूत होते ? प्रमाणका लक्षण सर्वप्रथम यह बताया गया कि जो अपनेको और अपूर्व अर्थको निश्चय करा दे उस ज्ञानका नाम प्रमाण है। देखो प्रमाणभूत ज्ञानमें ये दो प्रकृतियाँ पड़ी हुई होती हैं कि वह ज्ञान अपने आपका भी निर्णय रखता है कि यह प्रमाण है और पदार्थका भी निर्णय रखता है कि यह प्रमाण है। जैसे आप अपने मित्रको देखकर यह ज्ञान करते हैं कि यह मित्र है तो उस समय आपका दो जगह पूरा निश्चय बना हुआ है कि यह मित्र है ऐसा जो मुझे ज्ञान हुआ है यह बिल्कुल पक्का है और यह मित्र है यह भी बात बिल्कुल पक्की है। तो ज्ञान की पक्कायतमें दो जगह पक्कायतका निर्णय रहता है। तो जो ज्ञान स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं।

प्रत्यक्ष ज्ञानोंके प्रकार– वह ज्ञान कितने प्रकारका है उसके प्रकार फैलाव कई मिलेंगे। एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। इन इन्द्रियोंसे जो कुछ हमने सीधा जान लिया है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। जैसे जानते हैं कि पङ्खा है, दरी है, चौकी है, पुस्तक है, ये सब ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। एक अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है। अतीत कालकी बात अथवा बाहरी क्षेत्रकी वस्तु एक आत्मीय शक्तिसे ही जानी जाती है। वहां इन्द्रियां काम नहीं देतीं। तो दूरवर्ती और अतीत भविष्यकालकी वस्तु आत्मीय शक्तिसे जान ली जाय उसे अवधिज्ञान कहते हैं। अवधिज्ञानमें रूपी पदार्थ ज्ञानमें आते हैं। एक मन:पर्ययज्ञान प्रत्यक्ष होता है। दूसरेके मनमें क्या भाव भरा है, क्या विकल्प है, इसने क्या सोचा है, क्या सोचा था ? यह क्या सोचेगा ? उन सब विचारोंको जान लेना यह भी आत्मीय शक्तिसे होता है। यह भी प्रत्यक्ष है, और भगवानका केवलज्ञान जिसके द्वारा समस्त लोकालोक जान लिया जाता है, वह भी प्रत्यक्ष है। वह सकल प्रत्यक्ष है।

परोक्ष ज्ञानोंमें स्मरण और प्रत्यभिज्ञान अब परोक्षज्ञानोंको देखिये – स्मरण ज्ञान–जैसे किसी वस्तुका स्मरण आ जाय कि वह है, वह कैसा है, वह कहाँ है। तो वहके रूपमें तत् शब्दके रूपमें जिसकी मुद्रा बनी है ऐसी परोक्षभूत वस्तुका स्मरण होना स्मरण ज्ञान है। जैसे किसी नगरमें जहाँ जहाँ आपका सम्बन्ध है व्यापार है वहांका ख्याल आये तो वह स्मरण ज्ञान है, यह परोक्षज्ञान है। कभी दो वस्तुवोंमें तुलनाका भी ज्ञान होता है। जैसे यह चीज दूसरी इस चीजकी तरह है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यह प्रत्यभिज्ञान ज्ञान हुआ। एक पदार्थका तो प्रत्यक्ष हो और दूसरे पदार्थका स्मरण होवे और फिर उसमें उपमाकी बात जानी जाय, कुछ भी जोड़ लगाया जाय उसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। यह पुरुष वही है जिसे हमने कल देखा था यह प्रत्यभिज्ञान है। प्रत्यभिज्ञानमें तीन बातें होती हैं, एक चीजका प्रत्यक्ष, दूसरी चीजका स्मरण और फिर उन दोनोंमें किसी बातका संकलन करना। यद्यपि एकत्व प्रत्यभिज्ञादमें एक ही चीज जानी गई, किन्तु उसका ही स्मरण होनेपर स्मरण रूपसे जो जाना गया वह अन्य पद्धतिसे हैं। इसलिये वह अन्य हुआ। और, प्रत्यक्षरूपसे जो जाना गया वह अन्य पद्धतिसे है इससे यह अन्य हुआ। अब इन दोनोंका एकत्व जोड़ दिया यह प्रत्यभिज्ञान है। यह उससे छोटा है यह उससे बड़ा है, यह उससे अधिक चतुर है, यह उससे अधिक रूपवान है आदिक कुछ भी प्रतियोगिता बताना वह सब प्रत्यभिज्ञान है। यह ज्ञान भी परोक्ष ज्ञान है।

परोक्षज्ञानोंमें तर्क, अनुमान और आगमज्ञान—एक ज्ञान होता है तर्क ज्ञान। जैसे तर्कणा कर रहे हैं, अविनाभाव बता रहे हैं—जहां जहां धुवां होता है वहां वहाँ अग्नि होती है, जहां अग्नि नहीं होती वहां धुवां नहीं होता। एक तर्क कर रहे हैं। यह ज्ञान न प्रत्यक्ष है न अनुमान है, न स्मरण है, किन्तु एक युक्तिमें बात लायी जा रही है। तो तर्क भी एक सम्यग्ज्ञान होता और प्रमाणभूत होता, फिर उसके तर्कसे अनुमानकी उत्पत्ति होती है। जब तर्कसे यह जान लिया गया कि धुवांसे अग्निका अविनाभाव है तो वह धुवां देखकर अग्निका अनुमान करना अनुमान ज्ञान है। तो यह अनुमान भी परोक्षज्ञान है। एक आगमज्ञान होता है। आपने कोई बात कहा, उन शब्दोंसे हमने कुछ जान लिया, यह आगमज्ञान है। शास्त्रमें जो बात लिखी है वह शब्द ही तो है यह शब्द मुद्रामें है और मुखसे बोला गया शब्द एक साक्षात् आकारमें है। जैसे भगवान और भगवानकी मूर्ति। जो २४ तीर्थङ्कर हुए हैं वे जब हुए थे वे तो साक्षात् थे और उनकी यहां मूर्ति बनाई गयी, उन जैसा आकार बनाया गया, यह उनकी मुद्रा हुई। इसी प्रकार शब्द जो मुखसे बोले जाते हैं वे तो सीदे साक्षात् शब्द हैं और लिपियोंमें जो लिखे जाते हैं यह उन शब्दोंकी प्रतिमा है। तो शब्दोंकी मूर्ति रूप आगममे जो हमने जाना वह आगमज्ञान है। वह भी परोक्षज्ञान है।

अभावका सद्भावग्राहक प्रमाणमें अन्तर्भाव—प्रत्यक्ष और परोक्षके प्रकारोंमें अनेक ज्ञानोंका विस्तार है। और, यह ज्ञानोंका विस्तार युक्तिसंगत है। सबके विषय अलग अलग हैं और ये सब प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दोनोंमें गर्भित होते हैं। यह तो है, प्रमाणकी सही पद्धति। इस पद्धतिको न मानकर कोई कोई लोग और–और तरहसे भी ज्ञानोंको प्रमाण माना करते हैं जिसका वर्णन बहुत कुछ हो चुका है। उन प्रमाणोंमें अभाव प्रमाणकी बात चल रही है कि अभावप्रमाणवादीका मन्तव्य है कि अभाव भी एक अलगसे प्रमाणज्ञान हुआ करता है। किन्तु सिद्धान्तसे यह सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ कि अभावप्रमाणका प्रत्यक्षादि प्रमाणमें अन्तर्भाव है। यहां इतना ध्यान देना है कि अभाव प्रमाणवादी अभावको तुच्छ अभाव मानते हैं किसी दूसरी चीजके सद्भावरूप नहीं मानते। किन्तु, तुच्छ अभाव तो व्यवहारसे भी परे है, अभाव तो वस्त्वन्तर के सद्भावरूप है। जैसे किसी पुरुषको देखकर आप यह ज्ञान करे कि यह नहीं है हमारा भाई, आपके भाई जैसा ही उसका डील डौल था कि हमारा भाई आ रहा है पर निकट आनेपर यह ज्ञान हुआ कि यह नहीं है हमारा भाई। तो हमारा भाई नहीं है ऐसा जो ज्ञान बनाओ इस पुरुषको देखकर ही तो बन रहा है। अभावका किसी सद्भावसे तो लगाव है। तब अभाव जाननेमें आता है। ऐसा अभाव जाननेमें नहीं आता कि जो कुछ भी सत् नहीं है असत् है और वह ज्ञानमें आया। असत् पदार्थ ज्ञानका विषय नहीं होता। ज्ञानका विषय सत् पदार्थ ही हुआ करता है। तो यों अभाव प्रमाणवादी अभावको प्रमाण कह रहे थे। उसके खण्डनमें इस समय प्रत्यक्षमें यह अभाव गर्भित है यह सिद्ध किया जा रहा है। जिस किसीको निरखकर हम उसके पदार्थका अभाव कहते हैं तो वह तो देखी जाने वाली वस्तुके सद्भावरूप है। इसलिये प्रत्यक्षगम्य है, वह अभाव। अभाव कोई स्वतंत्र प्रमाण नहीं है।

दर्शनस्मरणकारणकविधिमें अभावज्ञानकी प्रत्यभिज्ञानरूपता— अभाव प्रमाणवादी यहाँ यह कह रहे हैं कि प्रतियोगीके स्मरण बिना जो ज्ञान होता है वह तो प्रत्यक्ष ज्ञान है, किन्तु प्रतियोगीके स्मरणके अनन्तर जो उसका अभाव जाना जाता है वह अभाव प्रमाण है। भूतलसे संसृष्ट घटका जिसने अनेक बार दर्शन किया जिससे संस्कार बना, धारणाज्ञान हुआ अब फिर कभी घटसे रहित भूतलके देखनेपर उस प्रकारके याने भूतलसंसृष्ट घरका स्मरण हो आया उसके बाद यह ज्ञान हुआ इस कारण यह अभावज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसे अलग है अतएव अभावप्रमाण हुआ। इस आशंकाके समाधानमें आचार्यदेव कहते हैं कि भूतलको प्रत्यक्ष देखा और घटका स्मरण हुआ तदनन्तर जो अभावका ज्ञान बनाया वह तो प्रत्यभिज्ञान हुआ। इस ढङ्गसे जो अभाव जाना गया वह इस मुद्रामें रहा कि इसका यहां अभाव है, घर का इस कमरेमें अभाव है। यह परिज्ञान दर्शन स्मरणकारण हुआ। अतः प्रत्यभिज्ञान हुआ।

अभावज्ञानकी अनुमानरूपता—सांख्यसिद्धान्तमें अभावको प्रत्यक्षगम्य नहीं माना गया तो वहां अनुमानगम्य बताया गया है जिसका रूपक यह कहा गया है 'इस भूभागपर घट नहीं है दृश्य होनेपर भी अनुपलब्ध होनेसे। जहां जो दृश्य होनेपर भी अनुपलब्ध होता है वह उसका अभाव होता है जैसे तमोगुणमें सत्त्व गुणका अभाव है। इस इस अनुमानमें दिये गये दृष्टान्तकी चर्चा नहीं करनी है, किन्तु यह जाननेकी बात है कि सैद्धान्तिक दृष्टान्त देकर यहां अनुमान विधिमें अभाव सिद्ध किया गया है सो यह अभावज्ञान अनुमान प्रमाण हुआ। अभावप्रमाणका कहीं स्थान भी नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभावप्रमाणमें प्रतियोगिनिवृत्तिकी असिद्धि – अभाव प्रमाणके सम्बन्ध में एक बातका और अवलोकन कीजिये कि अभाव प्रमाणने यदि अभावका ग्रहण किया तो अभावका ही ज्ञान होना चाहिये न कि प्रतियोगीकी निवृत्तिका अर्थात् इस प्रकार ज्ञान नहीं होना चाहिये कि यहाँ घर नहीं है, घटकी निवृत्तिरूपसे परिज्ञान नहीं होना चाहिये। यदि कहो कि अभावके ज्ञानसे प्रतियोगीको निवृत्तिका भी ज्ञान हो जाता है तो बताइये वह निवृत्ति प्रतियोगीके स्वरूपसे सम्बद्ध है या असम्बद्ध है ? निवृत्तिको प्रतियोगीके स्वरूपसे सम्बद्ध तो कह नहीं सकते, क्योंकि भाव और अभाव का तादात्म्य आदिक कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि निवृत्तिको प्रतियोगीके स्वरूपसे असम्बद्ध कहोगे तो उस भूतलको, जो कि घटस्वरूपसे असम्बद्ध है और पटादिस्वरूपसे भी असम्बद्ध है, देखकर यह निर्णय कैसे बनेगा कि यहाँ घट नहीं है, क्योंकि घटकी तरह पट आदिकसे भी तो भूभाग असम्बद्ध है, उन सभीका अभाव है। मात्र अभावका ज्ञान बन ही नहीं सकता। अभाव वस्त्वन्तरके सद्भावरूप है सो उस वस्त्वन्तरका जिस प्रमाणसे ग्रहण हो, उसी प्रमाणसे अभावका ज्ञान होता है, अभाव प्रमाण पृथक कुछ नहीं है।

अभावप्रमाणकी सिद्धिमें त्रिप्रकारताकी कल्पना – जैसे सामने नजर आने वाली वस्तुको प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना जाता है इसी प्रकार सामने न हो तो उस पदार्थको अभाव प्रमाण द्वारा जाना करते हैं। इस प्रकारका श्रद्धान करने वाले अभावप्रमाणवादियोंने यह कहा था कि अभावमें तीन प्रकारता होती है। अभावका ज्ञान करनेमें तीन बातें आवश्यक होती हैं। प्रथम तो पांचों प्रमाणोंका अभाव अर्थात् जहां प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, उपमान और आगम ये पांचों प्रमाण जहां न लगते हों वहाँ अभावका ज्ञान होता है, क्योंकि ये ५ प्रमाण भावात्मक तत्वको जानते हैं। प्रत्यक्षसे कोई चीज ही तो जानी जायगी, अनुमानसे भी वस्तु ही जानी जायगी, आगमसे अर्थापत्तिसे, उपमानसे कोई वस्तु जानी जायगी तो ५ प्रमाणोंका अभाव होना यह अभावके ज्ञानमें एक प्रकार है। दूसरा प्रकार यह है कि जिसका अभाव करना है, अभाव जानना है उसके अतिरिक्त अन्य वस्तुका ज्ञान होना। जैसे इस कमरे में घट नहीं है, यहां घटका अभाव समझना है तो घटसे अन्य जो कमरा है उसका ज्ञान होना, अभाव जाननेमें अर्थात् अमुक वस्तु यहां नहीं है ऐसा ज्ञान करनेमें दूसरा प्रकार यह है कि वह दूसरी बात ज्ञानमें आये। तीसरी बात यह है कि आत्मा ज्ञानसे रहित हो, अर्थात् जिसका अभाव करना है उसका वैसा ज्ञान नहीं हो रहा है। तीन बातें अभावमें हुआ करती हैं।

अभावज्ञानमें प्रमाणपञ्चकाभावकी हेतुताका निराकरण आचार्यदेव अभावप्रमाणमें त्रिप्रकारताका आशङ्कापर समाधान करते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। तीन बातोंका क्रमशः खण्डन करते हुए सर्वप्रथम पांचों प्रमाणोंका अभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है उससे अभावज्ञान जाना जाता है इसका खण्डन कर रहे हैं। किसी पदार्थका अभाव जाननेका प्रथम प्रकार तो यह बताया है कि पांचों प्रमाण जहां नहीं रहे वहां अभाव प्रमाण होता है। अनुमान आदिककी जहां गति नहीं है ये प्रमाण नहीं हो रहे हैं। वहां जाना जा रहा है कि यह घड़ा नहीं है, तो पांच प्रमाणोंका अभाव होना. इसका कोई अर्थ ही नहीं है। अभाव तो निःस्वभाव होता है। अभावमें कोई डिग्रियां नहीं होती। जैसे सद्भावमें अंश होते हैं किसी अवस्थामें डिग्रियां होती हैं ऐसे ही क्या अभावमें डिग्रियां होती हैं ? जैसे यह दूध १०० डिग्री चिकना है, यह दूध ६५ डिग्री चिकना है तो जैसे उस दूधकी चिकनाईमें डिग्रियां हैं, उस दूधमें जैसे भाग पाये गये इस तरह क्या दूधके अभावमें भी डिग्रियां हैं ? गिलासमें दूध नहीं है तो कोई डिग्री भी नहीं है। उस अभावकी कितनी डिग्रियां हैं यह तो सम्भव नहीं है। तो ५ प्रमाणों का जो अभाव है वह तो निःस्वभाव है। वह अभावका कैसे परिज्ञान करेगा। प्रमेयके भेदसे ज्ञान करना कुछ भी ज्ञान करना वह तो ज्ञानका धर्म है। ५ प्रमाणोंका अभाव जान लिया गया यह बात ठीक नहीं बैठी क्योंकि जानना ज्ञानका, अभावका धर्म नहीं है।

अवस्तुके ज्ञानकी अशक्यता—यदि यह कहो कि ५ प्रमाणोंका अभाव प्रमेयके अभाव विषयक ज्ञानको उत्पन्न करता हुआ उपचारसे अभाव प्रमाण कहलाता है तो यह भी बात ठीक नहीं है। अभाव तो अवस्तु है उसको कैसे ज्ञान पैदा करेगा। जैसे यह चौकी है, तो है ना यह, इसलिये इसका ज्ञान हो गया। जहाँ कुछ भी नहीं है, शून्य है, अभाव है उसका ज्ञान कैसे हो ? अवस्तुका ज्ञान नहीं होता। वः चीज हो तब ज्ञान होता है। कोई आकाशमें कुछ चलतेसे मच्छर नजर आयें, हैं नहीं वहां पर नजर आने लगें तो मच्छर दुनियामें हुआ करते हैं तब तो वहाँ मच्छरका भ्रम हुआ। जो चीज होती ही नहीं उसका भ्रम होता नहीं, संशय होता नहीं, ज्ञान होता नहीं, न कल्पनामें ही बात आ सकती है। तो अभाव प्रमाणवादियोंने अभावको "न" ऐसे ही रूप माना है, "हाँ" रूप नहीं माना है।

अभावकी वस्वन्तरसद्भावरूपता—जैन शासनमें अभावको किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप माना है। जैसे रोटी बनाते हैं तो जिस समय लोई बनाये हुए हैं उस समय लोईमें रोटीका अभाव है कि नहीं ? अभी लोई है, रोटी कहां है। तो रोटीका जो अभाव है वह लोईके सद्भावरूप है, अवस्तु नहीं है। जब रोटी बन चुकी तब लोईका अभाव हो गया। अब लोई कहाँ रह गयी ? तो रोटीमें लोईका अभाव है तो लोईका अभाव रोटीके सद्भावरूप है, अभाव बिना भाव नहीं होता। अभाव किसी सद्भावरूप होता है, तो जो लोग अभावको कुछ नहीं मानते, अवस्तु मानते अवस्तुका ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता, अवस्तु ज्ञानजनक नहीं हो सकता। वस्तु ही कार्यको उत्पन्न कर सकती, अवस्तु नहीं, क्योंकि जो अवस्तु है उसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका भी अभाव है. और जो भी वस्तु है उसमें द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका सद्भाव है। जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह घड़ी है, तो घड़ीका जो पिण्ड है वह इसका द्रव्य है, यह घड़ी जितनेमें फैली है यह उसका क्षेत्र है, जो रूप रङ्ग नई पुरानी आदि अवस्थाएँ हैं यह उस घड़ीका काल हैं और घड़ीका जो स्वभाव है गुण है वह घड़ीका भाव है। तो जो वस्तु है उसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होते हैं, उसमें शक्तियां होती हैं, उसमें सामर्थ्य होता है।

अभावमें सामर्थ्यका अभाव—जो नहीं है उसमें कोई सामर्थ्य ही नहीं होती। जैसे कोई कहे कि गधेके सींगके धनुषसे आज हम लड़ेंगे जो जब गधेके सींग ही नहीं होते तो वह लड़ेगा क्या? तो जो अवस्तु है उसमें सामर्थ्य ही नहीं है। यदि अवस्तुमेंभी सामर्थ्य हो जाय तो सामर्थ्य जिस जिसमें होती है वह वस्तु होती है, तो भावरूप हो गया। यदि अभावमें भी ज्ञान उत्पन्न करनेका सामर्थ्य आ जाय तो फिर वह अभाव नहीं रहा, वह भी भाव बन गया, किन्तु परमार्थसत् जो वस्तु है उसमें सामर्थ्य हुआ करती है। गुण पर्यय वह द्रव्य जिसमें द्रव्य गुण पर्याय हो वह द्रव्य है। जो भी चीज है उसमें शक्तियां होती हैं, उसमें सामर्थ्य है, गुण है तो अभावमें भी यदि सामर्थ्य आगयी कि वह ज्ञानको उत्पन्न करदे। जैसे हमारा ज्ञान बननेके कारण ये चौकी घड़ी, पुस्तक आदिक पदार्थ बनते है हैं, इन सब पदार्थोंका सद्भाव है इस कारण ये हमारे ज्ञानके कारण बनते हैं, इसी प्रकार अगर अभावका सद्भाव हो तो यह ज्ञानका कारण बने। तो अभाव कोई अलग प्रमाण नहीं है। किन्तु जिस चीजको जानकर हमने ज्ञान किया बस उस चीजका ज्ञान प्रमाण है।

प्रमाणपञ्चकाभावसे प्रमेयाभावका औपचारिक भी अनियम यह जो दलील मीमांसा मन्तव्यमें दी गई थी एक अभावका प्रकार बताया गया था कि पांचों प्रमाणोंका अभाव होना यह अभावको प्रमाणित करता है। सो यह कोई नियम नहीं है कि जहां पांचों प्रमाण न लगें वहां प्रमेयके अभावका ज्ञान जरूर हो। जैसे आपके चित्तमें कोई बात है इसे हम न प्रत्यक्षसे जान रहे हैं, न आगम आदिकसे। आपके भीतर जो कल्पनायें चल रही हों, जो विचार चल रहे हों उसमें हमारे किसी प्रमाणकी गति नहीं है। पांचों प्रमाणोंका अभाव है तो क्या इससे आपके विचारोंका अभाव हो जायगा? हम नहीं जानते हैं कि आपके विचारोंको तो क्या आपमें कुछ विचार हैं ही नहीं? तो यह कोई नियम नहीं है कि जहां पांचों प्रमाणोंका अभाव हो वहां प्रमेयका अभाव है। अतः यह उक्ति उचित नहीं है कि जहां प्रत्यक्ष नहीं होता हो, अनुमान न होता हो, अर्थापत्ति आदिक ज्ञान न हो रहे हों वहां अभाव जान लेना चाहिए।

प्रमाणपञ्चकाभावकी ज्ञातताकी असिद्धि—पांचों प्रमाणोंका अभाव यदि अभावके ज्ञानका कारण बन रहा है तो यह बतलावो कि पांचों प्रमाणोंका अभाव ज्ञात होकर अभावके ज्ञानका कारण बनता है या अज्ञात होकर अभावके ज्ञानका कारण बनता है? अभाव प्रमाणवादी कह रहे थे कि जहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान आदिका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अभाव हो वहाँ अभावका ज्ञान होता है। तो प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानका अभाव ज्ञात होकर कारण बना या अज्ञात होकर ? यदि कहो कि ज्ञात होकर कारण बना तो किससे ज्ञात हुआ ? यदि तद्विषयक ५ प्रमाणोंके अभावसे ज्ञात हो तो अनवस्था दोष आ गया। अब ५ प्रमाणोंका अभाव जाननेके लिए दूसरे ५ प्रमाणोंका अभाव चाहिए। उसका अभाव जाननेके लिए ५ प्रमाणोंका अभाव चाहिए। यदि कहो कि प्रमेय वहाँ नहीं है, घट नहीं है इसलिए ५ प्रमाणोंका अभाव जान लिया गया तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष है। जब यह ज्ञात हुआ कि ५ प्रमाणोंका यहाँ अभाव है तो फिर नहीं है यह जाननेमें आये नहीं है यह जाननेमें आये तो प्रमाणपञ्चकका अभाव जाना जाये।

अज्ञातप्रमाणपञ्चकाभावकी ज्ञानहेतुताका अभाव—यदि कहो कि अज्ञात होकर ही पांचों प्रमाणोंका अभाव अभावका ज्ञान करा देगा तो यह बात बिल्कुल अयुक्त है। जो खुद ज्ञानमें न आये, जो खुद नहीं जाना गया वह किसी अन्य पदार्थका कैसे ज्ञान करा देगा ? यदि यह कहो कि ये आँखे जाननेमें तो नहीं आ रही हैं मगर ये आँखें दुनियाके पदार्थोंको जान रही हैं तो जो यह कहते हैं कि जो बात नहीं जानी जा सके वह दूसरेका ज्ञान नहीं करा सकती यह बात तो ठीक नहीं बैठी आखें हमारी जाननेमें नहीं आ रहीं पर जान रहे हैं हम बहुतसे पदार्थोंको तो जो अज्ञात है वह भी दूसरेका ज्ञान करा देता है। इसके उत्तरमें आचार्य देव कहते हैं कि आँखें तो कारक हैं इसलिए वे अज्ञात होकर भी ज्ञानका कारण बन जाती हैं, मगर ज्ञान तो ज्ञापक है, वह अज्ञात होकर ज्ञान नहीं करा सकता। जैसे हमने समझा कि यह पुस्तक है. तो यह पुस्तक है ऐसा जो ज्ञान हुआ है वह ज्ञान यथार्थ है, और यह ज्ञान हमारा यथार्थ है ऐसा अनुभव भी करते हैं। तो कारक तो अज्ञात होकर वस्तुका ज्ञान करानेका कारण बनता है, पर ज्ञापक अज्ञात होकर ज्ञान करानेका कारण नहीं बनता।

अभाव प्रमाणके प्रस्तावमें त्रिप्रकारताका प्रसङ्ग यहाँ यह प्रसङ्ग चल रहा है कि ज्ञान कितने प्रकारसे हुआ करते हैं। तो सिद्धान्त यह रखा कि ज्ञान दो प्रकारसे होते हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष पर प्रत्यक्ष और परोक्ष इस प्रकार दो ज्ञान क्षणिक वादियोंने नहीं माने। मानते वे भी दो हैं, पर प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो भेद माने हैं। उस द्विविधताका निराकरण करते हुए बहुत से ज्ञानोंकी सिद्धि की थी। उपमान भी ज्ञान है, अर्थापत्ति भी ज्ञान है, आगम भी ज्ञान है। उन अनेक ज्ञानोंका सद्भाव कुछ जैन शासनकी ओरसे कुछ अन्य शासनकी ओर से बताये। तो मीमांसकोंने एक अभाव प्रमाण भी रख दिया था कि अभावका ज्ञान होना भी एक प्रमाण है। तो अब इन सब ज्ञानोंका प्रत्यक्ष और परोक्षमें ही अन्तर्भाव है यह बतलानेके प्रकरणमें यहाँ यह कहा जा रहा है कि अर्थापत्तिका जो अनुमानमें अन्तर्भाव होता, अनुमानका प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर्भाव है और अभाव प्रमाण कोई अलग प्रमाण ही नहीं है, क्योंकि अभाव तुच्छ अभावरूप नहीं हुआ करता, किसी अन्य वस्तुके सद्भावरूप हुआ करता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। तो उस सद्भावका प्रत्यक्ष ज्ञान करे तो अभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे हुआ। उसके सद्भावका अनुमान ज्ञान करें तो उसका ज्ञान अनुमानसे होता। इस तरह वर्णनके बीचमें अभावप्रमाणवादियोंने यह बात रख दी कि अभाव प्रमाणमें तीन प्रकार होते हैं। प्रथम तो ५ प्रमाणोंका अभाव हो तो वहां अभाव प्रमाण होता है। अभावको छोड़कर शेष जो ५ प्रमाण हैं मीमांसकके माने हुए– प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, उपमान और आगम ये ५ प्रमाण जहां नहीं लग रहे वहां अभावका ज्ञान होता है, एक प्रकार यह बताया है, दूसरा प्रकार बताया था कि जिसका निषेध करना है उसके अलावा अन्य वस्तुका ज्ञान होना यह अभाव ज्ञानमें सहायक है। तीसरा प्रकार बताया कि ज्ञानसे रहित आत्मा हो जाय। जैसे घट ज्ञान नहीं रहा तब घटका अभाव हुआ।

अभावज्ञानमें प्रमाणपञ्चकाभावकी हेतुताका निराकरण—उस त्रिकारताके निराकरणमें प्रथमपक्षका निराकरण चल रहा है। यह बतलावो कि ५ प्रमाणोंका जो अभाव है यह ज्ञात होकर अभाव ज्ञानका कारण बनता है क्या ? सो अज्ञात होकर यों विरोध है कि जो ज्ञापक अज्ञात है वह ज्ञानका कारण कैसे बन सकता है। हां इन्द्रियां अज्ञात होकर भी ज्ञानका कारण बनती हैं। जैसे आंखोंको हम नहीं जान रहे पर आंखें अनेक पदार्थोंके जाननेका कारण बन रही हैं। तो कारक तो अज्ञात होकर ज्ञानका कारण बन जायगा पर ज्ञापक कोई भी अज्ञात होकर ज्ञानका कारण नहीं बन सकता। और, फिर अभाव कारक है नहीं, क्योंकि अभावमें कोई सामर्थ्य ही नहीं। भावमें तो गुण होता है, पर्याय होती है, उसका अंश होता है। अभावमें क्या अंश ? इस कारण ५ प्रमाणोंका अभाव अभाव ज्ञानका कारण होता है यह बात अयुक्त है।

अभाव प्रमाणमें तदन्यज्ञानकी प्रकारताकी मीमांसा—दूसरा प्रकार लीजिए अभाव प्रमाणकी सिद्धिमें जो मीमांसकोंने बताया था कि जिसका अभाव जाना जा रहा है उस पदार्थसे अन्य पदार्थका ज्ञान होना अभाव ज्ञानका कारण है। जैसे इस कमरेमें घड़ा नहीं है तो घड़ासे अन्य जो कमरा है उसका ज्ञान हो रहा है। वह अभाव ज्ञानमें कारण पड़ रहा है। तो आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह बात बिल्कुल सही है। लो, यह प्रत्यक्ष ही तो हो गया, अभाव प्रमाण कुछ अलग तो नहीं रहा। घट आदिकसे रहित जो भू आदिकका ज्ञान होता वही तो अभावका ज्ञान है। अभाव अन्यके सद्भावरूप हुआ करता है। यह बात ध्यानमें रखकर इस प्रकरणको सुनना चाहिए। जो असत् है उसका ज्ञान होता ही नहीं। अगर ज्ञान हो जाय, तब कल्पना उठ जाय तो कहीं न कहीं वह सत् है तब कल्पना उठी। जैसे गधेके सिर पर सींग उठा दिया आपने कल्पनासे। कल्पनासे तो आप क्या नहीं कर सकते, मगर वह कल्पना भी जो बात है ही नहीं, असत् है उसकी कल्पना भी नहीं बनती। उसका ज्ञान भी नहीं बनता। यदि अभावका ज्ञान बनता है तो अभाव किसी अन्यके सद्भाव-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूप है तब ज्ञान बनता है। यदि अभाव किसीके सद्भावरूप न माना जाय तो वह अवस्तु है, असत् है, उसका ज्ञान बन ही नहीं सकता देखिये पदार्थमें यह स्वरूप पड़ा हुआ है कि पदार्थ सत् स्वरूप होता है घड़ा घड़ा है अन्य चीज नहीं है यह बात बिल्कुल स्पष्ट समझमें आ रही है। तो अन्य चोज नहीं है, ऐसा जो अभाव है वह घड़ी के सद्भावरूप है।

अभावप्रमाणके लिये आत्माकी ज्ञाननिर्मुक्तताकी मीमांसा—अब तीसरी बात जो यह कही गई थी कि ज्ञानरहित आत्माका होना यह अभावज्ञानका कारण है, जैसे कमरेमें घड़ा नहीं है यह जाना तो घड़ेके ज्ञानसे रहित है आत्मा, यह भी एक प्रकार है, अभावके जाननेमें। तो पूछते हैं उनसे कि क्या यह आत्मा सर्वथा ज्ञानसे रहित है। सभी ज्ञानसे रहित है या कथंचित् ज्ञान रहित है ? उस कमरे को देखकर यहाँ घड़ा नहीं है ऐसा ज्ञान करने वाले पुरुषने क्या घड़ेका अभाव नहीं है ऐसा जाना तो वह पुरुष क्या सर्वथा ज्ञानरहित है ? या उस समय घड़ेके सद्भावके ज्ञानसे रहित है ? यदि कहो कि सर्वथा ज्ञानरहित है, तो यह स्ववचनविरोध है। घड़ेका यहाँ अभाव है ऐसा ज्ञान करते जा रहे और कहते हैं कि सर्वथा ज्ञानसे रहित है। कोई पुरुष यदि ऐसा कहदे कि मेरी माता बन्ध्या है तो कोई इसे मान लेगा क्या ? अरे स्वयं कह रहा कि मेरी माता, फिर कह रहा कि बन्ध्या है तो यह स्वयं विरोध है। घड़ेका अभाव है, ऐसा ज्ञान कर रहा है कमरेको निरखकर और कहता कि यह आत्मा सर्वथा ज्ञानरहित है, इसमें स्ववचनविरोध है। यदि आत्मा सर्वथा ज्ञानरहित है तो अभावका ज्ञान कैसे कर लिया ? जितने भी जानन होते हैं, जितने भी परिच्छेदन होते हैं वे ज्ञानके धर्म हैं, यदि कहो कि वहाँ अभावका परिच्छेदन होता है तो सर्वथा ज्ञान-रहित आत्मा कैसे बना ? यदि कहो कि कथंचित् ज्ञानरहित है तो बात बिल्कुल सही है। जिसका अभाव जाना जा रहा है उसके सद्भावका ज्ञान नहीं है और उससे रहित सारे कमरेका ज्ञान चल रहा है। तो अभाव किसीके सद्भावरूप हुआ करता है तो जो सद्भावका ज्ञान है वही अन्यके अभावका ज्ञान है। यों अभावज्ञान प्रत्यक्ष आदिक रूप पड़ता है कोई अभाव प्रमाण स्वतंत्र अलग प्रमाण नहीं है।

प्रत्यक्ष ज्ञानका विधान—यह अपने ज्ञानकी गतियोंका ही विचार चल रहा है कि हमारा ज्ञान किस किस प्रकारसे जाननेमें प्रवृत्त होता है। तो मूलमें तो दो पद्धतियां हैं ज्ञानकी। एक ज्ञान तो ऐसा स्वच्छ है कि इन्द्रियकी सहायताके बिना केवल आत्म शक्तिसे जान लेता है। देखिये केवल आत्मशक्तिसे ज्ञान होता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। यह दृढ़ता लाने के लिए कभी आप ऐसा प्रयत्न करें स्थिर आसनसे बैठकर शरीर तकका भी ख्याल न रखकर किसी भी परवस्तुका विकल्प न रखकर बड़े विश्राम से बैठ जायें किसी भी परवस्तुको न जानना, सर्वपर पदार्थ भिन्न है, उनसे मेरा कोई हित नहीं है क्यों कि उनमें अपना उपयोग लगाऊँ ऐसा दृढ़ निर्णय रखकर किसी भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परवस्तुको ज्ञानमें लायें और पूर्ण विश्रामसे बैठें तो अन्दर ही अन्दर कुछ आपको ज्ञात होगा। वह जो ज्ञान हुआ वह इन्द्रियके बिना हुआ और वही ज्ञान जब बढ़ जाता है तो फिर उसमें इतनी शक्ति हो जाती है कि इन्द्रियकी सहायताके बिना फिर बाहरी पदार्थोंका भी यह आत्मा ज्ञान करता रहता है सम्यक्‌रूपसे। तो यह आत्मा आत्म-शक्तिसे भी बिना इन्द्रियकी सहायताके स्पष्ट जाना करता है यह तो हुआ वास्तवमें प्रत्यक्ष ज्ञान।

मतिज्ञानकी सांव्यावहारिक प्रत्यक्षरूपता— अब हम आप जो सामनेकी चीज जान रहे हैं और स्पष्ट सी लग रही है। आँखोंसे हम जानते हैं कि यह दरी है, यह फर्श है, इसमें कोई संदेह तो नहीं हो रहा है। तो आँखोंसे, इन्द्रियोंसे साक्षात् सामनेकी चीजोंका जो ज्ञान हो रहा है वह वास्तवमें है परोक्ष, क्योंकि इन्द्रियके सहारे ज्ञान हुआ, आत्मशक्तिसे नहीं हुआ। लेकिन आत्मशक्तिसे जो ज्ञान हुआ करते हैं उन ज्ञानोंकी भाँति यह भी कुछ स्पष्ट सा ज्ञान है जो कि इन्द्रियसे जाना गया, इस कारण इन्द्रियसे जाने गये इन ज्ञानोंको भी हम प्रत्यक्ष कहते हैं किन्तु पारमार्थिक प्रत्यक्ष नहीं, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। तो एक पद्धति तो ज्ञानकी है, आत्मशक्तिसे वस्तुका ज्ञान कर लेना यह तो है प्रत्यक्ष पद्धति।

परोक्षज्ञानकी विडम्बना—ज्ञानकी दूसरी पद्धति है इन्द्रियकी सहायतासे ज्ञान करना, यह है परोक्ष पद्धति। जितने भी लोगोंने ज्ञान माना है मीमांसक आदिने वे सब ज्ञान परोक्षमें गर्भित हो जाते हैं। हम आपको एक विड़म्बना यह भी लगी भई है कि ज्ञान हमारा परोक्ष हुआ करता है। आपत्तियोंका एक कारण यह भी बन जाता है। यद्यपि ज्ञान आपत्तिका कारण नहीं होता, चाहे वह कितना ही ज्ञान उत्पन्न हुआ हो, अपूर्ण भी ज्ञान हो, वह कहीं जीवोंकी आपत्तिके लिए नहीं है। किन्तु जहां थोड़ा ज्ञान है, विरुद्ध ज्ञान है, इन्द्रियाधीन ज्ञान है वहाँ इस जीवके साथ रागद्वेष भी लगे हुए हैं। तो जिस पदार्थमें हमें राग होगा उस पदार्थका ज्ञान भी हमें हो रहा तो हमारे रागके होनेमें निश्चयसे तो ज्ञान कारण नहीं, पर यह भी तो सोचा जा सकता कि अमुक चीज यदि हमारे ज्ञानमें न आती तो हम राग कैसे करते? जिस वस्तुसे हम राग कर रहे हैं उस वस्तुका हमें ज्ञान ही नहीं होता। हमारी कल्पनामें वह वस्तु ही न होती तो राग कहांसे होता? इस दृष्टिसे हमारा यह परोक्ष ज्ञान इन्द्रियज ज्ञान हमारी आपत्तिका कारण बन रहा है।

ज्ञानीके सहजज्ञानस्वरूपकी भावना— परोक्ष ज्ञानोंमें भी प्रेम नहीं रखना चाहिए और भावना यह रखना चाहिए कि मुझे यह ज्ञान भी न चाहिए, मेरा जो सहज ज्ञानस्वभाव है, मेरा जो परमार्थस्वरूप है, मेरेको तो उसका ही ज्ञान रहे। मुझे दुनियाकी इन अनेक बातोंमें पड़नेसे कोई प्रयोजन नहीं है। जो आत्महितार्थी पुरुष है वह आत्महितके प्रसङ्गमें ऐसी ही भावना रखता है कि मुझे किसी भी अन्य वस्तुका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान न चाहिए। केवल मेरा जो सहज ज्ञानस्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपका ही मेरेको ज्ञान रहे तो वह ज्ञान है अतीन्द्रिय। वह ज्ञान है आत्मशक्तिसे जाना जाने वाला। तो उस ज्ञानशक्तिके ज्ञान करनेमें वह शक्ति विकास होता है कि सारे विश्वके पदार्थ फिर उसके ज्ञानमें आत्मशक्तिसे स्पष्ट झलकने लगते हैं।

केवल अभावांशके ग्रहणका अभाव—अभाव प्रमाण मानने वालोंने यह कहा था कि पदार्थ अपने स्वरूपसे सत्‌रूप है और पररूपसे असत्‌रूप है। जैसे यह चौकी चौकीके रूपसे तो है और चौकीसे अन्य जो पदार्थ हैं उन रूपोंसे नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे तो हैं और दूसरेके स्वरूपसे नहीं है, ऐसा तो जैनशासन भी मानता है। तो ऐसे सत् असत् स्वरूप पदार्थमें कोई सत्‌को जानता है कोई असत् को जान लेता है। किसीने सद्भाव जान लिया, किसीने अभाव जान लिया। समाधान में आचार्यदेव कहते हैं—यह बात ठीक नहीं है। कारण यह है कि पदार्थ सत् असत् रूप तो है, अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है किन्तु जब भी पदार्थ जाना जाता है तो उभयरूप पदार्थ जाना जाता है। अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है, ऐसा एक साथ जाना जाता है। ऐसा नहीं है कि कभी कोई उसमेंसे सत्‌रूप ही जाने। जैसे यह घड़ी है तो जो भी जानेंगे तो इस रूपसे जानेंगे कि घड़ीके रूपमें तो यह है और चौकी आदिकके रूपमें नहीं है। उभयरूप ज्ञान होता है। उसमेंसे एक भावांश कोई ज्ञान करले, कोई अभावांशका ज्ञान करे यह बात नहीं होती। क्योंकि यदि अलग अलग भाव और अभाव हो जाय तो न कुछ पदार्थ ही रहेगा न तत्त्व ही रहेगा। इस से यह जानना चाहिए कि समस्त पदार्थ कथंचित् सत् है कथंजित् असत् है। अर्थात् वे उभयरूप हैं तो अभावप्रमाणकी सिद्धि एक अंश बताकर नहीं की जा सकती है।

भावसे अभावके ग्रहणकी संभवता—और, भी जो कहा था कि पदार्थमें भाव और अभाव दोनों हैं तो जिस समय भावकी उत्पत्ति होती है तो भाव बनता है, जब अभावका ज्ञान करते हैं तो अभाव बनता है, यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि अभावका अनुभव हुआ, तो अनुभवमें आयी हुई जो चीज है वह अभावरूप नहीं रहती। यह भी बात नहीं है कि जैसे लोगोंको पदार्थोंके जाननेका भाव होता है इसी प्रकार पदार्थोंके अभाव जाननेका भी भाव होता हो। और जो जिघृक्षाकी बात कही सो जाननेकी इच्छा होनेसे ज्ञान नही होता किन्तु इन्द्रिय और मन मात्रसे ज्ञान की उत्पत्ति होती है। अर्थात् इन्द्रियां प्रबल हैं। मन समर्थ है उसके सहारे ज्ञान बन गया। कोई जाननेकी इच्छा करे तो भी ज्ञान बन जाता है और कभी न जानने की इच्छा करे, कुछ भी जानना न चाहे फिर भी ज्ञान हो जाता है। जैसे सामनेसे बहुत सी चीजें गुजरती हैं उनको जाननेकी कौन इच्छा करता है पर ज्ञानमें आ जाती हैं इसलिये जाननेकी इच्छा करें तो, न करें तो, जब इन्द्रियां और मन सब विधि योग्यता मिल जाती है तो ज्ञान बन जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भावसे अभावका परिज्ञान - एक सिद्धान्त अभावको प्रमाण मान रहा है। जैसे चौकीको देखकर चौकी है ऐसा ज्ञानप्रमाण है और वह ज्ञान होता प्रत्यक्ष इसी प्रकार जो चीज भी नही है, जैसे यहाँ लोटा नहीं है तो लोटेका अभाव है, यह अभाव ज्ञान है यह भी प्रमाण है। ऐसा मानते हैं किन्तु जैन शासन यह कह रहा है कि लोटे से रहित चौकीका ज्ञान होना ही लोटेके अभावका ज्ञान है तो अभावप्रमाणवादियोंने यहाँ यह कहा था कि जिस प्रकारका प्रमेय होता है उस प्रकारका प्रमाण होता है। यदि सद्भावरूप है तो ज्ञान प्रमाण भी सद्भावरूप होगा। और, कोई ज्ञेय अभावरूप है तो प्रमाणभी वैसा होगा, तो इस पर आचार्यदेव समाधान करते हैं कि जो तुम्हारा कहना है कि भावरूप प्रत्यक्षसे अभाव नहीं जाना जाता यह कहना युक्त नहीं है, भावसे अभाव भी जाना जाता है और कभी अभावसे भाव भी जाना जाता है। किसी चीजके होनेसे-अमुक चीज नहीं है यह भी तो ज्ञान हुआ करता है। किसी चीजके न होनेसे अमुक वस्तु है यह भी ज्ञान हुआ करता है। घटाभाव प्रत्यक्षसे ही जाना जा रहा है। घटसे रहित चौकीको जान लिया तो प्रत्यक्षसे ही तो समझ लिया कि यहाँ पर लोटा नहीं है। तो झूठी प्रतिज्ञा अथवा समर्थन जहाँ प्रत्यक्षसे भी बाधा है, कैसे उचित हो सकता है। जैसे कोई कहने लगे कि अग्नि ठंडी होती है क्योंकि पदार्थ है, जो जो पदार्थ होते हैं वे ठंडे होते हैं जैसे पानी। वह भी पदार्थ है, तो अनुमान तो तुम बना लो, पर इससे तो प्रत्यक्षसे बाधा है। जो ऐसा कहता हो कि अग्नि ठंडी होती है तो झट उसके हाथपर आग उठाकर धर दो तब उसे पता हो जायगा कि ठंडी होती है या गरम। जहाँ प्रत्यक्षसे बाधा आती हो उसमें बहुत तर्क उठाना सङ्गत नहीं है।

भाव और अभाव दोनोंसे अभाव और भाव दोनोंके ग्रहणकी संभवता जो यह कहते थे कि जैसे भावात्मक जो प्रमेय है उसमें अभावकी प्रमाणता नहीं हो सकती। ऐसे ही अभावात्मकप्रमेयमें भावप्रमाण नहीं हो सकता। अभाव प्रमाणसे ही अभाव जाना जाता यह बात तुम्हारी गलत है अभावसे भी अभाव जाना जाता व भाव से भी अभाव जाना जाता है, जैसे आकाशसे कोई पत्ते नीचे नहीं गिर रहे तो पत्ते स्थिरतासे ठहरे हैं तो उससे यह जान गये कि यहाँ वायु नहीं चल रही हैं, पत्ते नीचे गिर रहे हों तो जानते हैं कि वायु चल रही है। भावसे अभावकी भी प्रतीति होती है, जैसे अग्निमें गर्मी है तो उस गर्मीको निरखकर ऐसा बोलकर कि इसमें ठंड नहीं है तो शीतलताके अभावका ग्रहण हो गया यह कहना युक्त नहीं कि जब कोई अभाव है तो प्रमाण भी अभाव होगा।

भावसे अभावका उद्भूत और परिग्रहण यह कहना भी युक्त नहीं कि जो जैसी वस्तु होती है वह उस ही प्रकारसे ग्रहणमें आती है, अभाव है तो अभाव प्रमाणसे ग्रहणमें आयगा, भाव है तो भाव प्रमाणसे ग्रहणमें आयगा। यह कहना यों ठीक नहीं कि भावसे अभाव भी किया जाता है और भावसे अभाव भी जाना जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। नहीं तो घड़ामें डंडा मारो और फूट जाय तो डंडा भावरूप है और उससे घड़ेका हो गया अभाव तो भावरूप डंडासे घड़ेका अभाव नहीं होना चाहिए, पर ऐसा होता है। अतः यह सिद्ध नहीं होता कि जो जिस प्रकारका पदार्थ है वह उस प्रकारसे ही किया जाता है। जैसे सद्भाव भावके द्वारा किया जाता है घड़ा मिट्टीसे ही बनेगा। घड़ा भी सद्भावरूप है और मिट्टी का पिण्ड भी भावरूप है। भाव अभावसे ही किया जायगा, अभाव अभावसे ही किया जायगा। यदि कहो कि इसमें तो प्रत्यक्षसे भी बाधा है तो दूसरी जगह भी मान लो कि प्रत्यक्षसे बाधा है अर्थात् अभाव भावसे जान लिया जाता है।

आत्मामें भावसे अभावकी परख—आत्मामें रागद्वेष नहीं है, इसकी परख इस शान्तिसे, धीरतासे, विशुद्ध ज्ञानसे कर ली जाती है। रागद्वेषका अभाव है इस आत्मामें, इसके जाननेके लिए कोई अलग अभाव प्रमाणकी जरूरत नहीं पड़ती। शुद्ध ज्ञान देखा, शुद्ध विचार देखा और जान गए, इसमें पक्षपात नहीं है। आत्मा स्वभावतः अपने स्वभावरूप है परके स्वभावरूप नहीं हैं। आत्मामें ज्ञान और आनन्दभाव है। कभी कर्मोंके उदयके वश होकर आत्मामें राग और द्वेष उत्पन्न तो हो जाते है, पर ये आत्माकी चीज नहीं हैं, आत्मा इन रागद्वेष आदिकसे प्रभावित होकर संसारमें खिचता फिरता है। रागद्वेषमें उपयोग द लगे, रागद्वेषरूप अपनेको न माने, ज्ञानमात्र अपनी श्रद्धा बनाये और यह संस्कार बना रहे, इसकी वृत्ति जगती रहे, तो नियमसे आत्माको मुक्ति होगी। पर रागद्वेषमें यह आत्मा लगा रहता है इससे संसारमें चक्कर खाता है, दुःखी होता है। इस आत्माका कल्याण करने वाला एक सम्यक्त्व ही है। अपने आपके स्वरूपका सच्चा परिचय हुए बिना कोई जीव संसारके दुःखोंसे छूट नहीं सकता। मोहमें यह जीव जिस पर्यायमें पहुंचता है उस ही पर्यायरूप अपनेको मान लेता है पशु हुआ तो पशुरूप अपनेको समझा, मैं यही तो हूँ, मनुष्य हुआ तो मनुष्यरूप अपनेको समझा, मैं मनुष्य हूँ, पुरुष हैं, तो यह अनुभव करते हैं कि मैं पुरुष हूँ स्त्री नहीं हूँ स्त्री हैं तो वे यह अनुभव करती हैं कि मैं स्त्री हूँ पुरुष नहीं हूँ। अरे आत्मा न तो स्त्री है न पुरुष है। पुरुष पर्यायमें रहकर भी आत्मा पुरुष नहीं है पुरुषपना तो एक पर्यायमें लगी है। आत्मा इन पर्यायों रूप तो नहीं है, न देहका पुरुषत्व है। आत्मा देहसे निराला है। तो जो अपने आपको सही स्वरूपमें विश्वास करेगा वह इन झंझटोंसे छूट जायगा, जो रागद्वेषको अपनायेगा, उसका अकल्याण होगा।

विकारोंकी परमार्थसे अवस्तुभूतता—देखो भैया! सारा व्यर्थका रागद्वेष है और छोड़ते बनता नहीं। रागद्वेष करनेसे कल्याण नहीं मिलता, जीवन ही गुजार रहे हैं। किसीसे प्रेम छोड़ देवें यह हिम्मत भी नहीं करते। विकार तो अत्यन्त असार बात है। प्रेम रागद्वेष मोह ये विकार न जगें फिर आत्मा तो विशुद्ध आनन्दमय है। इसके आनन्दमें कोई बाधक बन ही नहीं सकता यह जीव खुद रागद्वेषमें गिरकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बाहरी वस्तुओंको अपनाकर अपने आप दुःखी होता है। जैसे कोई पुरुष क्रोधके वश होकर ढेलेसे अपने आप अपना सिर फोड़ लेता है क्योंकि वह क्रोधसे विवश है, इसी तरह यह आत्मा रागद्वेषके वश होकर अपने आपको संसारमें भ्रमण कराता रहता है। सत्संगति और स्वाध्याय इन दो उपायोंसे यह ज्ञानी अपने ज्ञान स्वरूपकी ओर रहना चाहता है। तो जिस उपायसे यह आत्मा अपनेको ज्ञानरूप निरखा करे वह ही उपाय आत्माका भला कर सकने वाला है।

आत्महितके लिये तत्त्वज्ञानकी परम आवश्यकता – आत्महितके लिये हमें तत्त्वज्ञानके उपयोगकी आवश्यकता है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें ही है, परके स्वरूपसे नहीं है। कोई पदार्थ अपने स्परूपसे नहीं है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ का कुछ कर सकता नहीं है। कोईसा भी दृष्टान्त ले लो। प्रेरकसे प्रेरक दृष्टान्त ले लो। कुम्हारने चाकपर मिट्टीका पिण्ड रखकर घड़ा बनाया तो लगता ऐसा है कि देखो यह मिट्टीमें जबरदस्ती घड़ा बना रहा है, पर स्वरूप दृष्टिसे देखो तो उस समय भी कुम्हार अपने आपके अवयवोंसे अपना कार्य कर रहा है। पर वहां ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव है कि उस मृतपिण्ड पर जिस प्रकारसे वह कुम्हार अपने हाथका परिणमन कर रहा है उस प्रकारका वहां उस पर्यायका उद्भव हो रहा है। जैसा हाथ चलाता उसके अनुकूल उसमें पर्याय होती है इतनेपर भी कुम्हारने हाथसे मृत्पिण्डमें कुछ नहीं किया। एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव है तब फिर एक दूसरेका क्या करे ? कुछ नहीं कर सकता।

प्रत्येकका अन्य पदार्थोंपर अनधिकार यह मनुष्य चाहता है कि दुनियाके लोगोंमें हम अच्छे कहलायें और ये दुनियाके लोग मेरे बारेमें प्रशंसा करने लगें। अरे दुनिया ही खुद सपना है। तुम भी खुद सपना हो। चाहना अज्ञानता है और फिर चाहनेसे होता भी क्या है ? तुम क्या दूसरे पदार्थके कुछ परिणमनको कर दोगे ? जब लड़का आज्ञा नहीं मानता तो पिता विवश हो जाता है। जिसपर वह अपना पूरा अधिकार समझता था वह भी बात नहीं मान रहा। अरे वह तो मोहमें उसपर अपना अधिकार समझता था। किसी भी पदार्थका किसी भी अन्य पदार्थपर कोई अधिकार नहीं। यदि कोई किसीके आधीन रहना चाहता है तो या तो वह हितबुद्धिसे रहना चाहता है कि मेरा इससे हित होगा, मेरा आत्मा सावधान बना रहेगा। ज्ञानदृष्टि रहेगी, कल्याण होगा, और या फिर किसी विषयके साधनोंके भावसे आधीन रहना चाहता है। मैं इसके आधीन रहूँगा, आज्ञा मानूँगा तो विषयोंके सब साधन ठीक–ठीक मिल जायेंगे। तो जो कोई भी किसीके आधीन रहना चाहता है वह अपनी स्वतन्त्रतासे ही अपने आपके भावोंके अनुसार अपनी ही ओरसे आधीन रहता है। कोई किसीको आधीन रखता नहीं है। प्रत्येक पदार्थ स्वयं परिपूर्ण है और वह अपने आपमें ही अपना सत्त्व रखता है। किसी दूसरेका किसी दूसरेपर कुछ भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अधिकार नहीं है। देखिये ! जो कुछ भी अभाव है वह अपनी व्यवस्थासे है। जिस शरीरमें चैतन्यका अभाव है, चेतनमें रूप रस, गंध, स्पर्शका अभाव है तो ये सब उन पदार्थोंके स्वरूप हैं और वह अभाव वस्तुके असाधारण धर्मको देखकर जान लिया जाता है कि इसका अभाव है। अभाव जाननेके लिये कोई अलग प्रमाण नहीं माना जाता है।

उपचारात्मक अभावके औपचारिक भेद अभावप्रमाणवादियोंने यह भी एक घोषणा की थी कि अभाव वास्तवमें प्रमेय है और उसका ज्ञान फिर अभाव प्रमाण है। यदि अभाव प्रमेय न होता, चीज न होती तो उसके ये चार भेद क्यों किए जाते ? प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और सर्वथा अभाव। आचार्यदेव समाधान करते हैं कि यह अभावोंका जो चार प्रकारका रास्ता है वह कथनमात्र है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने ही कारण समूहसे अपने ही अपने स्वभावमें व्यवस्थित हैं, वे पदार्थ अपने ही कारणसे उत्पन्न होते हैं और उनके अपनेको किसी परसे कुछ मिलता नहीं है। यह पदार्थमें स्वयं एक स्वभाव पड़ा हुआ है। जैसे घड़ी अपने कल-पुर्जोंसे उत्पन्न है, अपने ही स्वभावमें पिण्डमें व्यवस्थित है और यह घड़ी चौकी आदिक पदार्थोंमें अपनेको मिला नहीं रही है एकमेक नहीं कर रही हैं। घड़ीसे अन्य जो पदार्थ हैं वे सबके सब घड़ीसे जुदे हैं, उन अन्य समस्त पदार्थोंसे जुदा एक घड़ी यह अपना स्वरूप रख रही है, इसमें अभाव अलगसे क्या है ? यह तो पदार्थका स्वरूप ही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें रहता है। किसी पर पदार्थ में अपनेको मिलाता नहीं है, क्योंकि जो पदार्थ अपनेसे भिन्न अन्य समस्त पदार्थोंसे अलग रहनेका स्वरूप रख रहा तो बस वह भावात्मक है।

प्रत्येक पदार्थकी स्वभावतः अन्यव्यावृत्तिरूपता देखिये, पदार्थोंमें यह उनकी एक विशेषता है, वस्तुका स्वरूप है कि प्रत्येक पदार्थ अन्य वस्तुसे हटा हुआ रहता है उसमें भिन्न अभाव माननेकी कोई जरूरत नहीं है, अगर अभाव भी कोई भिन्न वस्तु हुई तो अभाव अन्यसे भिन्न है, तो और और अभावकी कल्पना करें, फिर तो यह अभाव अभावसे अलग है, फिर रहा क्या ? सारा विश्व एक स्वभावरूप हो जायगा। पदार्थ स्वयं अपनेमें ऐसा स्वरूप रखते हैं कि अपने रूपसे तो वे हैं और पर रूपसे नहीं हैं। अब अभाव प्रमाण माननेकी क्या बात ? भाव जान लिया उससे ही अभावका ज्ञान होता है, एक अभाव माना गया इतरेतराभाव। मायने एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव होना, जैसे चौकी नहीं, चौकीमें घड़ी नहीं, तो इतरेतराभाव कोई जुदा अभाव नहीं है किन्तु उन भिन्न पदार्थोंका ऐसा स्वरूप है कि वह उसमें नहीं है यह उनमें नहीं है। सत्में यह गुण पड़ा हुआ है अन्यथा सत्नाम किसका। यदि पदार्थ पररूपसे भी सत् हो जाय तो पदार्थ ही क्या रहा तो घटादिक घड़ी चौकीसे जो अलग हो रहे हैं वे अपने स्वरूपसे ही हो रहे हैं, इतरेतराभावके कारण नहीं हो रहे हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्यथा उन्हीं अभावोंमें बतलावो जो चार प्रकारके अभाव माने–प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव आदिक ये भी अपनेमें एक दूसरेसे अगल हैं कि नहीं। फिर उनमें और अभावकी कल्पनाएं करें, यों अनवस्था हो जायगी।

दृष्टिसे लौकायतिकत्वका निर्णय - जितने पदार्थ हैं वे सब भावाभावात्मक हैं। वस्तुमें अनन्त धर्म होते हैं–और अनन्त धर्मात्मक वस्तुओंको उन उन दृष्टियोंकी अपेक्षा जानना बताना इसीके मायने है अनेकाँत स्याद्वाद। स्याद्वाद कितना निर्विवाद सिद्धान्त है कि दृष्टियोंको बताकर प्रतिपादन किया जाय तो हर एक कोई माननेको तैयार हो जाय। जितने भी लोग हैं उन सबने जो जो कुछ भी समझा है तत्त्वके बारे में वह सब किसी न किसी दृष्टिसे सर्वसिद्ध हो जाता है। जो कोई भी जो कुछ कहता है उसकी दृष्टि पहिचानिये कि यह किस दृष्टिसे ऐसा कह रहा है। चारुवाक भी जो कह रहा है कि जीव आत्मा कुछ नहो है। जो कुछ है सो यही है जो लोगोंको नजर आता है। सो यह जब तक है सो है और जब नहीं रहा तो बस लोग कहते हैं कि मर गया, एक शरीरमें जो बिजली थी वह बिजली बुझ गई, नहीं रही, इसे लोग मरना कहते हैं। लोग उसे जला देते हैं, गाड़ देते हैं। जीव और आत्मा कुछ नहीं है. ऐसा चारुवाक कह रहा है, तो जरा उसकी दृष्टि तो पहिचानिये कि किस दृष्टिसे कह रहा है। वह कह रहा है सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी दृष्टिसे। जो कुछ नजर आता है इतना ही मात्र सब कुछ है, इतना ही भाव रखकर कह रहा है। तो वह गुस्सा किये जाने लायक नहीं है कि उसपर नाराज हों। बेचारेको इतनी ही दृष्टि मिली और उस दृष्टिसे ही सबका निर्णय करना चाह रहा रहा है। उसने अपनी बाहरमें दृष्टि लगाई है। अरे जरा बाहरसे आंखें बन्द करके इन्द्रियका व्यापार रोककर कुछ देखो तो सही। न देखो बल्कि शान्त होकर बैठो तो सही। किसी भी पर पदार्थको अपने ज्ञानमें मत लो और निरखो कि अपने आपमें कोई ज्ञान ज्योति मालूम पड़ती है कि नहीं। वह जान जायगा और समझेगा कि वही मात्र तत्त्व नहीं है जो इन्द्रियसे नजर आया। अतीन्द्रिय भी तत्त्व है। फिर आत्माका स्वरूप वर्णन करिये। विश्वास कर लेगा।

दृष्टिसे क्षणक्षयताका निर्णय –जो लोग आत्माको सर्वथा विनाशीक मानते हैं, उत्पन्न हुआ और तुरन्त नष्ट हो गया, वह देर तक ठहरता ही नहीं क्षणक्षयवादियोंने यह कहा है कि जैसे दीपक जल रहा है तो उस दीपकमें नया नया तैलका बूँद जल रहा है, लगता ऐसा है कि वही दीपक है। जो १५ मिनटसे बराबर जल रहा है पर १५ मिनट पहिले जो दीपक था, जो बूँद जल रही थी वह बूँद वह दीपक अब नहीं है। इस समय नया दीपक है, तो जैसे वह प्रति समय दीपक जल रहा है और संतानमें रहनेके कारण हमें एक समझमें आता है इसी प्रकार इस शरीर में आत्मा प्रति समय नये नये बनते रहते हैं और भ्रमसे चूँकि वे सिलसिलेमें नये बन रहे हैं इससे एक मालूम होते हैं। तो ऐसे सर्वथा एक अनित्य मानने वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सिद्धान्तकी दृष्टि तो परखिये कि कौनसी दृष्टि लेकर वह ऐसा समझ रहा है। उसने ली पर्याय दृष्टि। पर्याय मात्रको उसने पूरा आत्मा समझा तब वह ऐसा कह रहा है। उसको समझायें कि ये अवस्थाएं जिसमें होती हैं वह आधारभूत कोई तत्त्व तो होगा, तो वह द्रव्यदृष्टिको पिछान लेगा तो यह भी स्वीकार कर लेगा कि आत्मा शाश्वत् है, तो द्रव्यदृष्टिसे आत्मा नित्य है पर्याय दृष्टिसे आत्मा अनित्य है।

http://www.jainkosh.org

दृष्टिसे शाश्वत सत्त्वका निर्णय – जो लोग केवल आत्माको सर्वथा नित्य अपरिणामी मानते हैं, उसमें कुछ तरङ्ग ही नहीं उठती है तो यह उन्होंने द्रव्यदृष्टिसे ही तो माना। उन्हें पर्यायदृष्टिकी समझ करायें कि कोई भी वस्तु किसी भी अवस्थामें रहे बिना सत् हो ही नहीं सकती। अवस्था प्रत्येक वस्तुकी होती ही है। उस अवस्था का ज्ञान करायें तो पर्यायदृष्टिसे वह निरखेगा और पर्यायदृष्टिसे यह स्वीकार कर लेगा कि आत्मा अनित्य है। स्याद्वादसे यह सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ भावाभावात्मक है, उसमें अभाव लानेके लिए अन्य अभाव प्रमाणकी या साधनकी जरूरत नहीं है। वस्तु अपने ही स्वरूपसे है, अपने स्वरूपसे है और पर स्वरूपसे नहीं है। ऐसे इन समस्त पदार्थोंको अपनेसे भिन्न समझें। इनमें मोह न लायें तो यह अपने मोक्ष मार्गके लिए एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ होगा।

तुच्छस्वभाव इतरेतराभावकी असिद्धि—अभाव प्रमाणवादियोंने इतरेतरा भावको भी प्रमाण माना है। अभावके ४ भेद किए हैं, उनमें इतरेतराभाव भी है। तो इतरेतराभावके सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि घड़ा कपड़ेसे अलग है। तो घड़ेमें कपड़े का अभाव होना, कपड़ेमें घड़ेका अभाव होना इसीका नाम तो इतरेतराभाव है; तो घड़ा कपड़ा आदिकसे जो अलग हटा हुआ है, उससे रहित है तो क्या वह इतरेतरा-भावके प्रयोगके कारण रहित है? या स्वतः घड़ा कपड़ा आदिक वस्तुवोंसे अलग है। यदि स्वतः अलग है तब फिर अभाव माननेकी जरूरत ही क्या? पदार्थ स्वयं ही अन्य पदार्थसे अलग हटा हुआ रहता है यह पदार्थका ही स्वरूप है। यदि कहो कि इतरेतराभावके कारण घड़ा कपड़ा आदिक वस्तुवोंसे अलग है तो इतरेतराभाव भी भावसे अलग है कि नहीं है? इतरेतराभाव सद्भावसे अलग नहीं है. ऐसा माननेमें तो तुम्हारे ही मतका व्याघात है जो वह इतरेतराभाव सद्भावरूप हो जायगा, सो भावसे अलग तो मानना ही पड़ेगा तो इतरेतराभाव भावसे जो अलग है, सत्तासे जो हटा हुआ है वह क्या स्वयं ही हटा हुआ है या अन्य इतरेतराभावके कारण हटा हुआ है? यदि स्वतः ही हटा हुआ है तो इसी तरह सारे पदार्थ अन्य पदार्थसे जो अलग सत्ता रखते हैं सो अपने स्वरूपसे रख रहे हैं। इतरेतराभाव माननेकी क्या आवश्यकता रही? तुच्छाभावरूप इतरेतराभाव कोई वस्तु नहीं है यदि कहो कि अन्य इतरेतराभावके कारण इतरेतराभाव भावसे अलग हटा हुआ रहता है तो अन-वस्था दोष हो जायगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असाधारण धर्मके ही कारण अन्यपदार्थोंसे व्यावृत्तिकी सिद्धि — अब यह भी बतावो कि चार जो अभाव हैं वे अभाव एक दूसरेसे अलग हैं या नहीं ? जैसे प्रकरणमें इतरेतराभावका कथन चल रहा है तो इतरेतराभाव प्रागभाव आदिकसे हटा हुआ होता है या नहीं ? नहीं हटा हुआ तो कह नहीं सकते। अन्यथा फिर सभी अभाव एक हो जायेंगे। यदि हटा हुआ है तो अपने आप हटा हुआ है या अन्य इतरेतराभावके कारण हटा हुआ है ? यदि अपने आप अन्य पदार्थोंसे हटे हुए रहते हैं। ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है ? यदि इतरेतराभाव अन्य इतरेतराभावके कारण प्रागभाव आदिक अभावोंसे हटा हुआ है तो अनवस्थादोष हो जायगा। फिर उसमे भी प्रश्न चलेंगे। इससे यह मानना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने ही असाधारण धर्मके कारण अपने आपके स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपसे नहीं है। परके स्वरूप से पदार्थ नहीं है ऐसा माननेमें कोई अभाव नामक प्रमेय माननेकी जरूरत नहीं है।

इतरेतराभावके स्वरूपकी असिद्धि — अभी एक प्रश्न और किया जा रहा है कि इतरेतराभाव भी कुछ अपना स्वरूप रहता है या नहीं ? असाधारण धर्म बिना तो पदार्थकी विशेषता बनती ही नहीं। इतरेतराभाव भी यदि प्रमेय है तो उसमें कोई न कोई धर्म अवश्य होना चाहिए। तो इतरेतराभावमें जो भी स्वरूप माना, जो भी असाधारण धर्म माना तो यह बतलावो कि उस असाधारण धर्मसे नहीं हटा हुआ इतरेतराभाव है या असाधारण धर्मसे नहीं हटा हुआ इतरेतराभाव है या असाधारण धर्मसे हटा हुआ है ? दोनोंमें ही पूर्वकी तरह दोष आयगा, और, पदार्थमें भी बतलावो कि किसी पदार्थका यह इतरेतराभाव भेद करता है ? क्या असाधारण धर्मसे न हटे हुए पदार्थका भेद करता है या असाधारण धर्मसे हटे हुए पदार्थका भेद करता है ? जैसे घड़ा कपड़ा आदिक नहीं है तो घड़ेका जो कपड़ेसे भेद किया तो किस प्रकारके घड़ेसे भेद किया ? घड़ेमें रहने वाला जो असाधारण धर्म है उससे सहित याने न हटे हुए घड़ेका भेद किया या घड़ेमें जो भी स्वरूप पाया जाता है उस स्वरूपसे रहित घड़ेका भेद किया ? यदि कहो कि असाधारण धर्मसे न हटे हुए घड़ेका भेद किया तो फिर एक व्यक्तिमें भी भेद क्यों नहीं बना डालते ? जब असाधारण धर्मसे सहितका भेद किया जाने लगा तो घड़ा कपड़ेसे अलग है बजाय इसके घड़ा घड़े से भी अलग है, ऐसा क्यों नहीं मान लिया जाता ? यदि कहो कि असाधारण धर्मसे हटे हुएका भेद करता है तो स्वयं भी घट कोई वस्तु नहीं रही। भेद कहाँ कहेंगे ? घटमें घटका कोई धर्म ही नहीं रहा। हाँ पटमें रहने वाला जो असाधारण धर्म है, उससे घड़ेका भेद किया तो स्वयं ही वह कपड़ा आदिकके धर्मोंसे हटा हुआ था ही। फिर इतरेतराभाव माननेकी क्या जरूरत है ?

स्वयं परव्यावृत्त पदार्थोंमें इतरेतराभावके कथन द्वारा परव्यावृत्तिका प्रतिपादन — प्रत्येक पदार्थ अन्य पदार्थके असाधारण धर्मसे स्वयं रहित है इतरेतरा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावको परस्पर व्यावृत्तिरूपता बतानेके लिये, समझानेके लिये उपचारसे कहा गया है। पदार्थ तो स्वयं ही अपने आप अन्य पदार्थोंके अस्तित्वसे हटा हुआ रहता है। तो जब पदार्थ स्वयं ही अन्य पदार्थोंके असाधारण धर्मोंसे रहित रहा करता है तो इतरेतराभावकी कल्पना करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। जो स्वयं हटा होता है पर पदार्थोंसे उसकी बात समझानेको इतरेतराभाव कहा गया है कि देखो एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव है।

असद्रूप इतरेतराभावसे घटमें पटके प्रतिषेधकी असिद्धि—अच्छा बतावो कि इतरेतराभाव एक वस्तुका दूसरे वस्तुमें अभाव बतलाता है, जैसे घटमें पट नहीं है तो इस प्रतिषेधके प्रसङ्गमें इतरेतराभाव घटमें क्या पटका प्रतिषेध कर रहा है या पट सामान्यका, याने समस्त कपड़ोंमें जो कपड़ापन है उस सामान्यका निषेध किया जा रहा है या पट व्यक्ति और पटता जाति दोनोंका निषेध कर रहा है? प्रश्नमें यह पूछा गया है कि एक पदार्थमें जो अन्य पदार्थका अभाव बताया है इतरेतराभावके कारण और उसे प्रमेय कहा है तो अन्य पदार्थोंकी व्यक्तियोंका अभाव है या व्यक्ति और जाति दोनोंका अभाव है? ऐसे तीन प्रश्न किए गए। पहिले पक्षके माननेमें अर्थात् घटमें पटका निषेध है तो यह बतलावो कि पट सहित घटमें पटका निषेध है या पटरहित घटमें पटका निषेध है? यदि कहो कि पट सहित घटमें पटका निषेध है तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है। कपड़ेसे अलग है यह, चाहे वह इस प्रकारसे ही समझमें आ रहा है फिर उसे पट विशिष्ट कहना यह प्रत्यक्ष विरुद्ध हुआ। यदि कहो कि घटमें पटत्व सामान्यका निषेध किया जा रहा है तो बतलावो कि पटसे विविक्त वह घट तो पटरहितपना जो घटमें है वह क्या इतरेतराभावसे अलग चीज है या इतरेतराभाव ही "घटमें पटरहित है, इस रहितता" शब्दसे कहा गया है। यदि कहो कि घटकी जो पटरहितता है वह इतरेतराभावसे अलग है, तो यह तो माननेकी सही बात है। इतरेतराभाव अलग पड़ा रहे तो घटमें पटका अभाव अपने आप हो गया। फिर इतरेतराभावकी कल्पना करनेसे कोई लाभ नहीं? यदि कहो कि इतरेतराभाव ही घटकी पट रहितता शब्दसे कहा जाता है तो जिस अभावसे पटरहित घटमें पटके अभावका व्यवहार किया गया वह अभाव अन्य है और रहित शब्दसे कहा गया अभाव अन्य है, सो एक वस्तुमें दो इतरेतराभाव आ गए।

असाधारण धर्म द्वारा ही एक पदार्थमें अन्य पदार्थोंके प्रतिषेधकी सिद्धि—भैया! इतरेतराभावकी विडम्बना करनेकी जरूरत नहीं है। समस्त पदार्थ अपनी सत्ताको लिये हुए हैं और अन्य पदार्थकी सत्तावोंसे जुदे हैं। यह पदार्थका ही स्वरूप है इसीका नाम असाधारण धर्म है। जो अन्य पदार्थोंमें न पाया जाय उसे असाधारण धर्म कहते हैं जैसे आत्माका चैतन्यस्वरूप है तो चैतन्य असाधारण गुण है, अर्थात् आत्माको छोड़कर अन्य पदार्थमें चित्त्व गुण पाया नहीं जाता है। इसीसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असाधारण धर्म न हो पदार्थमें तो पदार्थ अपना अस्तित्व रख ही नहीं सकते। सभी पदार्थोंमें असाधारण धर्म है। जीवमें ज्ञान दर्शनका होना यह जीवका असाधारण धर्म है, पुद्गलोंमें रूप, रस, गंध स्पर्श आदिकका होना असाधारण धर्म है। इस असाधारण धर्मसे ही पदार्थोंकी सारी व्यवस्था बनी हुई है। पदार्थ अपने स्वरूपसे हैं परके स्वरूपसे रहित हैं। इस व्यवस्थाको बनानेके लिये कोई अभाव नामक जुदा प्रमेय माना जाय इसकी कोई आवश्यकता नहीं और अभाव तो तुच्छ अभाव है। कुछ न होना, इस अभावसे तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अभाव ज्ञानमें आ ही नहीं सकता। तो यों पदार्थ स्वयं हैं और स्वयं ही अन्य पदार्थोंसे रहित हैं, यह बात प्रत्यक्षसे ही देखी जा रही है। अब उसके बीचमें कोई अभाव प्रमेय है, भावकी तरह वह भी वस्तु है। यह तो किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है कि अभाव भी कोई वस्तु है अथवा प्रमेय है और फिर उस अभावका ज्ञान करनेके लिये कोई तत्त्व प्रमाण माना जायगा यह व्यवस्था नहीं बनती है।

विवक्षित प्रत्येक पदार्थमें स्वसद्भाव व पराभाव धर्मकी स्वतः व्यवस्था—प्रत्येक पदार्थ सद्भावात्मक है और उनका ही सद्भाव अन्य पदार्थोंका अभाव कहलाता है और यह धर्म वस्तुगत है। पदार्थमें अपने स्वरूपका अस्तित्व होना और अन्य पदार्थोंके स्वरूपका नास्तित्व होना, ये अस्तित्व और नास्तित्व उस ही पदार्थके दोनों धर्म हैं। एक अनुजीवी धर्म है। एक प्रतिजीवी धर्म है। तो अन्य पदार्थोंका नास्तित्व होना, पदार्थका स्वयंमें धर्म न माना जाय, जैसे घटमें पटका नास्तित्व होना यदि यह घटका धर्म न माना जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि घटमें पटके अभावरूप धर्मका तो अभाव रहा, तो वह घट पट बन गया। वस्तुसांकर्य हो जायगा। यदि वस्तुका ही स्वयंका यह धर्म न माना जाय कि अन्य पदार्थका नास्तित्व उस वस्तुमें है तो समस्त वस्तुवोंका सांकर्य हो जायगा। इससे यह सुगम व्यवस्था मानना ही चाहिए कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है, यह भी पदार्थका धर्म है और अन्यके स्वरूपसे नहीं है, यह भी उसी पदार्थका धर्म है।

पदार्थमें प्राप्त व अप्राप्त पररूपताके प्रतिषेधके विकल्प इतरेतराभावके दृष्टान्तमें घट और पटके अन्योन्याभावका उदाहरण दिया है अर्थात् घटमें पट नहीं है इस प्रकार पटरूपताका जो प्रतिषेध किया जा रहा है अभाव प्रमाणवादियों द्वारा सो वह पटरूपताका प्रतिषेध क्या प्राप्तका प्रतिषेध है या अप्राप्तका। याने घटमें पटरूपता प्राप्त थी उसका निषेध किया जा रहा है या घटमें पटरूपता है ही नहीं उसका निषेध किया जा रहा है। तो प्राप्तका यदि निषेध होने लगे तो पटमें भी पटरूपताका निषेध होने लगे क्योंकि पटमें भी पटरूपता प्राप्त है। यदि कहो कि अप्राप्त पटरूपताका प्रतिषेध है अर्थात् पटरूपता घटमें नहीं है उसका निषेध है तो जो प्राप्त ही नहीं है उसका निषेध क्या किया जा सकता है। जो पहिले हो, जिसकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्राप्ति हो तो निषेध किया जा सकता है. जब प्राप्ति ही नहीं है तो उसका क्या निषेध किया जायगा। जैसे जिसने पानी प्राप्त नहीं किया उस पुरुषके इस प्रकार प्रतिषेध कोई नहीं करता कि इसका कमण्डल जल रहित हो गया। जल था ही नहीं तो मुक्त कैसे रहा जाय ?

सम्बन्धका प्रतिषेध इतरेतराभावका अविषय—यदि यह कहो कि अन्य जगह तो पटरूप प्राप्त है उसका यहाँ घटमें निषेध किया जा रहा है अर्थात् पटमें पटरूप है और जिस जगह कपड़ा रखा है उस जगहमें प्राप्त है पट, उसका निषेध किया जा रहा है कि इस घटमें पट नहीं है। तो पूछते हैं कि इस निषेधमें तुमने सम्बन्धका निषेध किया। सम्बन्ध होते हैं दो प्रकारके—एक समवाय सम्बन्ध और दूसरा संयोग सम्बन्ध। तो क्या समवायका प्रतिषेध किया है ? समवायका प्रतिषेध तो बन नहीं सकता क्योंकि पटादिकमें सम्बद्ध रूपादिकका घटादिक अन्य वस्तुओंमें अन्योन्याभावसे अभावका व्यवहार नहीं होता, किन्तु स्वयं साक्षात् होता है। कपड़ेका जो रूप है उसका समवाय कपड़ेमें है घटमें नहीं है, इसी वजहसे घटमें पट नहीं यह व्यवहार किया जाता है, पर अन्योन्याभाव कोई एक प्रमेय अलग हो और उस प्रमेयके कारण घटमें पटरूप आदिकका समवाय प्रतिषेध किया जाता हो ऐसा तो व्यवहार भी नहीं पाया जाता। किसीको भी यह कहते हुए नहीं देखा कि इस घड़ेमें पट आदिकके रूप आदिक शक्तियोंका समन्वय नहीं है। सीधे ही बोलते हैं कि घटमें घट ही है, पट आदिक नहीं है। यदि कहो कि संयोग सम्बन्धका निषेध किया जा रहा है तो वह तो अयुक्त है क्योंकि घट और पटका कभी संयोग भी बन सकता है। इस संयोगका पूरा इस प्रकार कैसे निषेध कर सकते ? यदि कहो कि संयोग रहित घटमें अर्थात् जहाँ कपड़ेका संयोग नहीं है ऐसे घटमें पटका प्रतिषेध किया है, संयोग वाले घटमें पटका निषेध नहीं किया। अर्थात् जिस घड़ेपर छन्ना रखा है उसमें हम पटका निषेध नहीं कर रहे, पर जहाँ छन्ना रखा ही नहीं है, ऐसे घटमें पटका निषेध कर रहे हैं। तो कहते हैं कि इस प्रकार तो पटसंयोग रहितपनेका अभाव है। अभाव कोई दूसरा हो और फिर संयोगरहित घटमें पटका अभाव माना जाय ऐसा तो युक्त नहीं है। इससे घटमें पटका प्रतिषेध युक्त नहीं है। इस इतरेतराभावके खण्डनके प्रसङ्गमें तीन पक्ष उठाये गये थे कि इतरेतराभाव द्वारा जो घटमें पटका इतरेतराभाव बताया जा रहा है तो क्या घटमें पटका निषेध किया जा रहा है ? या पटत्व सामान्यका या दोनों का ? कपड़ा व्यक्तिका, या कपड़ा जातिका या कपड़ा व्यक्ति जातिका ? ऐसे तीन विकल्प किए गए थे उनका खण्डन किया गया है।

असद्रूप इतरेतराभावके द्वारा घटमें पटत्व सामान्यके प्रतिषेधकी असिद्धि—अब दूसरा पक्ष है पटत्व सामान्यका निषेध किया जाना। तो घटमें पटत्वका निषेध किया जाना भी संभव नहीं है क्योंकि पटत्व किसी एक जगह सम्बन्धित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है उसका किसी अन्य जगह सम्बन्ध नहीं है इस कारण उस पटत्वका प्रतिषेध ही नहीं बनता, किन्तु पदार्थ ही दो अलग अलग हैं और प्रत्येक पदार्थमें उसका अपने आपका रूप आदिकका सम्बन्ध पाया जाता है। एकमें दूसरेका सम्बन्ध नहीं पाया जाता, यह वस्तुका स्वयंका स्वरूप है और इसी तरह दोनोंका भी प्रतिषेध नहीं बन सकता, क्योंकि व्यक्तिरूप पटका निषेध किया इस विकल्पमें और पटत्वका प्रतिषेध किया इस विकल्पमें जो दोष दिये गये हैं वे सब दोष उभय प्रतिषेधमें आते हैं इस कारण यह बात नहीं बन पाती कि इतरेतराभावके द्वारा घटमें पटके अभावकी व्यवस्था बने, किन्तु पदार्थ स्वयं है, अपने अपने सद्भावको लिए है एकमें दूसरेका अभाव स्वयं अपने आप है।

इतरेतराभावपरिज्ञानपूर्वक घटपरिज्ञानकी असिद्धि - अब अभावप्रमाण वादीसे यह पूछा जा रहा है कि घटमें अन्य पदार्थ नहीं है इस अभावका अर्थात् इतरेतराभावका ज्ञान होनेसे घटका ज्ञान होता है, अथवा यह घट है ऐसा घटज्ञान होनेसे इतरेतराभावका ज्ञान बनता है अर्थात् असद्रूप इतरेतराभावको प्रमाण माननेवालोंसे पूछा जा रहा है कि घटका जो ज्ञान बना है वह इतरेतराभावके ज्ञानपूर्वक बना है वह इतरेतराका जो ज्ञान बनता है वह घटके ग्रहण पूर्वक बनता है, पहिले विकल्पमें यह पूछा है कि इतरेतराभाव तुमने जाना तब घटकाज्ञान हुआ या घटको तुमने जाना तब इतरेतराभावका ज्ञान हुआ ? इन दोनों पक्षोंमेंसे यदि पहिली बात कहोगे कि पहिले इतरेतराभावका ज्ञान हुआ तब फिर घटका ज्ञान हुआ तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष है वह इस प्रकार है कि इतरेतराभाव यहाँ यह माना है कि घटमें अघटोंका अभाव, यह घटका इतरेतराभाव है, इस प्रकार घटके सम्बन्धीरूपसे ग्रहण किया हुआ इतरेतराभाव है तो वह इतरेतराभाव घटका विशेषण बना न कि अन्य पदार्थोंके सम्बन्धी रूपसे उपलभ्यमान इतरेतराभाव घटका विशेषण होगा। अन्यथा याने यदि एकके सम्बन्धसे होनेवाला विशेषण अन्य पदार्थका विशेषण बनजाय तो सब ही सबके विशेषण बन जायेंगे तो वस्तु व्यवस्थाका लोप हो जायगा, फिर कुछ भी न रहेगा. जैसे कौवा काला है तो कालापनके सम्बन्धसे जैसे उपयभ्यमान है इसी प्रकार कालेपनके सम्बन्धसे अन्य पदार्थ भी उपलभ्यमान हो जायेंगे तो फिर कौवाका क्या विशेषण रहा ? सभी कृष्ण बन गए। तो घटसे सम्बन्धी यह इतरेतराभाव है यह परिज्ञान घटके परिज्ञान होनेपर ही हो सकता है। जैसे जान लिया कि यह घड़ा है, तो जैसा स्वयं यह अपने आप है उस घटका जब ग्रहण हो जाता है तभी तो उससे सम्बन्धित इतरेतराभावका ज्ञान हो सकता है सो वह भी पट आदिकसे व्यावृत है, जुदा है इस प्रकार जान लेना चाहिए। तो जब तक पहिले घटके सम्बन्धीरूपसे व्यावृत्तिकी उपलब्धि न हो इतरेतराभावका ज्ञान न हो, तब तक व्यावृत्तिसे विशिष्ट याने इतरेतराभावसे विशिष्ट घट नहीं जाना जा सकता। जब तक पट आदिकसे व्यावृत रूपसे घट न जान लिया जाय, अर्थात् इतरे-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तराभावसे विशिष्ट घट न जान लिया जाय तब तक यह भी नहीं बता सकते कि यह घटका इतरेतराभाव है । यों अन्योन्याश्रय दोष होता है ।

इतरेतराभावकी पृथक् व्यवस्थाका अभाव—इतरेतराभावकी अलगसे भी व्यवस्था नहीं बनती है । कहीं भी अभावका ज्ञान करके कोई पुरुष तुच्छाभावका ज्ञान नहीं करता, किसी वस्तुके सद्भावका ही ज्ञान किया करता है । कोई भी प्रसंग ऐसा न मिलेगा जहांपर किसी पुरुषने असत्का, अभावका बोध किया । जो है ही नहीं कुछ, उसका बोध त्रिकालमें हो ही नहीं सकता है । वे सब किसी वस्तुके सद्भावरूपसे हो माने जा पाते हैं तो अभाव कोई वस्तु नहीं, प्रमेय नहीं, तो अभावका ज्ञान करने वाला कोई अलगसे अभाव प्रमाण नहीं है ।

घटपरिज्ञानपूर्वक इतरेतराभावकी असिद्धि - यदि यह कहोगे कि इतरेतराभावका जो ग्रहण है वह घटज्ञानपूर्वक है अर्थात् पहिले घटका ज्ञान हुआ पश्चात् इतरेतराभावका बोध होता है ? घट जान लिया जैसा कि वह अन्य वस्तुओंसे रहित है ऐसा केवल अपने स्वरूपमें रहने वाले घटका ज्ञान किया तो इतरेतराभावका ग्रहण हुआ कि इस घटमें अन्य पदार्थोंका अभाव है । तो इसकी मीमांसामें आचार्यदेव कहते हैं कि यहांपर भी अभाव विशेष्य है और घट विशेषण है तो जो विशेषण बना उसका ग्रहण पहिले खोजना चाहिए । क्योंकि विशेषणका ग्रहण न होनेपर विशेष्यमें बुद्धि नहीं होती जैसे कि लक्षणका ग्रहण न होनेपर लक्ष्यमें इतरेतराभावका ग्रहण माना जाय तो घट जो पट आदिकसे व्यावृत्त है उसका तो पहिले ग्रहण खोज लेना चाहिए । जब तक अन्य वस्तुवोंसे व्यावृत्त घटका बोध न हो तो उसके इतरेतराभावका बोध कैसे होगा ? यदि घटका ग्रहण पहिले किया जाता है तो यह बतलावो कि घटका जो ग्रहण हो रहा है वह पट आदिकसे व्यावृत्त याने न मिले हुए घटका ग्रहण हो रहा है या पटादिकसे मिले हुए घटका ग्रहण किया गया ? पट आदिकसे मिला हुआ यदि घट है तो वह घटरूप हो ही नहीं सकता । जैसे पटसे मिला हुआ पट है तो वह क्या घट बन जाता है ? यदि कहो कि अन्य पदार्थोंसे अलग रहते हुए घटमें घटरूपताकी घटित होती है तो यह बतलावो कि क्या कुछ ही कपड़ों आदिकोंसे व्यावृत्त घटकी घट रूपताकी प्रतिपत्ति हुई या समस्त पट आदिक पदार्थोंसे व्यावृत्तमें घटरूपताकी प्रतिपत्ति हुई ? यदि कहो कि कुछ ही पट आदिकोंसे वह दूर है इससे उसमें घटरूपताकी प्रतिपत्ति हुई तो कुछ अन्योंसे व्यावृत्त ही ज्ञात हुआ, सब अन्योंसे व्यावृत्त तो ज्ञात न हुआ और कौन सा वह एक कारण है कि कुछसे यह अलग रहा और समस्त पटादिक व्यक्तियों से अलग नहीं रहा ? और समस्तसे अलग न रहा तो उनरूप घट हो गया यदि कहो कि समस्त पट आदिकसे यह घट अलग है तो समस्त पट आदिक तो बहुत हैं उनकी व्यावृत्तियां भी अनन्त हुई, अनन्तोंका ज्ञान नहीं हो सकता । जब उनका बोध कर लिया जाय तब यह जाना जा सकेगा कि सभी कपड़ोंसे रहित यह घड़ा है । तथा इसमें भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतरेतराश्रयदोष है। जबतक पट आदिकोंसे रहित घटकी घटरूपता नहीं बनती तबतक घटसे पट आदिकोंका अलग नहीं सिद्ध किया जा सकता, और जब तक घटसे पृथक् हुए पट आदिकोंकी पटादिक रूपता न बने तब तक पट आदिकसे घट अलग है यह सम्भव नहीं हो सकता। इससे एक अवस्तुका पोषण करनेके लिए अनेक युक्तियां ढूंढना और जैसे तैसे उन युक्तियोंसे अतथ्योंसे तथ्यपर लदना इसमें कौन सा हित है?

सद्भावकी यथार्थ मान्यतामें ही चित्तकी समाधानरूपता—भैया! जो बात सीधी है उसे मान लेना चाहिए। ज्ञानमें जो कुछ आता है वह सत् आता है। ज्ञानमें असत् नहीं आता। यदि असत् किसी रूपमें ज्ञानमें आता है तो वह सर्वथा असत्रूप अभाव नहीं आता किन्तु किसी सत्का ज्ञान हो तो उसके सहारे किन्हीं अभावोंके रूपसे ज्ञान किया जाता है। जो कुछ भी नहीं है, तुच्छ है, असत् है उस का तो नाम तक भी रखा हुआ नहीं हो सकता। जितने भी नाम हैं। शब्द हैं वे सब किसी सत्को बतलाते हैं। तो जो कुछ है भी नहीं उसका कोई ज्ञान कर ही नहीं सकता है। तो अभाव है, शून्यरूप है उसका ज्ञान करने वाला कोई अलग प्रमाण है यह युक्त नहीं बैठता, किन्तु सद्भूत वस्तु ही प्रत्यक्ष अनुमान आदिक प्रमाणोंसे जाना जाता है और वह वस्तु अन्य वस्तुवोंसे मिलती है इस प्रकार प्रत्यक्षसे जान रहे हैं अर्थात् जैसे घटमें घटपनेका प्रत्यक्ष हो रहा है इसी प्रकार घटमें अन्य पदार्थका अभाव है यह प्रत्यक्षसे ज्ञात हो रहा है। यह यह ही है, यह अन्यरूप नहीं है। यह सब चीज उस एक प्रत्यक्ष प्रमाणसे है और जहां अनुमानसे जाना हो पदार्थ वहां अनुमानसे अभाव जान लिया जाता है। अभाव अवस्तुको जाननेके लिए कोई अलग प्रमाण माननेकी आवश्यकता नहीं हैं। तो इतरेतराभावसे जो एक निर्देशको बताया था कि अभावके चूंकि ४ भेद हैं तो अभाव और कुछ है। जो कुछ भी न हो उसका भेद कैसे किया जा सकता है? तो बताया गया है कि अभाव भी एक सद्भावके ज्ञान के माध्यमसे जाना जाता है, इस प्रकार ये इतरेतराभाव आदिक भी अभाव एक वस्तुके सद्भावके माध्मसे जाने जाते हैं। कोई ये अलग प्रमेय नहीं हैं जिससे जाने वाले अभाव नामका कोई अलग प्रमाण माना जाय, इस प्रकार अभाव नामक न कोई प्रमाण प्रमेय सिद्ध होता है और न अभावको जाननेके लिए अभाव प्रमाण ही अलग सिद्ध होता है।

अभावविषयक सिद्धान्त—जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाता है कि आँखोंसे देखा और सद्भाव जान लिया कि अमुक पदार्थ है तो जैसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे सद्भाव जाना जाता है इसी प्रकार जैसे घड़ा यहाँ नहीं है और जान गए घड़ेका अभाव है, तो अभाव प्रमाणसे जाना जाता है। ऐसा मीमांसक लोग कहते हैं। जैन शासनमें अभाव प्रमाण कोई अलग ज्ञान नहीं है प्रत्यक्षसे ही कमरा जान लिया और प्रत्यक्षसे ही घड़ा नहीं है यह भी जान लिया तो अभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे यहाँ माना गया है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लेकिन मीमांसक लोग अभावको अलग प्रमाण मानते हैं और एक विवरण और भी देते हैं कि अभाव प्रमाण अगर कोई अलग वस्तु नहीं होता तो उसके ४ भेद क्यों किए जाते ? प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव। तो उसमेंसे इतरेतराभावकी बात चल रही है। इतरेतराभावका अर्थ है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव। जैसे घड़ेमें कपड़ेका अभाव और कपड़ेमें घड़ेका अभाव। एकका दूसरेमें अभाव होना इतरेतराभाव है। तो जैनशासन अलग इतरेतराभाव प्रमाण नहीं मानता। जैनशासनका सिद्धान्त है कि घट ही अपना ऐसा स्वरूप रख रहा है कि अपने स्वरूपसे तो है और परके स्वरूपसे नहीं है, यह पुस्तकका निजी स्वरूप है।

असद्रूप इतरेतराभाव द्वारा विवक्षित घटकी अन्य घटोंसे व्यावृत्ति की असिद्धि - यदि परव्यावृत्तिको विवक्षित वस्तुगत धर्म न मानोगे और इतरेतराभाव कोई अलग प्रमेय है उस इतरेतराभावके कारण यह व्यवस्था है कि घड़ेमें कपड़ा नहीं, कपड़ेमें घड़ा नहीं। तो यह बताओ कि घटकी व्यावृत्ति जैसे घड़ा आदिकसे की गई तो उसी तरह अन्य घटोंसे भी तो उसे अलग करना चाहिए। एक घड़ा है, यह घड़ा कपड़ा आदिक पदार्थसे जुदा है तो अन्य घड़ोंसे भी तो जुदा है। तो पट आदिकसे घटको तो तुमने जुदा सिद्ध कर लिया कि कपड़ा आदिक पदार्थोंसे घट अलग है इतरेतराभावके कारण घटकी व्यावृत्ति मान ली, पर अन्य घटसे व्यावृत्ति कैसे मानोगे ? क्या विवक्षित घटको घटरूपसे व्यावृत्त मानोगे या अघट रूपसे। याने जैसे घड़ेको अन्य घड़ोंसे जुदा समझते हैं तो क्या वह घड़ा अन्य घड़ोंसे घटरूपताके कारण जुदा है या अघटरूपसे ? याने यह घड़ा अघट रूप है इस कारण अन्यसे यह अलग है या यह घड़ा घट रूप है इस कारण जुदा है। दूसरे भी घड़े हैं यह भी घड़ा है। अब यह घड़ा अन्य घड़ोंसे जुदा समझा जाय तो घटरूपताके कारण या अघटरूपताके कारण ? यदि कहो कि घटरूपताके कारण जुदा समझा गया अर्थात् यह घड़ा तो घडा है, इसमें तो घटके लक्षण हैं, तो अन्य घड़ेसे अगर घड़ेसे अगर घटरूपताके कारण जुदा समझा तो घड़ा है इस कारण अन्य घड़ोंसे जुदा है ऐसा मानोगे तो वे अन्य घड़े न रहे क्योंकि यही घड़ा रह गया, यह घड़ा ही घटरूपताको रख रहा है इस कारण अन्य घड़ोंसे जुदा है ऐसा अगर मानोगे तो इसका अर्थ है कि अन्य घड़े घड़े नहीं रह गए। अगर कहो कि यह घड़ा अघट है इस कारण अन्यसे जुदा है तो इसका अर्थ है कि पटमें घटपना नहीं है तो फिर यह अन्य चीज बन गयी। यह स्वयं घड़ा नहीं रहा।

स्वरूपास्तित्वके कारण वितक्षित घटकी अन्य घटोंसे व्यावृत्ति – भैया ! पदार्थ स्वयं अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है यह बात यदि नहीं मानते और एक इतरेतराभाव अलगसे मानते हो कि इतरेतराभावके कारण यह पदार्थ अन्य पदार्थसे जुदा है तो अनेक आपत्ति आती हैं। अगर स्वरूपकी बात मान

Version 1

लो तो यह घड़ा भी घड़ा है मगर अपना स्वरूप अलग रख रहा है अन्य घड़े भी घड़े हैं पर वे अपना स्वरूप अलग रख रहे हैं. इतरेतराभावके कारण यदि व्यवस्था न मानोगे तो या तो यह घड़ा रहेगा या चौकी आदिक सर्वस्व। यह घड़ा अन्य घड़ेसे अलग है यह तुमने कैसे समझा ? इतरेतराभावके कारण समझो तो आपत्ति है और स्वरूपदृष्टिसे समझो तो आपत्ति नहीं है। यह घड़ा अन्य घड़ोंसे समान है, किन्तु इसकी आवान्तर सत्ता इसीमें है, अन्य घड़ोंकी उनकी सत्ता उनमें है।

अभाव व्यवहार हेतु द्वारा अभाव प्रमाणकी सिद्धिका प्रस्ताव अब मीमांसक शङ्का रख रहे हैं कि अभावको यदि जुदा प्रमाण न माना तो फिर अभाव के निमित्तसे जो व्यवहार चल रहा है, यह घड़ा नहीं है, अमुक चीज नहीं है. तो नहीं है का फिर व्यवहार कैसे चलेगा ? मीमांसक यह कह रहा है कि अभाव नामका प्रमाण है। अगर अभाव प्रमाण न माना तो अमुक चीज नहीं है, अमुक नहीं है तो ऐसा न न का व्यवहार फिर कैसे चलेगा ? इससे सिद्ध है कि व्यवहार न न का चल रहा है तो अभाव कोई अवश्य प्रमाण है जिसके बलपर न का व्यवहार चला करता है। जैसे जमीन है इस पर घड़ा नहीं है तो यह बतलावो कि क्या घटसे सहित जो भूतल है उसका नाम घड़ेका अभाव है या घटसे रहित जो भूतल है उसका नाम घड़ेका अभाव है। मीमांसक जन अपना पक्ष रख रहे हैं कि अभाव प्रमाण न मानोगे तो न का व्यवहार नहीं चल सकता क्योंकि बतलावो कि जैसे कहा कि इस कमरेमें घड़ा नहीं है तो घड़ा सहित कमरेका नाम घड़ेका अभाव है या घड़ा रहित कमरेका नाम घड़ेका अभाव है। घड़ा सहित कमरेको घड़ेका अभाव कह नहीं सकते, इसमें प्रत्यक्ष विरोध है यदि घड़ा सहित भूतल है तो घड़ाका अभाव कहां रहा। यदि घड़े से रहित भूतलका नाम अभाव है तो यह नाम मात्र ही भिन्न रहा, चाहे उसे घट रहितपना कहो, चाहे घटाभाव विशिष्टता कहो, बात एक ही है।

अभावज्ञानकी भावज्ञानपर निर्भरता—समाधानमें आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि कोई भूतल, जमीन क्या घटके आकार है जिससे तुम यह कहते कि घड़ा नहीं है, ऐसा कहनेपर प्रत्यक्ष विरोध है। याने घड़ेके आकार भूतल नहीं है। जो भूतल है वह घड़ेके आकाररहित होनेसे घड़ा नहीं ही है। घड़ा घड़ा है भूतल भूतल है यहां मीमांसक पुनः कह रहे हैं कि यदि भूतलसे भिन्न कुछ घटका अभाव नहीं है तो घटका सम्बन्ध होनेपर भी भूतलपर घट नहीं है यह परिज्ञान होना चाहिए। किन्तु ऐसा तो है नहीं। अतः जैसे भूतलसे भिन्न घट है इसी प्रकार भूतलसे भिन्न घटका अभाव भी है। इस शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर दे रहे हैं कि घटमें न होने वाला भूतलमें होने वाला जो असाधारण धर्म है उस असाधारण धर्मसे सहित जो भूतल है उसका नाम घटाभाव है ! घटका अभाव किसे कहते हैं ? जो जमीनमें लक्षण हैं वे लक्षण घटमें नहीं पाये जाते हैं, तो घटमें न पाये जाने वाले और जमीन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में रहने वाले असाधारण धर्मसे सहित जो भूतल है, जमीन है उस ही जमीनका नाम घटका अभाव है। और घटसे सहित दिखती हैं अनेकों जगह कि इसमें घट है और फिर कमरेकी उसी तरहकी स्थिति न ज्ञात हो तो उसका नाम घटका अभाव है।

अभावकी वस्तुधर्मता —देखिये भैया ! इतरेतराभाव क्या है कि जैसे चौकीमें पुस्तक नहीं, पुस्तकमें चौकी नहीं, तो यह व्यवस्था बनानेके लिए कोई अलग से अभाव न माना जायगा। क्या अभाव पुस्तकमें रखा है या अभाव चौकीमें है या चौकी और पुस्तकके बीचमें अभाव है ? चौकीका पुस्तकमें अभाव और पुस्तकका चौकीमें अभाव जो बताया जा रहा है वह किस जगह रखा है चौकीमें या पुस्तकमें या बीचमें ? बीचमें तो है नहीं। पुस्तकमें जो चौकीका अभाव है तो यह चौकीका धर्म है या पुस्तकका ? पुस्तकका धर्म है, पुस्तकमें जैसे पुस्तकका सद्भाव है तो यह पुस्तकका धर्म है और पुस्तकमें चौकीका अभाव है यह धर्म भी पुस्तकका ही है। पुस्तक अपने स्वरूपसे है और चौकी आदिकके स्वरूपसे नहीं है। यह जो धम है यह पुस्तकमें ही है। अस्तित्व और नास्तित्व ये इस ही पुस्तकगत धर्म हैं। चौकीमें नहीं है, बीचमें नहीं है, ये जो इतरेतराभाव हैं, पुस्तकमें चौकीका अभाव यह जो अभाव है यह न तो बीचमें पड़ा है और न चौकीमें रखा है किन्तु पुस्तकमें यह धर्म है। पुस्तक में पुस्तकके अतिरिक्त अन्य समस्त चीजोंका अभाव है, यह पुस्तकका धर्म है। स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति ये जो दो विकल्प हैं कि चीज कथंचित् है कथंचित् नहीं है। पुस्तक पुस्तकके रूपसे है, पुस्तक अन्य रूपसे नहीं है, तो यह है पुस्तकका धर्म, पुस्तक अन्यरूपसे नहीं है यह भी पुस्तकका धर्म है। अब इस नास्तित्वको माननेके लिए अलग इतरेतराभाव मानना और इतरेतराभावकी फिर यह व्यवस्था करें कि इतरेतराभावके पुरुषार्थसे ही पुस्तकमें अन्य चीजें नहीं पहुँचती तो इसमें आपत्तियां हैं। इसकी सिद्धि ही नहीं होती। इतरेतराभाव कोई अलग प्रमाण नहीं है।

असन्मात्र प्रागभावकी असङ्गतता —एक माना गया है प्रागभाव। इतरेतराभाव तो दो वस्तुओंमें घटाया गया है कि पुस्तकका चौकीमें अभाव, चौकीका पुस्तकमें अभाव, इन दो पदार्थोंसे घटाया गया है। प्रागभाव एकमें ही घटता है। जैसे मिट्टीके लोंदसे घड़ा बनता है तो जब तक वह मिट्टीका पिण्ड है तब तक घड़ा तो नहीं है तो मृत् पिण्डमें घड़ेका प्रागभाव है। जब तक घड़ा नहीं बनता तब तक घड़े का मृतपिण्डमें अभाव है तो मृतपिण्डमें घड़ेका प्रागभाव है ऐसा मीमांसक लोग कहते हैं कि प्रागभाव वास्तविक चीज है। देखिये ! मिट्टी पिण्डमें घड़ेकी सत्ता नहीं है तो वह अभाव प्रागभाव है। जैनशासन प्रागभाव नामका कोई तुच्छ अभाव नहीं मानता किन्तु घड़ेका मृत्पिण्डमें अभाव है, इसका अर्थ है कि मृत्पिण्ड है, मृत्पिण्डके सत्वके मायने ही घड़ेका प्रागभाव है। घड़ेका अभाव कुछ अलग चीज नहीं है। मृत्पिण्डका जो सद्भाव है वही उस घड़ेका अभाव है। अर्थात् उत्तर पर्यायका पूर्वपर्यायमें अभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
प्रागभाव कहलाता है। तो प्रागभाव पदार्थसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

सत्प्रत्ययविलक्षणता हेतु द्वारा प्रागभावकी वस्तुताका प्रस्ताव अब यहाँ अभावप्रमाणवादी कहता है कि अपनी उत्पत्तिसे पहिले घड़ा न था यह जो ज्ञान हुआ अर्थात् जब तक घड़ा नहीं बना उससे पहिले अर्थात् मृत पिण्डके समयमें घड़ा न था। जब घड़ा बन गया तो घड़ा बननेपर जो यह ख्याल आता है कि घड़ा न था पहिले, यह जो ज्ञान हुआ तो असत्‌के विषयमें ज्ञान हुआ, क्योंकि सत्‌के विषयमें होने वाले ज्ञानसे विलक्षण है यह ज्ञान। घड़ा नहीं है ऐसा जो ज्ञान है वह असत्‌का ज्ञान है। मृतपिण्ड है यह सत्सम्बन्धि ज्ञान है। इस लिए असत् भी कोई वस्तु है, अभाव भी कोई वस्तु है, सद् विषयक जो ज्ञान होता है वह सत्ताके ज्ञानसे विलक्षण नहीं होता, जैसे सद् द्रव्य। यह ज्ञान है तो सत्ता सम्बन्धी है और घड़ा नहीं है यह सत्ताके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान है, इसलिए इस अनुमानसे सिद्ध होता है कि प्रागभाव कोई भिन्न प्रमाण है।

प्रागभावकी वस्तुताकी सिद्धिके लिये दिये गये सत्प्रत्यय विलक्षणता हेतुकी सदोषता – प्रागभावकी समस्यापर आचार्यदेव कहते हैं कि यह प्रागभावमें वस्तुत्वकी प्रतीति भी मिथ्या है। प्रागभाव मायने पर्यायका पहिली पर्यायमें अभाव होना घड़ेका मृत पिण्डमें अभाव होना इसका नाम प्रागभाव है और जब घड़ा बन गया तो अब घड़ा बननेपर मृत्पिण्डका अभाव हो गया तो इसका नाम प्रध्वंसाभाव है घड़ा फूट गया, खपरियां बन गयीं तो घड़ेका प्रध्वंसाभाव हो गया खपरियां बन गयीं, तो जैसे प्रागभाव नामकी तुम कोई चीज मानते हो तो इसी प्रकार प्रध्वंसाभाव नामकी भी कोई चीज रही। अब यह बतलावो कि प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव नहीं है, यह ज्ञान होता है कि नहीं होता? प्रागभावादिकमें प्रध्वंसाभावादिक नहीं है यह भी ज्ञान होता तो इससे तुम्हारा हेतु व्यभिचारी हो गया। यदि कहो कि वह भी असत् को विषय करता, तो अभावकी अनवस्था हो जायगी इस कारणसे प्रागभाव कोई अलग अभाव है यह नहीं माना जा सकता। जो पूर्व पर्यायका अस्तित्व है वही उत्तर पर्यायका प्रागभाव है, प्रागभाव कोई अलग वस्तु नहीं है।

वस्तुत्वविज्ञानमें मोहध्वंसकी क्षमता संसारमें जीवको दुःखका कारण है तो मोह है। वह मोह कैसे मिटे इसका उपाय सभी सिद्धान्तोंने अपने अपने ढङ्गसे बताया है। किसीने बताया कि ईश्वरकी भक्ति करें, वही संसारमें भटकाता है और वही संसारसे उतार देगा, दुःखोंसे वही छुटायेगा। जैनशासनने यह बताया कि तुम वस्तुके सही स्वरूपको जान जावो फिर संसारके दुःखोंसे छूट जावो। वस्तुके सही स्वरूपको जाननेसे मोह छूट जाता है। वस्तुके सही स्वरूपके ज्ञानसे चित्तमें यह भाव बैठ जाता है कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते है। किसी पदार्थका कोई पदार्थ कुछ नहीं है। तो वस्तुका स्वरूप यह है कि वह अपने स्वरूपसे तो है और परके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपसे नहीं है। उसी वस्तुस्वरूपमें ये सब बातें घटाई जा रही हैं कि वस्तु अपनी नवीन नवीन पर्यायें बनाती रहती है। कोई दूसरा ईश्वर वगैरह पदार्थकी परिणति नहीं करता किन्तु पदार्थमें अपने स्वभावके कारण नवीन नवीन परिणतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। पुरानी अवस्थाएँ विलीन होती रहती हैं। प्रथम अवस्थामें अगली अवस्था नहीं है इसका तो नाम है प्रागभाव और वर्तमान अवस्थामें गुजरी हुई अवस्था नहीं है इसका नाम है प्रध्वंसाभाव। वस्तुकी सत्ताका ही नाम अन्यका अभाव पड़ता है। अभाव नामकी कोई चीज अलग नहीं है। यदि अभाव कोई अलग प्रमेय होता तो इसके मायने है कि अभाव भी कोई वस्तु बन जाता। जो चीज है उसका तो ज्ञान किया जा सकता है और जो चीज नहीं है उसका कभी ज्ञान नहीं हो सकता। तो अभाव न कोई अभावका ज्ञान करने वाला प्रमाण है। जैसे अभाव जाना कि मृत पिण्डमें घड़ा नहीं है तो वह हुआ प्रागभाव और जैसे यह जाना कि इस जमीन पर घड़ा नहीं है तो यह हुआ इतरेतराभाव। ये सब सद्भावरूप है।

उपचरित अभावसे सर्वसांकर्यका प्रसङ्ग—अब यहां शङ्काकार कह रहा है कि जहांपर जमीन है, सद्भाव है उसपर घट आदिक नहीं है ऐसा जो ज्ञान होता है वह तो मुख्य अभावका विषय करता है और प्रागभाव आदिकमें प्रध्वंसाभाव आदि नहीं है ऐसा जो ज्ञान है वह उपचरित अभावको विषय करता है इस कारण अनवस्थादोष न आयगा, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि फिर तो परमार्थसे प्रागभावादि में साङ्कर्य हो जायगा देखिये जल मृत्पिण्ड है तब घड़ा नहीं है इसका नाम है प्रागभाव, और जब घड़ा बन जायगा तो अब घड़ामें मृत् पिण्ड नहीं है। जब घड़ा बन जायगा तो वह मिट्टीका लोंधा नहीं रहा, इसका नाम है प्रध्वंसाभाव। तो प्रागभाव अलग है- प्रध्वंसाभाव अलग है। प्राक् मायने पहिले, अभाव मायने नहीं। जैसे घड़ा बननेसे पहिले उस मिट्टीके लोंधेमें घड़ेका प्रागभाव है तो यह बतलावो कि प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव है कि नहीं? ऐसा कहनेपर कि उपचारसे प्रागभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है। तो जब उपचारसे ही एक अभावमें दूसरे अभावका अभाव है, मुख्यतासे नहीं तो तुम्हारे प्रागभावको अर्थान्तर कहना ठीक नहीं है। परमार्थसे तो सब एक हो गये। उपचरित अभावसे वास्तवमें भेद सिद्ध नहीं होता। फिर तो प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव अन्य कुछ नहीं रहे अन्यथा अर्थात् उपचरित अभावसे ही वास्तविक भेद बनने लगे तो फिर मुख्य अभावकी कल्पना करना व्यर्थ है। अतः अभाव कोई चीज नहीं, चीज है वह अन्यके सद्भावरूप है।

वस्तुस्वरूपके ही कारण संकरताका अभाव—यहां यह बात बतलायी जा रही है कि जितनी भी चीजें हैं वे अपने स्वरूपसे हैं पर स्वरूपसे नहीं है। यह वस्तुमें स्वभाव पड़ा हुआ है। फिर कुटुम्बीजनोंका आत्मा मेरे स्वरूपसे कैसे कहा जायगा, वे सब मुझसे त्रिकाल भिन्न है। जैसे दुनियाके अन्य लोगोंको अपरिचित मानते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वैसे ही ये घरके जीव भी गैर हैं, उतने ही ये भी भिन्न है। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं कभी उन रूप हो जाऊँ और वे कभी मुझ रूप हो जायें। चाहे किसीसे कितनी भी अधिक प्रीति हो पर कोई किसी दूसरे रूप हो नहीं सकता, क्योंकि वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है, मर्यादा ही ऐसी है तभी अस्तित्व रहता है तो एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव होना अथवा एक ही पदार्थमें अपनी आगामी पर्यायका अभाव होना, और पहली गुजरी हुई पर्यायका अभाव रहना यह तो वस्तुका स्वरूप है। इसकी व्यवस्था करने वाला कोई अलगसे अभाव प्रमाण नहीं है।

अभावकी प्रमेयता सिद्ध करनेके लिये दिये गये सर्वदाभावविशेषणत्व हेतुकी व्यभिचारिता—अभावप्रमाणवादियोंने जो यह कहा था भावस्वभाव प्रागभाव आदिक नहीं है अर्थात् प्रागभाव सद्भावस्वरूप नहीं है, सर्वदाभावके विशेषण होनेसे यह भी कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यह हेतु पक्षमें पूर्णरूपसे व्यापक घटित नहीं होता। अनेकों अभाव अभावविशेषकारक भी होते हैं। प्रागभाव प्रध्वंसाभाव आदिकमें नहीं है। यह अभाव देखो अभावका विशेषण बन रहा है अभावको सिद्ध करता है। कोई भाव भावविशेषणक भी होते, जैसे गुण भावस्वरूप है और भावात्मक पदार्थका विशेषण है, सो इन गुण आदिकके द्वारा भी अनेकान्त बन गया। सर्वदा भावविशेषण होनेसे यह हेतु अभावको सिद्ध न कर सका। मैं घटके रूपको देखता हूँ इस व्यवहारमें स्वतन्त्र सद्भावात्मक गुणकी प्रतीति है और सर्वदा भावविशेषणत्वके अभावमें "अभाव तत्त्व है" यों स्वतन्त्रकी प्रतीति है इस कारण सर्वदा भावविशेषणत्व हेतु असिद्ध है। तब सो अभावका प्रमाण नहीं बनता। अर्थात् जैसे रूप आदिक सद्भावरूपमें हमें नजर आते हैं इसी प्रकार अभाव नजरमें नहीं आता।

ज्ञानी पुरुषोंके मोह न होनेका कारण—किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थमें अभाव होना या एक ही पदार्थकी वर्तमान पर्यायका उसीकी अन्य पर्यायोंमें अभाव होना, यह जो अभाव है यह सही चीज है। जैसे चश्माघरमें चश्मा रखा है तो चश्मा चश्माघररूप नहीं हो गया और चश्माघर चश्मारूप नहीं हो गया। एक पदार्थ में दूसरे पदार्थका अभाव है, एक पर्यायमें अन्य पर्यायका जो अभाव है वह भी वस्तुस्वरूपमें है। कोई अभाव नामका अलग प्रमाण हो और उसने यह व्यवस्था बनायी हो ऐसा नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे अस्तित्व रखा करते हैं इसीके मायने यह हुआ कि दूसरेके स्वरूपसे वे नहीं रहा करते हैं। ज्ञानी जीवोंको जो मोह नहीं आता वह इसी बलपर नहीं आता कि उन्हें वस्तुके स्वरूपका निर्णय है कि प्रत्येक पदार्थ मात्र अपने स्वरूपसे रहा करते हैं। कोई अन्य मुझमें कभी त्रिकाल आ ही नहीं सकता है। मैं जो कुछ कर सकता हूँ सो अपने ही भावोंका कर सकता हूँ अपने भावोंसे आगे मैं अन्य कुछ करनेमें समर्थ नहीं हूँ। मैं केवल अपने ही भावमें जो कुछ भी परिवर्तन करूँ वही कर पाता हूँ, क्योंकि पर पदार्थोंमें मेरा कोई प्रवेश नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह वस्तुका स्वरूप एक दृढ किलेकी भांति है। अनादिकालसे जीव कर्मोंसे बंधा हुआ चला आ रहा है, इतने पर भी जीव कर्मरूप नहीं होता, कर्म कभी जीवरूप नहीं होते। शरीरोंमें बंधा चला आ रहा है पर शरीर कभी जीवरूप नहीं होता और कभी शरीररूप नहीं होता, शरीर शरीर रूप ही रहता, जीव जीव रूप ही रहता। कोई मनुष्य बड़ा मोही है घरमें बड़ी आशक्तिसे रहता है, उसे अपने आप की कुछ सुधि भी नहीं है। पर पदार्थोंमें बड़ा मोह करके वह बस रहा है, इतने पर भी वह मोही जीव पर पदार्थरूप नहीं बन गया। वह वह ही है, पर पर ही है, और आखिर फैसला हो ही जाता है, सबका वियोग होता है अपने-अपने उदयके अनुसार उनका भिन्न-भिन्न गतियों में जन्म होता है। किसी आत्मासे मेरा क्या सम्बन्ध है? भिन्न गतिसे आये हैं और भिन्न गतिमें चले जायेंगे। मैं भी कहींसे आया हूँ और कुछ समय गुजरनेपर कहीं चला जाऊँगा। यहां मेरा कुछ न रहेगा।

मोहविध्वंसका अमोघ उपाय मोही जन जरासे क्षेत्रमें मोह बसा कर के अपनी बरबादी की जा रही है निरन्तर संक्लेश बनाये रहते हैं अपने आत्माकी कुछ भी सुधि नहीं है। अपने आपके स्वभावपर टिक नहीं सकते हैं। जिन पदार्थोंसे मोह किया जा रहा है वे सब बिछुड़ जायेंगे, कोई साथी न बनेंगे। किन्तु मैं जो वासना संस्कार बना लेता हूँ उस संस्कारसे मैं पिलता रहूँगा। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वतंत्र स्वरूपसे रहेंगे। कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप नहीं होनेका, पर जो परमें मोह बना रहा हूँ इससे मेरा बिगाड़ है, परका बिगाड़ नहीं है. पर पदार्थ किसी रूप परिणमें। जीव हैं तो उनके साथ कर्म लगे हैं, उनका जैसा उदय है वैसा वे बनेंगे और जो अजीव पदार्थ हैं, पुद्गल आदिक हैं उनका जैसा संयोग बनेगा वैसा उनका परिणमन चलेगा। उनका परिणमन उनमें है, मेरा परिणमन मुझमें है। ये बाह्य पदार्थ मुझपर जबरदस्ती नहीं करते कि तुम मोह करो, तुम मुझे अपना मानो तुम मुझसे प्रीति करो। मैं यों बिगड़ रहा हूँ तुम मुझे बचा लो। कोई किसी प्रकारकी इस आत्मापर जबरदस्ती नहीं कर रहे, किन्तु यह आत्मा ही मोहवश होकर स्वयं अपनेको ही भूलकर बाह्यकी ओर दृष्टि लगाता है, कल्पनायें करता है और दुःखी हो जाता है। कोई किसी दूसरेको दुःखी नहीं करता। तो जब वस्तुका सही स्वरूप विदित हो जाता है तो वहां मोह नहीं रहता। मोह नहीं रहता तो उसको शान्ति अपने आप है। शान्ति कहीं बाहरसे नहीं लाना है। मोहको हटाना अज्ञानको हटाना वस्तुके उपयोगका स्वरूप बनाना, ये काम यदि भीतरमें हो सकें तो फिर उसे आनन्द ही है. शान्ति ही है. मुक्तिका मार्ग उसके बराबर बना हुआ है और यह कला न मिली तो जीव कितने ही उपाय कर लेवे इसको कभी शान्ति हो ही नहीं सकती। तो मोह हटानेके लिये जैन शासनने वस्तु के स्वरूपके यथार्थज्ञानको अमोघ उपाय कहा है।

ज्ञानका महत्त्व—लोकमें सर्वत्र ज्ञानका ही महत्त्व है। कल्पना करो कि

Version 1

लोकमें सब कुछ तो होता और एक ज्ञानमय पदार्थ न होता, आत्मा न होता तो लोक क्या था ? किसीके ज्ञानकी ही बात न थी, कोई ज्ञानमय पदार्थ ही न था अथवा ज्ञानमय पदार्थ नहीं है तो लोक भी कुछ नहीं है। जितने यहां ये पुद्गल हैं, जितने भी ये सब पौद्गलिक ठाठ हैं ये कैसे बने ? ये सब जीवके काम हैं। इन सबमें जीव था। जो जो भी चीजें दिखनेमें आ रही हैं उनमें या तो इस समय जीव है या पहिले जीव था। जीवके सम्बन्धके बिना ये सब कुछ बन नहीं सकते। यह पत्थर खड़ा है, कभी तो खानमें था तब जीव था। यह दरी पड़ी है, यह पेड़में थी, उसीका ही सूत बनकर यह दरी बन गयी है जो भी पदार्थ नजर आते हैं वे सब जीवके काम हैं। जीव न होता तो ये कुछ की काम न बनते। फिर क्या था लोकमें ? लोकमें समस्त पदार्थोंमें सार तो है आत्मा और आत्मामें भी सार है आत्माका शुद्ध स्वभाव। आत्मा तो सभी का ही नाम है। जो क्रोधी है, विषय कषाय वाला है, पेड़ वगैरह है अथवा कोई भी भवकी पर्याय धारण किए हुए हैं ये तो सब जीवकी अवस्थाएँ हैं, ये तो सारभूत नहीं हैं। जीवका जो अनादि अनन्त सहज ज्ञानस्वभाव है वह सारभूत है उस ज्ञानस्वभाव के जो परिणमन चलते हैं उनसे फिर लोककी व्यवस्था बनती है। हम जानते हैं कि यह क्या है तो ज्ञानको ही जानते हैं। तो जिस ज्ञानसे लोकालोककी व्यवस्था चलती है वह ज्ञान प्रमाण है किसी भी बातको पक्का करने वाला तो ज्ञानही होता है। तो वह ज्ञान क्या क्या जाना करता है और उस ज्ञानके कितने प्रकार होते हैं उसका यह प्रकरण चल रहा है।

मीमांसक सिद्धान्तमें अभावका स्थान — मीमांसक सिद्धान्तने जिसने यज्ञ की विधियोंका अधिक प्रचार किया और यज्ञमें पशु होमें जायें इसका भी आदेश दिया। उस सिद्धान्तने एक अभाव प्रमाण भी माना। जैसे हम पदार्थोंको जानते हैं तो पदार्थों की सत्ता समझ लेते हैं उसका प्रत्यक्ष होता है, अनुमान होता है, उस सद्भावका ज्ञान होता है। मीमांसक कहते हैं कि सद्भावका भी ज्ञान होता है और अभावका भी ज्ञान होता है, और उनका अभाव तुच्छ अभाव है, याने कुछ न नजर आये, शून्य पना होना, न होना, न का नाम अभाव है, पर अन्य सिद्धान्त और जैनशासन भी यही मानता है कि कुछ न हो ऐसा अभाव जाना नहीं जा सकता। अभाव किसी न किसी सद्भावके रूपमें ही जाना जाता है। केवल अभाव हो कुछ न हो, असत् हो तो वह जाननेमें नहीं आ सकता। जाननेमें वही आता है जो सत् हो। जो असत् है वह ज्ञानका विषय नहीं हो सकता। तो जो अभाव प्रमाणवादी हैं उनका कहना है कि अभाव भी यदि वस्तु न हो, अभाव भी यदि प्रमेय नहीं है तो फिर अभावके जो चार भेद किए हैं प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव ये भेद किस बलपर किए हैं ? इससे सिद्ध है कि अभाव कोई वस्तु है और उसका ज्ञान होना सो अभाव प्रमाण है।

प्रागभावका भाव — प्रागभावका क्या अर्थ है ? जैसे मिट्टीके पिण्डका घड़ा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनाया जा रहा है तो जब तक वह मिट्टीका पिण्ड है तब तक वह घड़ा तो नहीं है। तो घड़ेका प्रागभाव मिट्टीका पिण्ड है, मायने घड़ेसे पहिले घड़ेका अभाव होना। तो घड़ेसे पहिले है वह मृत्पिण्ड, उसमें है घड़ेका अभाव। तो यह अभाव प्रमाण वाला तो यह कहता है कि अभावसे यह व्यवस्था बनती है कि घड़ा मृत्पिण्डमें नहीं है और जैनशासन यह कहता है कि अभाव कोई वस्तु नहीं होती जो कि व्यवस्था बनाता फिरे। पदार्थमें अपने ही सत्त्वके कारण स्वयं यह व्यवस्था है कि एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका अभाव रहे। जिस पदार्थमें अपने ही स्वरूपके कारण यह व्यवस्था है कि यह अपने स्वरूपसे तो है, अपने प्रदेशसे तो है अपने पिण्ड और विकाससे तो है और अन्य पदार्थोंके पिण्डसे गुणोंसे, स्वरूपसे यह नहीं है, यह व्यवस्था इस पदार्थकी सत्ता के कारण स्वयं अपने आप बनी है, किन्तु मीमांसा वाले कहते हैं कि एक अभाव नामका पदार्थ है जो सभी जगह मौजूद है वह अभाव यह व्यवस्था बनाता है कि किसी चीजमें दूसरी चीज न आये। इसी प्रकार एक पदार्थकी अनन्त पर्यायें होती हैं। उन पर्यायोंमें एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका अभाव है, यह वस्तुमें वस्तुके ही कारण व्यवस्था बनी है। अगली पर्यायका पहिली पर्यायमें अभाव होना सो तो प्रागभाव है और अगली पर्यायमें पहिली पर्यायका अभाव होना प्रध्वंसाभाव है।

असद्रूप प्रागभावके कालापेक्षया विकल्पोंका प्रश्न—यहां प्रागभावकी चर्चा चल रही है। तुम्हारा यह प्रागभाव बतलाओ सादिसान्त है या सादि अनन्त है, या अनादि अनन्त है या अनादि सान्त है? घड़ेका मृत्पिण्डकी अवस्थामें जो अभाव है वह अभाव क्या किसी समयसे हुआ है और किसी समय खतम होगा? ऐसा है तो जिस समय शुरू हुआ है प्रागभाव, घड़ेका पर्यायमें अभाव होना जिस समय शुरू होता है उससे पहिले तो घड़ेका अभाव न था, यह अर्थ हुआ। तब घड़ा पहिले बन जाना चाहिए। यदि प्रागभाव सादि अनन्त माना जाय तो प्रागभावसे पहिले घटकी उपलब्धि हो जाना चाहिए क्योंकि घटकी उपलब्धिका विरोधी प्रागभाव है। जब तक प्रागभाव रहता है तब तक इसके उत्तर पर्यायकी उत्पत्ति नहीं होती है। प्रागभाव न मिले तो घटकी उत्पत्ति हो पड़ेगी। यदि कहो कि यह सादि अनन्त है याने इसकी शुरुआत तो होती है पर प्रागभाव होनेके बाद फिर प्रागभाव अनन्त काल तक रहता है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि शुरू होनेसे पहिले घटकी उपलब्धि होना चाहिए और फिर वह प्रागभाव अनन्त है तब फिर सदा घटकी अनुपलब्धि होना चाहिए। यदि कहो कि प्रागभाव अनादि अनन्त है अनादिसे था और अनन्त काल तक रहेगा तो अनादि हो गया प्रागभाव, इसलिए जैसे पहिले कभी भी घटकी उपलब्धि नहीं हो सकती थी वैसे ही अनन्त मिल गया प्रागभाव तो आगे भी घड़ा न रहेगा। यदि कहो कि वह प्रागभाव अनादि सान्त है, अनादिसे तो चला आया है पर प्रागभावका अन्त हो जायेगा। इसका पक्ष कुछ मजबूत सा है कि घटका प्रागभाव अनादिसे है इसलिए पहिले कभी घट नहीं बन पाया और इसका अन्त हो जाता है तो घट बन जाता है,

Version 1

लेकिन इसमें आपत्ति यह है कि जब घट उत्प हुआ तो प्रागभाव तो मिट गया। तो जब प्रागभाव मिट गया तो घटकी तरह सभी कार्य एक साथ बन जाना चाहिए। प्रागभाव तो प्रागभाव ही है वह सबका प्रागभाव था। समस्त कार्य जो उत्पन्न होंगे उन सबका प्रागभाव एक है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनेक प्रागभावोंकी मान्यतापर विचार यदि कहो कि जितने भी कार्य हैं उतने ही प्रागभाव होते हैं एक पदार्थमें, उनमेंसे एक प्रागभावका विनाश हो तो शेष उत्पत्स्यमान याने आगे होने वाले कार्योंके प्रागभाव तो मौजूद हैं, सारी पर्यायें न बनेंगी। तो ऐसा मानने पर फिर अनन्त प्रागभाव बन गए। तो वे सब प्रागभाव स्वतन्त्र हैं या किसी पर्यायके आधीन हैं ? यदि स्वतन्त्र हैं तो क्यों न वे भाव स्वभाव बन जायेंगे ? सत्तारूप बन जायेंगे काल आदिककी तरह। यदि कहो कि किसी पर्याय के आधीन हैं तो जो उत्पन्न हुई पर्याय है उसके आधीन है या जो उत्पन्न होगी पर्याय उसके आधीन है या जो उत्पन्न होगी पर्याय उसके आधीन है ? उत्पन्न हुई पर्यायके आधीन मानना तो बन नहीं सकता, क्योंकि उत्पन्न हुए भावके कालमें प्रागभाव है नहीं। अगर अगली उत्पन्न होने वाली पर्यायके आधीन मानोगे तो जो असत् हैं पर्यायें, उनके आधीन माना ही नहीं जा सकता। यदि असत्के आधीन कुछ बन जाय तो प्रध्वंसाभाव भी जो पर्याय नष्ट हो गयी उनके आधीन बन बैठेगा। इससे प्रागभावकी सिद्धि नहीं होती। अभाव नामका कोई अलग प्रमाण नहीं है। जो कुछ जाना जाता है वह पदार्थका सद्भाव जाना जाता है।

मोहविध्वंसका उपाय तत्त्वज्ञान देखिये ये चर्चायें यद्यपि थोड़ी कठिन हैं, पर इन चर्चावोंसे वस्तुके स्वरूपका ज्ञान होता है। और, जब वस्तुके स्वरूपका सही ज्ञान होगा तब मोह मिटेगा। आप दसों उपाय कर लें मोह मिटानेके पर वस्तु केसम्यग्ज्ञान बिना मोह मिट नहीं सकता। आप क्या उपाय करेंगे ? मोह मिटानेका सो बतलावो ? घर छोड़कर आप जंगलमें भाग जायें, यही तो कर सकेंगे, पर जंगल में भागकर भी यदि सम्यग्ज्ञान नहीं है तो दिल तो वहां भी है, वहां रहकर भी यह कुछ न कुछ सोचा करेगा। मोह मिटा लेगा क्या ? मोह मिटानेके लिये आप और क्या उपाय कर सकते हैं ? कुछ हो तो बतावो। आप एक उपाय यह भी बना सकते हैं कि जिससे मोह होता है उससे बिगाड़ कर ले। कोई ऐसी अटपटी घटना बना कर खड़ी कर दें कि उससे चित्त हट जाय, फिर वह बुरा बोलने लगे, तो शायद मोह हट जायगा। अरे उससे भी मोह नहीं हट सकता' क्योंकि मोहके फल दो हैं —राग और द्वेष ! पहिले तो मोह रागके रूपमें फल रहा था सब यह मोह द्वेषके रूपमें फलने लगा। इसका ख्याल तो नहीं भुला दोगे। मोह तो रहा ही। जैसे लोग कहते हैं कि यह मेरा मित्र है, उस मित्रके प्रति ममता बनाते हैं, इसी प्रकार यह भी तो कहा है कि यह मेरा शत्रु है। अरे मेरा शत्रु है ऐसा माननेमें भी तो ममता बना ली। तो मोह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिटा कहाँ ? वहाँ रागरूप मोह है, यहाँ द्वेषरूप मोह है। मोह मिटानेका आप और क्या उपाय बना सकते हैं ? बिगाड़ करके भी मान लो, कुछ दिनको उससे आपका मोह न रहा तो अन्य किसी पदार्थमें मोह हो जायगा। मोह छुटानेका अन्य भी कोई उपाय किया जा सकता हो तो बताओ ! केवल एक ही उपाय है मोह छुटानेका कि वस्तुका स्वरूप यथार्थ समझमें रहे। और आनन्दका उपाय भी यह ही है जो इस प्रसंगमें बताया जा रहा है। पहिले बताया था कि एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव उस वस्तुके अस्तित्वके ही कारण है कोई अभाव नई चीज नहीं है जो दुनियामें व्यापक हो और वह यह व्यवस्था बनाता रहता हो कि किसी पदार्थमें कोई दूसरा पदार्थ नहीं आ बैठता। वस्तुका स्वरूपका ही एक ऐसा मजबूत दुर्ग है कि जिसके अन्दर अन्य पदार्थ त्रिकालमें आ ही नहीं सकता।

एकक्षेत्र पदार्थोंमें भी स्वरूपभेद -संयोगमें भी भिन्नता जाननेको दृष्टान्त के लिये ले लो दूध और पानी। पावभर दूध और पावभर पानी मिला दिया तो वे अलग-अलग नहीं मालूम पड़ रहे हैं, वे एक ही जगह हैं, पीवेंगे तो दोनों पीनेमें आ जायेंगे। उसे हाथसे आप अलग नहीं कर सकते। दूध और पानी इतना एक दूसरेमें में मिल गये फिर भी अलग-अलग ही हैं। आगपर रख दो तो पानी उड़ जायगा, दूध रह जायगा अथवा किसी यंत्रसे निरख लो तो जान सकते हो कि आधा दूध है और आधा पानी है। हंस उसमें अपना चोंच डुबो दे तो पानी अलग हो जाता है और दूध अलग हो जाता है। हंसकी चोंचमें ऐसा ही कोई यांत्रिक गुण है कि वह दूध और पानीको अलग कर देती है : उसमें कोई विवेककी बात नहीं है। अगर उसमें कोई विवेककी बात मानो तब तो यह मनुष्य उस हंससे अधिक बुद्धू हो गया। पर ऐसी बात है नहीं। अथवा कोई दवा डाल दो तो दूध अलग हो जाता है और पानी अलग हो जाता है। तो जैसे कितना भी दूध और पानी एक दूसरेमें मिले हुए हों पर दूधका स्वरूप दूधमें है पानीका स्वरूप पानीमें है ऐसे ही ये सब पदार्थ हैं, ये सब पदार्थ हैं, ये चाहें कितने ही मिले हुए हों, आपसमें भिड़े हुए हों फिर भी सबका स्वरूप अलग-अलग है।

किसीका किसी अन्यमें रागादिक होनेकी अशक्यता परिवारमें कितना भी प्रेम हो, एक दूसरेसे बड़ा ही घनिष्ट प्रेम हो, फिर भी वे आत्मा सब अलग-अलग हैं। एकके आत्मामें दूसरे आत्माका कोई परिणमन नहीं जाता। एक राग कर रहा है तो अपने ही भावसे, अपनी ही कल्पनासे अपने ही आपमें विवश होकर अपनेमें अपना परिणमन कर रहा है, दूसरेमें कोई कुछ नहीं करता। दूसरा भी वही करता है। पर वे दोनों मोहमें ऐसा समझ रहे हैं कि हमपर इसका अत्यन्त अधिक प्रेम है, पर कोई किसीसे प्रेम कर ही नहीं सकता। सभी प्रेम करते हैं तो वे अपने आपमें कल्पनाएँ बनाकर अपने आपमें स्नेह परिणति करते हैं। तो यह वस्तु-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूप ही तो है। यह न समझमें आये तो मोह हटानेका और क्या उपाय हो सकता है ? और स्वरूप समझमें आया और जान गए कि बिल्कुल स्वतंत्र सब जीव हैं, कुछ सम्बन्ध नहीं है हमारा इनसे। ये भी कर्मोंसे लदे हैं। सभी अपने अपने कर्मों का ही फल भोग रहे हैं। इस प्रकारका सही ज्ञान बन जाय तो मोह शीघ्र ही मिट जायगा। जो वस्तुका स्वरूप जान गया है वह ही इस मोहको मिटा सकता है।

पदार्थमें प्रतिसमय एक एक परिणमन होनेकी निरन्तर नियमितता—भैया ! जैसे एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका अभाव है इसी प्रकार एक ही वस्तुमें पर्यायों का भी एक दूसरेमें अभाव है, यह यहाँ बताया जा रहा है। दृष्टान्तमें यहाँ अजीव ले लो कि जब मृत्पिण्ड है तब घड़ेका अभाव है और जब घड़ा बन गया तो मृत्पिण्ड का अभाव है। हमारे आपके आत्मामें इस समय जो परिणमन है वह परिणमन है; इसमें अगला परिणमन नहीं है और पिछले परिणमनका भी अभाव है। तो जो पिछले परिणमन हो गये उनका अभाव तो ऐसा पक्का है कि फिर कभी आ नहीं सकता, पर जो अगले परिणमन होंगे उनका इस समय अभाव है, ये आ सकते हैं, पर एक परिणमनमें अन्य परिणमनका अभाव है तो यह प्रागभाव और प्रध्वंसाभावकी बात है।

ज्ञानानुभवकी परिणतिसे अशुद्ध परिणतिका ध्वंस—अभावविषयक मर्मविज्ञानसे हम आप यह शिक्षा लेते है कि जैसे प्रध्वंसाभाव होनेपर अर्थात् उत्तर पर्याय उत्पन्न होनेपर पिछली पर्यायें सब नष्ट हो गयीं, वे नहीं रहीं तो कल्पना करो कि किसी मनुष्यने बहुत पाप किए और एक समय उसका शुद्ध परिणाम आ जाय, एक ज्ञानस्वरूपको जाननेका उपयोग चले तो उस ज्ञानानुभवके समय उसके क्या कोई पापभाव रहा है। परिणमन एक समयमें एक होता है। जिसमें ज्ञानानुभवका परिणमन है उस समयमें कोई पापका परिणमन है क्या ? तो मतलब यह है कि इस तरह समस्त पाप नष्ट हो गये कि नहीं ? जीवकी सत्तामें नहीं रहे। कर्म जो बँध गए उन पापपरिणामोंके कारण वे अभी सत्तामें हैं इसलिए कहा जायगा कि अभी उनका संस्कार तो है, पर आत्मानुभवके समयमें भाव पाप एक भी नहीं है। चाहे कितने भी पाप भाव किये हों उस जीवने सैकड़ों जीवोंकी हत्या भी की हो, या अनेक व्यसन भी सेये हों लेकिन किसी समय उसका परिणाम सुधर जाय और ज्ञानका अनुभव बन जाय तो जिस समय ज्ञानका अनुभव है उस समय उस ज्ञानानुभवका ही तो परिणमन रहेगा। भाव पापका परिणमन न रहेगा। तो आत्मामें परिणमनकी दृष्टिसे उस समय सब पाप नष्ट हो गए। अब रह गयी इतनी सी बात कि पहिले जो पाप परिणाम किया था उसके कारण कर्म बंधे हुए थे वे अभी सत्तामें हैं तो ऐसे पाप कर्म भी जो निर्जराको प्राप्त होते हैं वे आत्मानुभवके बलसे ही तो होते हैं; उसमें समय लगेगा, पर आत्मानुभवके समयमें समस्त भाव पापका अभाव हो चुका। इसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कोई समय नहीं लगा। और जो उन पाप परिणामोंके कारण कर्म बाँध लिये थे उन कर्मोंको कर्मोंकी निर्जरामें समय लगेगा और उन कर्मोंको दूर करनेमें भी तो यह आत्मानुभव ही समर्थ है। इससे जीवका सब कुछ कल्याणका उपाय मात्र एक आत्मानुभव है।

आत्मानुभवकी पद्धति--आत्मानुभव क्या चीज है कि जैसे हम अनेक पदार्थोंका ज्ञान कर रहे हैं। यह चौकी है, यह पत्थर है यह अमुक है, तो इस पत्थर का ज्ञान न करके एक आत्माके विशुद्ध स्वरूपका ज्ञान करने लगें और दूसरी बात कोई चित्तमें न आये। केवल आत्माका जो ज्ञानस्वरूप है सहज ज्ञानस्वभाव वह ही मात्र ज्ञानमें रहे, यही आत्मानुभव है। तो क्या ऐसा कोई कर नहीं सकता ? हम नहीं जानना चाहते हैं किसी भी परपदार्थको। मैं तो केवल अपने आपको भी जानूँगा। मैं भी तो सत् हूँ। जैसे अन्य पदार्थ सत् हैं, उनका हम ज्ञान कर लिया करते हैं तो यह मैं आत्मा भी तो सत् हूँ। मैं इसको ही जानूँगा, ऐसा कोई सत्यका आग्रह कर ले तो क्या वह इस स्थितिमें नहीं आ सकता कि वह आत्माका ही ज्ञान करें, और अन्य पदार्थका न करें ? आत्मा है ज्ञानस्वरूप। तो ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करनेमें ही आत्माका अनुभव है। उस आत्मानुभवके प्रसाद से पूर्वमें जो कर्म बंधे हुए हैं, वे सब भी धीरे-धीरे समाप्त होते हैं, हमें इस वस्तु स्वरूपसे शिक्षा मिलती है। जैसे भेदविज्ञानमें सहायक इतरेतराभावकी बात है, एक पदार्थमें दूसरा पदार्थ नहीं आता, उनमें अत्यन्ताभावकी बात है। तीनों कालमें एक पदार्थरूप नहीं हो सकता। तो इससे हमें हितके लिये कोई शिक्षा तो मिलती है, इसी प्रकार प्रागभाव के बोधमें भी और प्रध्वंसाभावके बोधमें भी हमें शिक्षा मिलती है।

सर्वथा असत्की प्रमेयताका अत्यन्त अभाव—प्रागभावको मीमाँसक जन स्वतन्त्र वस्तु मानते हैं वह कुछ प्रमेय है और उसका ज्ञान करने वाला बोध प्रमाण है किन्तु अभाव कोई वस्तु नहीं है जिसका ज्ञान किया जा सकता है। हम जब जब भी अभावका ज्ञान करते हैं तो किसी पदार्थके सद्भावका ज्ञान बनाते हैं तब हमें अभावकी कल्पना आती है। जैसे कहा कि उस कमरेसे मुकुट उठा लावो ! वह कमरेमें गया, सारे कमरेमें अच्छी तरह देखकर वह लौट आता है और कहता है कि उस कमरेमें मुकुट नहीं है, तो क्या उसने उस मुकुटको देखकर कहा कि यहां मुकुट नहीं है ? जो चीज वहां है ही नहीं, जो असत् है वह भी आंखों दिख सकती है क्या ? तो उस मुकुटका कमरेमें जो सद्भाव जाना गया वह मुकुटका अभाव है, जो अभाव है वह किसी भी ज्ञानका विषय नहीं है, न उसे अभाव प्रमाण जान सकता, न मतिश्रुत ज्ञान जान सकते और न केवलज्ञान जान सकता। केवलज्ञान तो बिल्कुल नहीं जान सकता हम आप तो उसकी कल्पना बना सकते हैं, पर केवलज्ञानमें तो कल्पना भी नहीं। वहां तो सीधा स्पष्ट जो भी सत् है वह जाना जाता है। जैसे हम आप लोग कल्पना करके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माना करते हैं कि यह अमुक चन्दका घर है, यह अमुक व्यक्तिकी चीज है वैसा ज्ञान भगवानको नहीं होता। भगवान यह नहीं जानते कि यह अमुक चन्दका मकान है। यदि वे ऐसा जान जायें तब तो फिर उस मकानकी पक्की रजिस्ट्री हो गयी, वह घर फिर उससे कभी छूट ही नहीं सकता। यहाँकी रजिस्ट्री तो फेल हो सकती है, पर भगवानके द्वारा की हुई रजिस्ट्री फिर फेल न हो सकेगी, पर ऐसा नहीं है। भगवान तो सत्को स्पष्ट जानते हैं असत् कभी प्रमेय नहीं होता। अभाव असत् है, कुछ भी नहीं है, तुच्छाभाव है, तो उस अभावका न ज्ञान होता है और न वह अभाव कोई प्रमेय है. किसी पदार्थका सद्भाव ही अन्य पदार्थका अभाव कहलाता है और इसी प्रकार किसी भी वस्तुमें जो एक पर्याय बनी है उसमें अन्य पर्यायका अभी अभाव है। तो ये सब प्रागभाव आदिक जो अभावके भेद किए गए हैं ये कोई मुख्य विषय करने वाले नहीं हैं। तो अभाव कोई प्रमेय नहीं और न उस अभावका जानने वाला कोई ज्ञान प्रमाण है। अभाव किसीके सद्भावरूप हुआ करता है, ऐसे अभावके जानका प्रत्यक्ष आदिकमें अन्तर्भाव बताया है।

पदार्थगत शक्तिसे भावाभावव्यवस्था - प्रत्येक पदार्थमें ६ साधारण गुण होते हैं, पदार्थ कोई सा भी हो। जैसे एक जीव ले लीजिए तो यह जीव है यह उसका पहिला गुण है। यह जीव अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं है यह दूसरा गुण है, यह जीव निरन्तर परिणमता रहता है अवस्थायें बनाता रहता है यह तीसरा गुण है, यह जीव अपनेमें अपनी ही अवस्था बनाता है दूसरेकी अवस्था नहीं बनाता यह चौथा गुण है। यह जीव अपने प्रदेशरूप है यह पांचवां गुण है और जीव वस्तु किसी न किसीके ज्ञानमें जानी ही जाती रहती है यह उसका छठा गुण है। इस प्रकार ६ गुणों से व्याप्त प्रत्येक पदार्थ है। इस आधारपर पदार्थ निरन्तर अपनी पर्यायको उत्पन्न करता रहता है। वे सब पर्यायें क्रमसे होती हैं। वर्तमान, भूत और भविष्यकी सब पर्यायें पदार्थमें एक साथ नहीं हो सकतीं ऐसा वस्तुका स्वरूप है। तो जब प्रत्येक अवस्थायें क्रमसे हुआ करती हैं तो वहाँ हम यह जान लेते हैं कि जिस समय जो पर्याय है उस समय उसीका सत्त्व है. आगे होने वाली पर्यायका अभी सत्त्व नहीं है। तो आगे होने वाली पर्यायका वर्तमानमें अभाव होना इसका नाम प्रागभाव है। तो ऐसा अभाव कोई वस्तुभूत चीज नहीं है किन्तु पर्याय यह है और उस पर्यायीकी ही यह विशेषता है कि उसमें तब अन्य पर्याय नहीं है।

विशेषणभेदसे प्रागभावको भिन्न-भिन्न माने जानेकी मीमांसा— पदार्थ स्वयं अन्यसे व्यावृत्त रहता है, यह न मानकर मीमांसक सिद्धान्तने अभावको अलग पदार्थ माना! तो उनसे यह पूछा गया था कि प्रागभाव उसे कहते हैं जिसके मिटनेपर कार्य हो। जैसे मिट्टीका पिण्ड है, उसमें अभी घड़ा पर्याय नहीं बनी है, जब घड़ा पर्याय बनता है तो उस मृत्पिण्डका अभाव हो जाता है, जिसका अभाव होनेपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अगली पर्याय बने उसको प्रागभाव कहते हैं। तो वस्तुमें प्रागभाव नहीं रहा और अभावको तुमने एक ही पदार्थ माना है, तो प्रागभावके नष्ट होनेपर कार्य एक साथ हो जाने चाहिएँ। उसके उत्तरमें यह कहा था कि नहीं, प्रागभाव नाना हैं तो उसकी भी व्यवस्था नहीं बनती। तब मीमांसक सिद्धान्तने यह अपना पक्ष रखा कि एक ही अभाव विशेषणके भेदसे प्रागभाव भिन्न-भिन्न माने जाते हैं। यह घटका प्रागभाव है, यह पटका प्रागभाव है। जितनी वस्तुएँ हैं वे सब वस्तुएँ जिस समय जिस पर्यायमें हैं उस समय उस ही पर्यायमें हैं। उस समय अगली पर्याय नहीं हैं। तो जितने पदार्थ हैं उतने अभावके विशेषण हैं, यह घड़ेका प्रागभाव है। ये चौकी आदिक जो अनेक प्रकारके अभाव दिखते हैं वे विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न दिखते हैं सो जो अवस्था उत्पन्न हुई उसके विशेषणरूपसे प्रागभाव न होगा, पर जो अवस्थाएँ आगे उत्पन्न होंगी उनके विशेषणरूपसे प्रागभाव नष्ट नहीं हुआ। इसलिए वह अभाव तो नित्य है, ऐसा यदि मानते हो तो फिर जैसे एक प्रागभाव माना और उसके विशेषण अनेक माने तो यों एक अभाव मान लिया जाय जो प्रागभाव प्रध्वंसाभाव आदिके विशेषण रूपसे भिन्न भिन्न कहलायेगा।

भावकी भांति अभावको विशेषणभेदसे ही भिन्न माननेका प्रसङ्ग— अभावप्रमाणवादियोंसे कहा जा रहा है एक अभावकी मान्यताके प्रसङ्गमें कि विशेषण रूपसे लोकव्यवहार भी होता है अर्थात् दिखनेभरका एक अभाव है और उसमें विशेषणके भेदसे भेद होता है। जैसे कि ब्रह्मवादियोंने माना है कि दुनियाभरमें सत्ता एक है, जीव सत् हैं, पुद्गल सत् हैं, ऐसा भिन्न-भिन्न नहीं माना। सर्वव्यापक एक सत् है और वह सदा विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न मालूम होता है। यह द्रव्य सत् है, यह गुण सत् है। जैसे विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न सत्ता मान लेते हो पर हैं एक ही। इसी प्रकार अभावको मान बैठें कि विशेषणके भेदसे भिन्न-भिन्न अभाव जाने जाते हैं कि यह घटका अभाव है, पर अभाव मूलमें एक ही है। यों अभावको फिर एक ही मान लेना चाहिए। आचार्यदेव मीमांसकोंके प्रति आपत्ति बतला रहे हैं। देखो ! एक ही अभाव जब पूर्वकालसे विशिष्ट अर्थ लेते हैं तो उसका नाम प्रागभाव है। जैसे मृत् पिण्डसे घड़ा बनता है तो उस घड़ेके पूर्वकालसे विशिष्ट जो अर्थ है उस घड़ेका पूर्व अगली पर्यायसे विशिष्ट जो भाव है वह प्रध्वंसाभाव है। घड़ा फूट गया तो खपरियां बन गयीं। नाना पदार्थोंमें रहने वाला जो अभाव है वह इतरेतराभाव है। तीनों कालमें नाना स्वभावरूप सहित जो अभाव है, अत्यन्ताभाव है— जैसे गधेके सींग, आकाशके फूल ये सदा अभावरूप हैं तो वह अत्यन्ताभाव हुआ। इसी प्रकार ज्ञानभाव भी होता है, तो जैसे सत्ता एक होनेपर भी द्रव्यादिकके विशेषणसे तुमने भाव माना है इसी प्रकार अभाव भी एक मान बैठो और विशेषणोंके भेदसे नाना अभाव ज्ञानमें आते हैं, ऐसी समझ बनालो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत्त्वके एकत्वकी मान्यता—बात यहाँ सिद्धान्तमें तो यों है कि जितनी भिन्न–भिन्न परिणतियाँ चल रही हैं, भिन्न–भिन्न उनमें अर्थक्रियायें चल रही हैं उतने पदार्थ हुआ करते हैं। जैसे जीव जुदा पदार्थ है, पुद्गल जुदा पदार्थ है और जीवोंमें भी जाति अपेक्षासे सभी जीवोंमें समानता है तिसपर भी प्रत्येक जीव अपने आपमें अपनी ही परिणतिका अनुभव करता है. कोई जीव किसी दूसरेकी परिणतिका अनुभव नहीं करता। अतएव ये जीव भी अलग–अलग अनन्तानन्त हैं, यों सत् अनन्तानन्त हैं लेकिन थोड़ा मीमांसक सत्को एक ही मानते हैं, एक ही ब्रह्म है, सत्स्वरूप है, एक ही वस्तु है, विशेषणोंके भेदसे ये भिन्न–भिन्न मालूम पड़ते हैं। दृष्टान्त यों देते हैं कि जैसे आकाश एक है लेकिन विशेषणोंके भेदसे भिन्न–भिन्न मालूम पड़ता है—यह घड़ेका आकाश है, यह भगोनेका आकाश है, यह सन्दूकका आकाश है, पर आकाश सर्वत्र एक व्यापक है। इसी प्रकार ये सत् भी भिन्न–भिन्न मालूम पड़ते हैं पर वे सब एक हैं, विशेषणके भेदसे वे सब भेद मान लिए जाते हैं कि यह द्रव्य सत् है, यह गुण सत् है, यह कर्म सत् है, ऐसा उनका कथन है। इसपर भी विचार करिये।

अनन्तस्वरूपास्तित्व माननेसे ही व्यवस्था-सत्ताको मात्र एककी मान्यताके सम्बन्धमें मूलमें तो यह गल्ती हुई है कि जो अलग–अलग सत् हैं उनको तो अलग–अलग सत् माना नहीं और जो अलग सत् नहीं हैं उनको सत् माना है। जैसे द्रव्य अनन्तानन्त हैं, तो उन सबमें अनन्तानन्त पदार्थ हैं, यों तो माना नहीं और गुण और कर्म ये कोई अलग सत् नही है। जीव पदार्थ है, उसका गुण अलग सत् नहीं है, वह जीवकी विशेषता है, जीवका स्वरूप है। चेतनमें जो कुछ भी क्रिया होती है वह क्रिया अलग सत् नहीं है, वह चेतनकी अवस्था है। तो यों जो सत् है उसके भेद नहीं करते और जो सत् नहीं है उसके भेद करते हैं। फिर दूसरी बात यह है कि एक ही सत् हो दुनियामें तो जैसे आपके शरीरमें एक जीव है तो चाहे पैरमें चोट लगे चाहे सिरमें चोट लगे, सारे उस जीवमें एकमें अनुभव होता ही है। इसी तरह अगर दुनियाभरमें एक ही सत् है तो हमें कोई दुःख हो तो सारे जीवोंमें वही उसी समय दुःख होना चाहिए। जब एक सत् है, एक बाँस है तो उसके हिलानेपर सारा बाँस न हिले, वही एक पोर हिलता रहे ऐसा भी सम्भव है क्या ? उसको तो हिलानेपर सारा बाँस हिल पड़ेगा। इसी प्रकार दुनियाभरमें यदि एक ही सत् है तो किसी जीवके दुःखी होनेपर वही दुःख सबको एक साथ हो जाना चाहिए, पर यहाँ तो ऐसा नहीं देखा जाता। इससे सिद्ध है कि जितने परिणमन हैं उतने पदार्थ हैं।

भावकी भांति अभावके भी एकत्वका प्रसङ्ग—देखिये ! ऐसे भी कुछ सिद्धान्तवादी हैं जो सत्ताको एक मानते हैं और असत्को अभावको नाना मान रहे हैं, जो अभाव उन्हींके सिद्धान्तमें कुछ भी नहीं है, तुच्छाभाव है उसको तो मानते हैं नाना रूपोंमें, और जो सत् है, भावात्मक तत्त्व है उसे मानते हैं केवल एक ही। उनके प्रति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कहा जा रहा है कि जैसे तुम सत्को एक मानते हो और विशेषण भेदसे भिन्न-भिन्न मानते हो, इसी प्रकार अभाव भी एक बन जायगा और विशेषणभावसे नाना भेद हो जायेंगे। यदि यह कहो कि भाई समस्त पदार्थोंमें ये भी सत् हैं, ये भी सत् हैं तो है है के ज्ञानकी इसमें विशेषता है, समानता है और उन पदार्थोंके सत्त्वमें विशेष कोई चिन्ह नजर नहीं आता। इसलिए सत्ता एक है अर्थात् है पनेमें भेद क्या ? घोड़ा है तो उसमें है मात्र है. गधा है तो इसमें है मात्र है इन दोनोंके है शब्दमें क्या फर्क है? पर जो विशेषण है उसमें फर्क है, सो विशेषणसे सत् भिन्न-भिन्न हैं पर वे सत् हैं सब एक, ऐसा तो मानते ही हो. सो अभावको भी एक मानलो ऐसा माना जा सकता है कि ना, कि अभाव असत्को विषय करता है। जैसे इस कमरेमें लोटेका अभाव है, उस कमरेमें पुस्तकका अभाव है, तो लोटेका, पुस्तकका इसमें इसमें विशेषता है, भेद रहा, पर "नहीं है, नहीं है", इतने मात्रमें क्या भेद होगा ? तो अभावको भी एक मान लो !

भावोंका नानात्व और अभावकी भावरूपता– यदि यह कहो कि अभावके बारेमें तो यह बोध होता है—यह पहिले न था, यह आगे न होगा, यह इसमें नहीं है ऐसा भेद पड़ता है इसलिए अभाव ४ प्रकारका मान गया है तो कहते हैं कि सत्तामें भी तो यह भेद पड़ रहा है। यह पदार्थ पहिले था, यह अवस्था आगे होगी। तो इससे भी प्राक् सत्ता, देश सत्ता आदि अनेक भाव मानलो। और देखा भी जाता है—यह अमुक नगर है, यह अमुक नगर है. तो यों अलग-अलग देशोंकी सत्ता है। तुम मानते भी हो कि ये द्रव्य हैं. ये गुण हैं, ये कर्म हैं, यह द्रव्यादिके भेदसे अलग सत्ता है। ज्ञान होता है जुदा-जुदा, इससे यों सत्तामें भी भेद क्यों नहीं मान लिए जाते ? तो जो यह कहा था कि ज्ञानमें फर्क जरूर आया, किसी पदार्थकी सत्ता जाननेमें ज्ञानके भेद जरूर हुए मगर उन ज्ञानभेदोंसे उनका विशेषण ही भेदा जाता है, वह ही भिन्न-भिन्न माना जाता है, सत्ता नहीं। इसी प्रकार अभावको भी मान लो कि अभावमें नाना अभावोंका ज्ञान तो हुआ पर नाना भावोंके विशेषणोंसे पदार्थ ही भेदे गए अभाव नहीं। तो इस प्रकार अभावको एक माननेमें भी आपत्ति. नाना माननेमें भी आपत्ति। अ ाव प्रमाण माननेमें विडम्बनाका कारण यह है कि अभाव अवस्तु है जैसे घड़ी है, इसका जो भाव है, जो सत्ता है वह कुछ चीज है कि नहीं ? और, कहो कि यह घड़ी, चौकी नहीं है तो ऐसा जो नहीं पना है उसको कोई पकड़कर दिखा सकता है क्या ? नहीं दिखा सकता। जो चीज है उसीको सभी पकड़कर दिखा सकते हैं। जैसे घड़ीका सद्भाव है तो उसे पकड़कर दिखाया भी जा सकता है। तो "न" कोई बात ही नहीं होती। हम इस घड़ीको देखकर ही घड़ीमें गुणोंको हाँ रूपसे कहते हैं और अन्यके गुणोंको न रूपसे कहते कहते हैं। तो ये अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्म घड़ीमें हैं। अभाव नामका कोई अलग पदार्थ नहीं है।

अभावकी भांति भावमें भी दोषापत्ति– अभावप्रमाणवादी यहां कहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि अभावको अगर एक मान लिया जाये तो क्या दोष होगा कि जैसे घड़ेका प्रागभाव मृत्पिण्ड है. याने पहिले मिट्टीका लोंदा बनता है उसके बाद घड़ा बनता है तो घड़ेका मृत्पिण्डमें अभाव है, पहिली अवस्थामें अभाव है, तो घड़ेका प्रागभाव मृत् पिण्ड कहलाया। वह मृत्पिण्ड जब मिट गया तो घड़ा बन गया। तो प्रागभावके मिटनेसे कार्यकी उत्पत्ति हुई। तो एक कार्य होनेपर प्रागभावका तो अभाव हो गया, फिर दुनियाभरके सारे कार्य उसमें ही हो जायें। जैसे मृत्पिण्डके मिटनेपर घड़ा बन गया तो अन्य चीज क्यों नहीं बन गयी ? दुनियाकी सारी चीजें बन जाना चाहिए, क्योंकि प्रागभावका अभाव हो गया। एक अभाव माननेपर सारे कार्य अनादि अनन्त हो जायेंगे और सर्वात्मक हो जायेंगे, यह आपत्ति आती है इसलिए अभाव नाना मानने चाहियें। इसपर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह बात तो तुम्हारी सत्ताकी एकतामें भी कह सकते हैं। सत्ता तुम एक मानते हो तो जैसे मृत्पिण्डके समयमेंमृ त्पिण्डकी सत्ता है और मृत्पिण्ड मिट गया तो मिट्टीके लौंदेका अभाव हो गया कि नहीं ? तो जब एक सत्ता मिटी तो सारी सत्तायें मिट जायें, सभी चीजोंका अभाव हो जाय। एक अवस्थाका अभाव होनेपर फिर सारी दुनियाका अभाव हो जायगा, क्योंकि सत् तो एक ही रहेगा। रहे तो सब कुछ रहे न रहे तो कुछ न रहे। जब एक ही चीज है तो एकमें कुछ रहे कुछ न रहे यह भेद नहीं हो सकता। फिर यों सारा जगत् शून्य हो जायगा।

प्रतिबन्धकत्वकी कल्पनासे भी भाव अभावकी अर्थक्रियाकारिताकी असिद्धि—अभावप्रमाणवादी यहाँ कहते हैं कि विवक्षित कार्यका विध्वंस होनेपर भी सत्ताका नाश नहीं होता, अन्यथा एक कार्यके होनेपर सत्ता नष्ट हो जाय तो फिर उस समय अन्य पदार्थकी सत्ताका ज्ञान न होना चाहिए। यह बात असङ्गत है, क्योंकि ऐसी बात अभावमें भी कह सकते हैं – किसी एक विशेररूप कार्यका अभाव हो जाय, तो अभावका अभाव होनेसे भी वहाँ सर्वत्र अभाव न होगा क्योंकि अन्य अभावमें अभावकी प्रतीतिका अभाव हो जायगा। तो जैसे सत्ता नित्य एकरूप है इसी प्रकार अभाव भी नित्य एकरूप बन बैठेगा। अभाव नामका कोई वस्तु न एक मान कर सिद्ध किया जा सकता है और न अनेक मानकर सिद्ध किया जा सकता है। अभाव कोई वस्तु नहीं है। पदार्थ है और उन पदार्थोंको निरखकर हम नाना उसमें प्रतिपादन किया करते हैं। यह जीवका पदार्थका स्वरूप है, अपने आप हैं, अपने स्व-रूपसे हैं, परके स्वरूपसे नहीं हैं, यह आपकी विशेषता है कि आप दूसरे नहीं हैं, यह बात बनानेके लिये कोई अभाव नामका पदार्थ हो और वह सबका अभाव आपमें कर रहा हो यह बात नहीं है। आप स्वरूपतः अन्य समस्त पदार्थोंसे अलग हैं, यह सत्ता की प्रकृति ही है। यदि ऐसा माना जाय कि सत्ता एक पदार्थ है फिर भी सत्ता जो अवस्था नहीं हो रही है उस अवस्थाको रोक रही है। तो अभाव भी जिन कार्योंकी उत्पत्ति नहीं है उसकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक है, ऐसा मान डाला जाय। तो ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माननेपर यों बिडम्बना बनेगी कि जब सत्ता एक है तो रोंके तो सबको रोंके और न रोंके तो किसीको न रोंके। जब अभाव एक है तो प्रतिबन्धक रोके तो सबको रोके और न रोके तो किसीको न रोके !

भेदवादका आशय—देखो, वस्तुमें तत्त्व तो यह है कि वस्तु अनेक शक्तिरूप है और प्रत्येक शक्तिका कुछ न कुछ प्रत्येक समयमें परिणमन होता है और उसमें परिणमन होता चला जाता है यह वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है, उस स्वभावकी दृष्टि के लिये अलगसे अभाव माने, समवाय माने तो व्यवस्था नहीं बन सकती। ये मीमांसक सिद्धान्त वाले अभावको अलग प्रमाण मानते हैं, वह तो मान ही रहे है, उसका तो प्रकरण ही चल रहा है किन्तु पदार्थमें गुण भी अलग है, पदार्थमें पदार्थकी परिणति भी अलग है पदार्थमें जो सामान्य स्वरूप है वह भी अलग है और जो विशेष स्वरूप है वह भी अलग है। इतना बिखरा हुआ सिद्धान्त है यों समझिये। ब्राह्माद्वैत और मीमांसक सिद्धान्त रीति-रिवाजमें तो दोनों एकसे हैं लेकिन सिद्धान्तमें अन्तर है। एक तो अभेदवादियोंने सब चीजोंको एकमेक माना और दूसरे भेदवादियोंने ऐसा चूर चूर किया है एक एक तत्त्वको कि जहां एक भी स्वरूप भिन्न नजर आया उसको झट एक पदार्थ अलगसे माल लेंगे। जैसे कहने-सुननेमें आता है ना कि आत्मामें ज्ञान है, ज्ञान मायने जानना और आत्मा मायने जानने वाला। ये दो चीजें अलग होगयीं। ऐसा मीमांसक लोग मानते हैं। जरा सा भी स्वरूपका भेद नजर आया, एक शब्दका भी फर्क आया तो झट वे मीमांसक उसको अलगसे पदार्थ मान लेते हैं। यह मीमांसकोंका एक आग्रह है।

अभेदात्मक वस्तुकी शक्ति और परिणतियोंमें सत्ताभेदका अभाव—तो अब रहा क्या कि जैसे आत्मा एक द्रव्य अलग है और आत्माके चैतन्य गुण अलग हैं तो वह सदा अकेला है और चैतन्यमें जो जाननक्रिया हो रही है वह सब अलग है। और जो एक चैतन्य सामान्य है जिससे हम सब चेतनोंको, सब जीवोंको एक समान निरखते हैं वह सामान्य अलग है और पदार्थका जो विशेष है वह भी अलग है। वह दूसरेमें नहीं है, ऐसा जो विशेष भाव है वह भी अलग है और ये अलग-अलग हैं, किसी दूसरेमें अभाव है ऐसा अभाव एक अलग है। तो ये पदार्थ नाना भेद मानने वाले सिद्धान्तमें जो पार्थक्यकी नीति है वह नीति स्वरूपसे विरुद्ध नीति है। एक ही पदार्थ है और वह ही पदार्थ गुण, कर्म, सामान्यविशेष, समवाय और अभाव सर्वरूप है, अलग-अलग जो चीज हैं उनकी सत्ता स्वीकार करना तो वे भूल गए, पर एक ही सतमें गुण कर्म आदिकको अलग-अलग माननेकी उन्होंने ठान ली। कुछ विरुद्ध दशामें उनका मन्तव्य पहुँचता है। एक ही घड़ीको जिसे हम कहते हैं कि यह सफेद है तो घड़ीकी सफेदी क्या घड़ीसे न्यारी है ? लेकिन मीमांसक सिद्धान्त वाले कहते हैं कि घड़ी अलग वस्तु है और घड़ीकी सफेदी अलग वस्तु है। अरे वह सफेदी घड़ीकी ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस समयकी विशेषता है, इस प्रकार घड़ी है और घड़ीमें चौकी आदिक सब पदार्थोंका अभाव है तो यह अभाव घड़ीसे कोई अलग चीज है । मीमांसक मानते हैं कि हाँ अभाव अलग चीज है और घड़ीका जो होना है यही अन्य चीजका अभाव है । वह अभाव कोई अलग वस्तु नहीं है ।

अभावकी अव्यवस्था – जब उनसे पूछा गया था कि एक कार्यके मिटनेपर सत्ता सब क्यों नहीं मिट जाती ? तो उनका कुछ ऐसा भी कहना है कि भाई बलवान प्रध्वंसका कारण मिलनेपर कार्यकी सत्ता ध्वंसको नहीं रोकती है, अर्थात् कार्य मिटता है और उससे पहिले बलवान विनाश कारण न मिला तो सत्ता ध्वंसको रोकती है, याने अभी सत्ता बनी है । इस कारण पहिले प्रध्वंसका प्रसङ्ग नहीं आता तो यह तो अभावमें भी कह सकते । बलवान उत्पादक कारणके मिलनेपर अभाव कार्यकी उत्पत्तिको नहीं रोकता । कार्य उत्पन्न होनेसे पहिले चूँकि बलवान उत्पादक कारण का अभाव है इसलिए कार्यकी उत्पत्तिको रोकता है तो इस तरह एक अभाव मानने पर भी पहिले कार्य उत्पन्न न होगा । इससे एक ही अभाव मानो फिर तो कार्य अनादि हो जायगा । प्रागभावका अभाव हो तो सारे कार्य हो गए, उससे पहिले सारे कार्य हो बैठेंगे, इस प्रकार अभाव एक मानो तो नहीं बनता, नाना मानो तो नहीं बनता ।

स्वरूपसत्त्वसे सकल व्यवस्था —जितने जो पदार्थ हैं, वे हैं, अनन्त जीवद्रव्य हैं, खूब परख लो, सभी जीवोंमें उनका अपना-अपना परिणमन बराबर चल रहा है या नहीं ? तो वे अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं, सभी अपनी-अपनी सत्तामें हैं, सभी अपना-अपना परिणमन कर रहे हैं । एक धर्म द्रव्य है जो जीव पुद्गलकी गतिमें सहायक है, एक अधर्म द्रव्य है जो जीव पुद्गलके ठहरानेमें सहायक है, एक आकाश द्रव्य है जहाँ समस्त द्रव्य अवगाहना पाते हैं और असंख्यात कालद्रव्य हैं जिनके निमित्तसे समस्त पदार्थोंका परिणमन हो रहा है । यों अनन्तानन्त सत् हैं और उन प्रत्येकमें समस्त अन्य पदार्थोंका अभाव है । मैं जीव हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ, तभी तो हो सकता हूँ, जब मुझमें अन्य पदार्थोंका अभाव हो । मैं मैं ही हूँ, अन्य पदार्थ मैं हूं तो फिर मैं क्या रहा ? मैं हूँ, यह सत्ता इसी आधारपर रहती है कि अन्य पदार्थ मैं न बन जाऊँ । मैं तो अन्य पदार्थ नहीं हूँ यह व्यवस्था मेरी सत्ताके ही कारण है । कोई अभाव नामक प्रमेय अलग हो, कोई अभाव अलग फैला हुआ हो और वह व्यवस्था करता हो कि किसी अन्य चीजमें कोई अन्य चीज मिल न बैठे, ऐसी बात नहीं है । अभाव प्रमेय कोई अलग नहीं है । जब अभाव प्रमेय कोई अलग नहीं है तो अभावका ज्ञान करने वाला प्रमाण भी कोई अलग नहीं है ।

प्रागभावकी पूर्वपर्यायरूपता – प्रागभाव तुच्छाभावरूप नहीं सिद्ध होता, किन्तु अन्यके अभावरूप है । देखो प्रागभाव उसे कहते हैं कि जिसका अभाव होनेपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नियमसे कार्य उत्पन्न हो। जैसे घड़ेका प्रागभाव मृत्पिण्ड है, उस मृत्पिण्डसे घड़ा बनता है। घड़ा बननेसे पहिलेकी जो पर्याय है, जो मिट्टी द्रव्य है, उस हीका नाम प्रागभाव है, तुच्छ स्वभावरूप नहीं। कुछ न होना इसका नाम अभाव नहीं है। यदि तुच्छ स्वभावरूप अभाव मानोगे तो जैसे गायके दो सींग दायें और बायें एक साथ उत्पन्न होते हैं तो एक साथ उत्पन्न होने वाली उन दोनों सींगोंका उपादान एक हो बैठेगा क्योंकि प्रागभाव तो दोनोंका एक ही रहा। यदि यह कहो कि जिस समय जिस जिस जगह प्रागभावका अभाव है वहाँ उसकी उत्पत्ति होती है तो यह कहना भी अयुक्त है, क्योंकि यही तो नियम नहीं बनता कि यह दायें सींगका प्रागभाव है और यह बायें सींगका प्रागभाव है। इससे अभाव कोई अलग प्रमाण नहीं है। कोई एक असत् अंश हो, अभाव हो, वह चीज ही न हो, और फिर वह अभाव वाली चीज दुनियाकी व्यवस्था बनाती हो यह बात सम्भव नहीं है। प्रत्येक पदार्थ है, अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है, यह इसमें ही विशेषता है।

प्रागभाव और प्रध्वंसाभावकी पूर्वोत्तरपर्यायरूपता—ज्ञान उसका हुआ करता है जो हो। सत्का ही ज्ञान हुआ करता है, जो कुछ है ही नहीं न था, न होगा, जिसका कोई स्वरूप ही नहीं ऐसे असत्का बोध हो ही नहीं सकता। हम किसी भी पदार्थको जाननेके समयमें जो अभावकी अनेक बातें जाना करते हैं वे कोरी अभावकी बातें नहीं हैं किन्तु किसी पदार्थमें सद्भावकी बातें है। जैसे प्रागभावमें उत्तर पर्यायका अभाव पूर्व पर्यायके सद्भावरूप होता है इसीप्रकार प्रध्वंसाभावमें पूर्वपर्यायका अभाव उत्तर पर्यायरूप होता है। जैसे घड़ा फूट गया, उसकी खपरियां बन गयी तो घड़ेका अभाव कहलाया और खपरियोंका उत्पाद कहलाया। तो यहाँ घड़ेका अभाव क्या कोई अलग बात है? खपरियां हो जानेका ही नाम घड़ेका मिट जाना कहलाता है। इस घड़ेका अभाव कपाल (खपरियों) के सद्भावरूप हुआ। प्रध्वंसाभाव कोई स्वतन्त्र अलग पदार्थ नहीं है किन्तु वह उत्तरपर्यायके अभावस्वरूप ही है। प्रध्वंसाभाव उसे कहते हैं कि जिसके होनेपर नियमसे कार्यका विनाश हो। तो कपालके होनेपर ही घट का विनाश होता है। अनन्तर उत्तर पर्यायका नाम पूर्व पर्यायका प्रध्वंस करना होता है। अभाव असत् चीज नहीं हैं किन्तु किसीके सद्भाव रूप है।

तुच्छाभावके प्रति साधनप्रयोगकी असंभवता—यदि अभाव असत्रूप हो, तुच्छस्वभावरूप हो, कुछ भी न हो तो प्रध्वंस करनेके लिए घट मिटानेके लिए फिर मुदगर आदिकका व्यापार करना व्यर्थ हो जायगा। जो नहीं है उसपर कौन चलायगा? कोई पुरुष आकाशको मारनेके लिए लाठी नहीं चलाया करता। यद्यपि आकाश वस्तु है लेकिन पिण्डरूप न होनेसे इस दृष्टान्तमें समझ लो कि कुछ नहीं है, तो जैसे कोई आकाशको मारनेके लिए लाठी नहीं उठाया करता इसीप्रकार तुच्छाभाव करनेके लिए कोई डंडा न मारेगा। घड़ेको मिटा देना तुच्छाभावरूप है, इसीका नाम यदि अभाव है तो मुदगर आदिकका कोई व्यापार नहीं कर सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घट और विनाशके सम्बन्धके विकल्प—अथवा यह ही बतावो कि किसी ने मुदगर मारकर घटका अभाव कर दिया याने घट मिट गया, फूट गया तो घट आदिकका जो वह अभाव है जिसे मुदगरने बनाया है वह घटका अभाव घटसे भिन्न है या अभिन्न, घटका विनाश घठसे अलग चीज है या घटरूप ही है ? यदि कहो कि घट से अलग चीज है तो फिर घट तो नहीं मिटा कहलाया यदि कहो कि विनाशके सम्बन्ध से विनष्ट हुआ कहलाता है तो विनाश और विनाशवानमें भी कोई सम्बन्ध बताना चाहिए। उसमें सम्बन्ध क्या तादात्म्यरूप है या तदुत्पत्तिरूप है या विशेष्यविशेषणभाव रूप है याने तादात्म्यरूप होनेसे विनाशवान है या विनाशवानसे विनाशकी उत्पत्ति हुई, या विशेशण विशेष्य वाला हुआ। तादात्म्य लक्षण तो नही बनता क्योंकि घट घटके विनाशका कारण नहीं है। घटके विनाशका कारण तो मुदगर डंडा आदिकका प्रहार है। यदि कहो कि दोनोंके निमित्तसे घटका अभाव हुआ तो जैसे घटके फूटनेपर मुदगर ज्योंका त्यों रहता है बता सकते हैं कि देखो इस मुदगरने घटको फोड़ा, सो निमित्त जब दोनों है तो निमित्तका सद्भाव है तो घटका भी सद्भाव होना पड़ेगा। यदि कहो घट उपादान कारण है तो यह अभाव भावान्तरके स्वभावरूप है यह सिद्ध हो गया।

वस्तुके लक्षणका दिग्दर्शन—यहाँ वस्तुका लक्षण भी विदित होता चला जा रहा है। वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त होते हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें सभी लोग पढ़ते हैं उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत'। उत्पाद मायने उत्पन्न होना, व्यय मायने विनाश होना ध्रौव्य मायने बना रहना, इन तीन धर्मोंसे युक्त प्रत्येक सत् है। सत् कहते ही उसे हैं जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों तत्त्व सदा पाये जायें। ये तीनों अलग अलग बातें हैं, पर इन्हें कोई अलग-अलग बता सकेगा क्या कि उत्पाद यह पड़ा है, व्यय यह पड़ा है और ध्रौर ध्रौव्य यह पड़ा है ? अच्छा यह बतावो कि घटका व्यय क्या चीज है और कपालका उत्पाद क्या चीज है ? क्या ये कोई अलग-अलग चीजें हैं ? अरे कपालके गत्पन्न होनेका ही नाम घटका व्यय है।

उत्पादव्ययकी एकपर्यायिरूरताका दृष्टान्त—जैसे कोई आज मनुष्य है, मनुष्य मरकर देव बन गया, तो मनुष्यका तो अभाव मुआ और देवका उत्पाद हुआ तो यह बतलावो कि पहिले मनुष्यका अभाव होगा या देवका उत्पाद होगा ? अरे मनुष्यके अभावका ही नाम देवका उत्पाद है ! मनुष्यका अभाव अलग चीज हो और देवका उत्पाद अलग चीज हो ऐसा नहीं है। यदि कहो कि मनुष्तका अभाव पहिले हुआ तो भिर देवका उत्पाद कहाँ रहा ? और यदि यह कहो कि पहिले देवका उत्पाद हुआ तो फिर मनुष्यका अभाव अभी कहाँ हुआ ? भाई ! मनुष्यका अभाव और तेव देवका उत्पाद दोनों एक साथ हुए। एक साथ भी नहीं बल्कि मनुष्यके अभावका ही नाम देवका उत्पाद हुआ। जैसे जो बुद्धिमान लोग होते हैं वे किसी अच्छे रोजिगारपर पहिले अधिकार जमा लेते हैं फिर पुराने रोजिगारको छोड़ते हैं, इसलिए कि कहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा न हो कि इस रोजिगारसे भी जायें और उससे भी जायें । ऐसे ही कोई यह जवाब अगर दे कि पहिले देव बना पीछे मनुष्य मरा, तो इसका अर्थ तो यह है कि जब देव बना तो उससे पहिले वह मनुष्य था वह अभी मरा ही नहीं। तो देवके उत्पाद का ही नाम मनुष्यका अभाव है ।

अभावकी वस्त्वन्तरसद्भावरूपताका समर्थन— अथवा जैसे यह अंगुली अभी सीधी है लो अब इसे टेढ़ी कर दिया, तो यह बताओ कि पहिले सीधेपन का अभाव हुआ या टेढ़ेपनका उत्पाद हुआ ? अरे सीधेपनका अभाव ही टेढ़ेपनका उत्पाद है और टेढ़ेपनके उत्पादका नाम ही सीधेपनका अभाव है । ये उत्पाद और व्यय उस तरहसे भी नहीं चल रहे हैं जैसे कि दो बैल एक साथ चलते रहते हैं पर ये दोनों एक ही चीज हैं । अभी जो पर्याय है उस दृष्टिसे उसका उत्पाद कहा जाता है और वह पर्याय न रही तो अब उसका विनाश कहा जाता है । तो प्रध्वंसा किसी पर्यायके सद्भाव रूप ही हुआ करता है और कुछ वस्तु है अलगसे । अभाव अन्य वस्तुके सद्भावरूप हुआ करता है ।

विधिमें प्रतिषेधकी प्रतिष्ठा— जैसे लोग कहते कि मोह छोड़ो और ज्ञान पैदा करो । तो मोह छोड़ना और क्या चीज है ? ज्ञान सही होनेका ही नाम छोड़ना है । जिसे लोग कहते हैं मोह किसीसे प्रेम किया, स्नेह किया, तो लोग कहते कि इसने मोह किया, तो मोह इसका नाम क्या है ? अरे स्नेह करनेका नाम मोह नहीं है, वह तो राग है । मोह नाम है अज्ञानका । पर वस्तुसे अपनेको जुदा न समझ सके इसका नाम मोह है तो पहिले मोह मिटा लो पीछे ज्ञान करो, ऐसा है क्या ? अरे सच्चा ज्ञान बने उसीका नाम मोहका विनाश । सही ज्ञान बने तो मोह अपने आप मिट जायगा । तो कुछ हित मार्गके लिए यह उपदेश दें कि सही ज्ञान उत्पन्न करो । सही ज्ञान बने तो मोह अपने आप मिट जायगा । अभाव तो करने की चीज नहीं है, करने की चीज तो कोई विधि ही है, "न" करने की बात नहीं होती, "हां" करने की बात होती है । जैसे अंगुली को कहते हैं टेढ़ी करो, ऐसा कोई नहीं बोलता कि अंगुली की सीध मिटा दो । टेढ़ी करनेमें अंगुलीकी सीध मिट जाती है मगर सीध मिटा दो ऐसा प्रयोग कोई नहीं करता टेढ़ी करें तो उस विधिमें उसका अभाव हो ही जायगा ।

कर्तव्यमें विधिरूपता कुछ परेशानी तो इसी बातकी हो रही है वे चाहते हैं मोहको नष्ट कर दूं, और मोहको नष्ट करनेके लिए यत्र तत्र पूछते हैं, अनेक उपाय करते हैं, मोह छोड़नेकी दृष्टि बनाते हैं पर ऐसा प्रयत्न नहीं कर लेते कि सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करें । सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करनेकी धुनि बनायें तो उसमें हमको सफलता मिलेगी, क्योंकि करनेकी कोई चीज तो सामने आये । हमें करना क्या है ? हमें जैसी वस्तु है वैसा सही ज्ञान करना है, तो इसमें करनेकी कुछ बात तो मिली, आधार तो है । हम उपयोग बनायें, प्रयत्न करें तो हम सही ज्ञान करलेंगे, पर मोह छोड़ो, राग छोड़ो,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसमें हम अन्य कौन सा उपाय बनायें ? ज्ञाता दृष्टा रहनेका उपाय करें तो राग छूट जायगा। हम जो पदार्थ जैसा है उसको मात्र उतना ही जानकर रह जावें यह ऐसा है, यह ऐसा है, राग छूट जायगा राग छोड़नेका प्रत्यक्ष करने वाले पुरुष भी अपने उपयोग को विशुद्ध रखनेका यत्न करते हैं। वहाँ राग छूटता है । तो प्रध्वंसाभाव किसीके सद्भावरूप हुआ करता है इसलिए असत् नहीं है।

प्रकरणकी आधारशिला स्वपरव्यवसायात्मक ज्ञान—इस ग्रन्थमें सर्वप्रथम प्रमाणका स्वरूप बनाया गया है। रागको प्रमाण कहते हैं और ज्ञानोंमें वह ज्ञान प्रमाण है जो अपना भी निर्णय रखे और परका भी निर्णय रखे। जैसे आप कोई भी चीज जानते हैं जैसे आपने जाना कि यह पुस्तक है तो आपको वहाँ दोनों ज्ञान हो रहे हैं। दोनों जगह दृढ़ता आ रही है यह पुस्तक है, यह पुस्तक ही है। पुस्तकके बारेमें भी आपके दृढ़ता है और पुस्तकका जो ज्ञान किया है वह ज्ञान भी सही है ऐसी अपने ज्ञानमें भी दृढ़ता आ रही है। कोई पुरुष पदार्थमें तो दृढ़ता रखे कि यह चौकी ही है और अपने बारेमें यह सोचे कि मैंने जो चौकीको जाना यह ज्ञान हमारा सही है कि नहीं ? तो बाह्य पदार्थोंके बोधमें तो दृढ़ता हो और उस बोधमें सन्देह हो कि मेरा यह ज्ञान सही है अथवा नहीं सही है, तो बाह्य पदार्थकी दृढ़ता भी नहीं रह सकती। बाह्य पदार्थका हमें पूरा निश्चय है तो तभी है जब हमें अपने ज्ञानका भी पूरा निश्चय है कि जो यह ज्ञान मैंने जाना वह ज्ञान पूर्ण सही है। तो ज्ञानमें ये दो कलायें होती हैं, अपने आपका पूरा निश्चय रखना और पदार्थोंका भी।

आत्मधन—स्वपरव्यवसासात्मक ज्ञानसे लक्षित ज्ञानस्वरूप हम आप हैं, यही ज्ञान हम आपका धन है, अन्य कोई हम आपका धन नहीं है। ज्ञानको छोड़कर अन्य वस्तुको अपना मानना यह पाप है, आपत्ति है और जीवकी बरबादीका कारण है। एक तो धन है, कमाई है, उपकार कर रहे हैं यह बात अलग है, पर धन वास्तव में मेरे लिए है ऐसा मानना महापाप है। इसे मिथ्यात्व कहते हैं। धन तो आत्माका ज्ञान है। यही वैभव आत्माका शुद्ध वैभव है जो सदा साथ निभायेगा और शान्ति प्रदान करेगा। उस धनकी तो हम कुछ सुध न लें और जो बिल्कुल भिन्न है, पररूप है, अशान्तिका ही कारण है उस भिन्न पुद्गल वैभवका हम निरन्तर ख्याल बनाये रहें, यह ही तो संसारके मोहकी विडम्बना है।

प्रध्वंसाभावको भावरूप न माननेपर प्रध्वंस और पदार्थमें सम्बन्धकी भी असिद्धि—प्रध्वंसाभाव भी अन्य सद्भावरूप हुआ करता है। प्रध्वंसाभाव यदि कोई अलग स्वतन्त्र चीज है तो यह पूछा जा रहा है कि जैसे मुदगर मारकर घटका अभाव किया गया तो वह अभाव घटसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न है तो घटका क्या गया ? विनाश हुआ, तो होने दो। घट तो विनाशसे न्यारा है। विनाश हुआ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो होने दो। घट तो विनाशसे न्यारा है। घट तो ज्योंका त्यों मालूम होना चाहिए। यदि कहो कि नहीं घटका और विनाशका सम्बन्ध है तो कौन सा सम्बन्ध है ? यदि विशेषण विशेष्य भावस्वरूप कहोगे तो यह बिल्कुल असङ्गत है। विनाश और घट इनमें विशेषण कौन है ? यदि कहो कि अन्य सम्बन्धको मान करके हम विशेषण विशेष्य भाव मान लेंगे तो वह अन्य सम्बन्ध क्या है ? कुछ भी नहीं बनता। इसलिए मुदगर आदिक व्यापारसे घटका अभाव घटसे भिन्न बन गया। यदि कहो कि वह घट से अभिन्न है विनाश, तो घट मिटा, उसका जो विनाश है वह घटसे यदि अभिन्न है तो विनाश किया गया इसका अर्थ है कि घट ही किया गया, क्योंकि घट और विनाश में तुमने अभेद मान लिया, मुदगर आदिकने क्या किया ? इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रध्वंसाभावको यदि अन्य पदार्थोंके स्वभावरूप न मानोगे तो उसकी सिद्धि ही नहीं हो सकती। पदार्थ है, प्रति समय परिणमता रहता है। वही बात निरखते जावो, कोई भी पदार्थ परिणमें बिना रह ही नहीं सकता, परिणमें बिना वह सत् ही नहीं हो सकता, नवीन पर्याय होती और पुरानी पर्याय विलीन होती है। प्रध्वंसाभाव कोई अलग बात नहीं है किन्तु नवीन पर्यायके सद्भावका ही नाम पहिली पर्यायका प्रध्वंस है।

किसी भी परिणतिका प्रध्वंस होनेपर भविष्यमें सदैव अभाव अब यहाँ अभाव प्रमाणवादी एक शङ्का रख रहा है जैन शासनवादियोंके प्रति कि हे जैन लोगो ! तुम यह मानते हो कि प्रध्वंसा उत्तर पर्यायरूप हुआ करता है। जैसे घड़ेका विनाश खपरियोंके सद्भावरूप है, मनुष्य देपर्यायका विनाश वपर्यायके सद्भाव रूप है, तो घटका जैसे अभाव हुआ, अर्थात् खपरियां उत्पन्न हुई तो खपरियां जब उत्पन्न हुई तो उनके उत्पन्न होनेके समयमें ही घटका प्रध्वंस हो गया कि नहीं हो गया ऐसा मानते ही हो तुम, तो घटका प्रध्वंस कब हुआ ? जब खपरियां उत्पन्न हुई। खपरियां तो उत्पन्न हो जायेंगी, अब उसके बादमें अगले समयोंमें घटका प्रध्वंस तो नहीं रहा तब घट उत्पन्न हो जाना चाहिए। यह भी बात अयुक्त है। आचार्यदेव समाधान करते हैं कि देखो कार्य तो उपादान कारणका मर्दन करता है पर कारण कार्यका उपमर्दन नहीं करता, अर्थात् कार्य होता है तो अपने उपादान कारणका मर्दन करता है अर्थात् उत्तर पर्यायका कार्य पूर्व पर्यायका विनाश करते हुए होता है, पर कारण कार्यका विनाश करते हुए नहीं माना गया है अर्थात् एक बार प्रध्वंस होनेके बाद फिर उत्तर पर्याय सद्भावरूप उस प्रध्वंसका अभाव होकर वही चीज फिर आ जाय, यह नहीं हुआ करता है, ऐसे ही वस्तुमें उपादान उपादेयका भाव है। अभाव सद्भावरूप है, सिद्धान्त यह रखा जा रहा है। इतनी सी बात यहाँ सिद्ध की जा रही है और इसीमें वस्तुस्वरूप बसा हुआ है।

भाव व अभावके ज्ञानका प्रभाव— भाव अभावका यह मर्म कोई न जान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सके तो वस्तुका ज्ञान ही उसे सही नहीं हो सकता । और वस्तुके ज्ञान बिना मोह मिट नहीं सकता । आप लोग सोचते होंगे कि मोह मिटानेकी यह बड़ी कठिन दवा बताई जा रही है, समझमें नहीं आ रही है, यह जो प्रकरण चल रहा है क्या यह पूरी तरह समझमें न आये तो मोह न मिटेगा ? ऐसी शङ्का आप अपने मनमें ला सकते हैं । तो बात यह है कि जो वर्णन यहाँ किया जा रहा है उसकी वर्णन विधिका चाहे आप ज्ञान न करें, पर इस वर्णनमें जो बात बताई गई है उस स्वरूपका दर्शन यदि नहीं हुआ तो मोह नहीं मिट सकता । जैसे ग्रन्थोंमें करणानुयोग सिद्धान्तमें कर्मों के क्षयका बहुत विशेष प्रतिपादन है, किस श्रेणीमें चढ़ते समय क्या भाव होता है, कैसे ऊँचे भाव चढ़ते हैं, बहुतसे कर्मोंकी किस तरह निर्जरा होती है, कार्माण वर्गणायें प्रारम्भमें कैसी रह जाती हैं, कैसे उनका अनुभाग रस क्षीण होता है, वहाँ पर कैसी गुण श्रेणी निर्जरा होती है ये सब बातें ज्ञात होना जरा कठिन हैं और अनेक मुनि ऐसे भी हैं कि इन बातोंका जिन्होंने ज्ञान नहीं किया, करणानुयोगके ऐसे विकट शास्त्रोंका जिन मुनियोंने अध्ययन नहीं किया क्या ऐसे मुनि मोक्ष नहीं जा सकते ? ये मुनि भी मोक्ष जाते हैं, चाहे उन्होंने गुणश्रेणी निर्जराका अति स्थापनावोंका अध्ययन नहीं किया लेकिन जो बात उस वर्णनमें बतायी गई कि इस इस तरहसे कर्म खिरते हैं, कर्मोंकी निर्जरा होती है यह बात हुए बिना वे मोक्ष नहीं जाते । कर्मोंकी निर्जरा के लिए परिणामोंकी निर्मलताकी आवश्यकता है । कर्म कैसे खिरते हैं, इस समय कैसे कर्म उदयमें हैं अब आगे कितने कर्म उदयमें रह जायेंगे, कैसे निर्जरा हुआ करती है उन कर्मोंके सम्बन्धकी बात कोई न भी जाने, पर पदार्थोंका वर्णन कोई न भी जाने तो इससे आत्माको कोई हानि नहीं है, परन्तु आत्मामें ज्ञान और वैराग्य अवश्य चाहिये जिसके अनुसार कर्मोंकी निर्जरा हुआ करती है ।

वस्तुके बोधसे कल्याण—अनेक मुनि ऐसे हुए है जो बहुज्ञान बिना भी मोक्ष गये हैं । जैसे शिवभूति मुनि हुए हैं गुरुने सिखा दिया था मा रुष मा तुष । जिसका अर्थ है मत राग करो मत द्वेष करो । इस मन्त्रको इन मुनिराजने खूब रट लिया इस मन्त्रको बोलते बोलते थोड़ा स्खलित हो गए तो माष तुष रह गया, बीचके अक्षर उड़ गए । उन्हें इतना बोध जरूर रहा कि माषके मायने है उड़दकी दाल और तुषके मायने है छिलका । इस अर्थको सभी लोग जानते थे । तो वह मन्त्र तो रट लिया था पर उस मन्त्रका रहस्य न जानते थे, उसका तात्पर्य क्या है इसका उन्हें पता न था । सो एक बार जब कि वह विहार कर रहे थे, रास्तेमें देखा कि एक महिला उड़दकी दाल धो रही थी, छिलका अलग कर रही थी और दाल सफेद सफेद अलग कर रही थी । उस दृश्यको देखकर उन मुनिराजके अन्तरङ्गमें यह प्रतिषेध जगा कि देखो—ये दाल और छिलका कैसी अलग अलग चीजें हैं, जैसे उड़दकी दालमें यह दाल अलग है और छिलका अलग है इसी प्रकार यह शरीर इस मुझ उज्वल आत्मासे अलग है । ऐसी दृष्टि जगी, और ऐसी दृष्टि जगनेपर यहां ही उपयोग रहा, वह अपने परिणामोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अत्यन्त निर्मल करके अनन्त कर्मोंकी निर्जरा कर गया। तो वह कर्मोंकी निर्जरा करणानुयोग शास्त्रसे हुई।

ज्ञानार्जनकी उपयोगिता—जिसे बहुत बहुत ज्ञान भी नहीं है, उत्कषरण, अपकर्षण, अरवली आदि कर्म सिद्धान्तकी सूक्ष्म बातोंका अध्ययन न भी हो लेकिन ज्ञान और वैराग्यका परिणाम यथार्थ रहे तो कर्म निर्जरा हो ही जाती है, इसी प्रकार चाहे इस अभावकी, वस्तुके स्वभावकी जो यह कथनी चल रही है, यह कथनी चाहे इस रूपमें ज्ञात न हो लेकिन पदार्थ जैसा परिपूर्ण सत् है वैसा परिपूर्ण सत् पदार्थके जाने बिना मोह नहीं हट सकता, न मुक्ति प्राप्त हो सकती है, तब फिर कोई कहे कि जब होना होगा वस्तुस्वरूपका ज्ञान तो हो जायगा, हम इतनी कठिन चर्चाओंमें क्यों पड़ें और अध्ययपनका कष्ट क्यों करें ? तो यद्यपि ऐसे विरले ही मनुष्य हुए हैं जो अध्ययन किये बिना, परिश्रम किए बिना शास्त्रोंकी बात समझे बिना उन्हें ज्ञान हुआ है और उनका उद्धार हुआ है लेकिन जैसे किसी अंधे पुरुषको रास्तेमें चलते हुए किसी पत्थरसे ठोकर लग जाय, उस पत्थरको खोद देनेपर उससे बहुत सा धन प्राप्त हो जाय तो यह नियम तो नहीं बन गया कि अन्धे पुरुषका ठोकर लगनेसे धन प्राप्त होता है ? कोई पुरुष आँखोंमें पट्टी बाँधकर अन्धासा बनकर चले और जो पहिलेसे ही पत्थर गाड़ दिया था उसमें टोकर मारदे और धनकी प्राप्ति हो जाय, ऐसी बात तो नहीं है, हाँ भाग्य अच्छा है, उदय अनुकूल है तो कभी इस तरहसे भी धनकी प्राप्ति हो जाती है। तो इस मोहको मिटानेके लिए हम आपको सम्यग्ज्ञानका अर्जन करके, वस्तु स्वरूप की यथार्थ जानकारी करके इस मोहका परित्याग करें।

इतरसकलविविक्त अन्तस्तत्त्वके परिचयमें सम्यग्ज्ञानकी सम्पन्नता—सम्यग्ज्ञान यही है कि अपने आपका ऐसा अनुभवन बने कि मैं सर्व पदार्थोंसे जुदा हूं, मैं स्वयं अपने सत्त्वके कारण अन्य सर्व परपदार्थोंसे भिन्न हूँ। मेरेमें जितनी पर्यायें उत्पन्न होती में वे परस्परमें जुदी जुदी हैं, क्योंकि एकके बाद एक पर्याय होती है। इस जुदापनेमें भी कोई दूसरा क्या कार्य करता रहता है ? किन्तु उस सत्त्वका ही ऐसा स्वरूप है कि एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका अभाव है। बस यही भाव अभावरूप में तीन भागोंमें बँटा है—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और इतरेतराभाव। प्रागभाव तो नाम है उत्तर पर्यायका पहिली पर्यायमें अभाव, और प्रध्वंसाभाव नाम है पूर्वपर्यायका उत्तर पर्यायमें अभाव और इतरेतराभाव है एकका दूसरेमें अभाव। अभावोंका मर्म जानकर यह निर्णय करें कि अभाव मोक्षभावरूप है। मैं सबसे भिन्न हूँ ऐसा अपने आत्म तत्त्वका परिज्ञान करना यह मोह मिटानेका सच्चा उपाय है और मोह मिटा कि शान्ति और आनन्द अपने आप ही है, क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप वाला है। आनन्द कहीं बाहरसे नहीं आता किन्तु आनन्दमें बाधक जो विकारभाव हैं वे हटें तो वह आनन्द तो अपने आपमें सर्वथा विद्यमान है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रध्वंस और उत्पादके कारणभेदका पक्ष—अब यहाँ अभावप्रमाणवादी कह रहे हैं कि मृत्पिण्डका प्रध्वंस होनेपर जो कपालोंका उत्पाद हुआ है वहाँ कपालों नाम ही घटका अभाव नहीं है, अभाव कपालोंसे भिन्न है। इसका कारण यह है कि कपालकी निष्पत्ति भिन्न कारणोंसे हुई है। इसका स्पष्टीकरण यह है घटके अवयवों का वियोग होनेसे जो संयोगका विनाश हुआ इससे उपादान घटका विनाश हुआ याने अभाव हुआ। यह अवयवोंका विभाजन अवयवोंकी क्रियाकी चलन डुलनकी उत्पत्ति से हुआ है। इस क्रियाकी उत्पत्ति बलवान पुरुषके द्वारा प्रेरित मुदगरादिकके अभि-घातसे हुई है। इस प्रकार घटके प्रध्वंसका कारण तो अवयवोंके संयोगोंका विनाश है और कपालोंके (खपरियोंके) उत्पादका कारण कपालोंके स्वरूप रचने वाले कति-पय परमाणुवोंका संयोग विशेष है। यों खपरियोंका उत्पादक कारण भिन्न है और घटाभावका उत्पादक कारण भिन्न है। अतः कपालोंसे अभाव अर्थान्तर है याने अभाव भिन्न पदार्थ है।

प्रध्वंस और उत्पादके कारणभेदकी मीमांसा—भिन्न कारणप्रभवताका हेतु देकर अभावको भिन्न पदार्थ माननेकी शल्यका निराकरण प्रतीतिके बलपर ही हो जाता है। घटके विनाशका प्रकार और कारण जुदा हो और कपालोंके उत्पादका प्रकार और कारण जुदा हो ऐसी किसीकी भी प्रतीति नहीं होती। जो प्रक्रिया कपाल के उत्पाद और घटके विनाशकी बताई गई है उसमें एक ही बात हुई। बलवान पुरुष के द्वारा प्रेरित मुदगरादिके व्यापारसे घटाकाररहित कपालाकार मृत् द्रव्यकी उत्पत्ति हुई है। लोकोंको जो सही सुगम प्रतीति होती है उसका अपलाप करके शब्दशास्त्रक पाण्डित्यका प्रयोग करनेमें कोई हित नहीं है। घटका अभाव और कपालका सद्भाव एक ही समयमें हुआ है और उस ही समयका जो परिणमन है वही घटका अभाव कहलाता है और वही कपालका उत्पाद है।

अभावज्ञानका प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंमें अन्तर्भावका उपसंहार—अभाव भावस्वभाव माना जाय तब ही प्रागभाव आदि अभावोंका प्रतिपादन बन सकता है। जैसे यह कहा कि दूधमें दही आदिक नहीं है तो यहाँ दधि आदिकसे रहित दूध ही तो उत्तर पर्यायके अभावरूपमें प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है। दहीमें दूध नहीं है यह कहनेपर दुग्धत्वरहित दही ही तो पूर्वपर्यायके अभावरूपमें प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है। घरमें पट नहीं है यह कहनेपर पटसे व्यावृत्त घट ही तो इतरेतराभावकेरूपमें प्रत्यक्षसे जा रहा है। जब उन पदार्थोंका अनुमानआदिसे ज्ञान होता है तब वहाँ प्रागभाव आदिक अव-स्वरूपमें अनुमान आदिक प्रमाणसे जाने जाते हैं। न तो अभावनामक कोई तत्त्व स्वतंत्र प्रमेय है और न उसका ज्ञापक कोई अभाव प्रमाण है। अभाव प्रमाणका प्रत्यक्ष अनुमानआदिक प्रमाणोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार यह निर्णय हुआ कि प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्षके ही भेदसे ही दो प्रकारका है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com